UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

STUDY MATERIAL

M.A. HINDI

PAPER-VIII

HISTORY OF HINDI LITERATURE

© Reserved

CUP/6181/08/500/SDE-1

UNIVERSITY OF CALICUT
SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

Study Material:

M.A. Hindi
Paper –VIII –History of Hindi Literature

Notes Prepared by:

Ranjith. M.
'Devi Vilasam'
Keezhur P.O., Iritty Via
Kannur Dt.

Type setting & Layout:
Computer Wing, SDE
Printed at the Calicut University Press

INDEX

1.	भक्तिकाल सामान्य परिचय	5
2.	भक्तिकालीन संत कवि एवं काव्य	9
3.	सूफी कवि और उनकी रचनाएँ	22
4.	सगुण भक्ति काव्य - राम भक्ति शाखा	33
5.	सगुण भक्ति काव्य - कृष्ण भक्ति शाखा	40
6.	आधुनिक काल - भारतेन्दुयुग	51
7.	खडीबोली उद्‌भव और विकास	57
8.	भारतेन्दुयुगीन गद्य विधाएँ	63
9.	द्विवेदीयुगीन हिन्दी काव्य	74
10.	द्विवेदीयुगीन हिन्दी उपन्यास	83
11.	द्विवेदीयुगीन हिन्दी निबन्ध	91
12.	द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी	94
13.	हिन्दी नाटक साहित्य उद्‌भव और विकास	97
14.	गद्य की अन्य विधाएँ	116
15.	हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास	123
16.	हिन्दी के प्रमुख आलोचक	129
17.	हिन्दी पत्रकारिता	135
18.	हिन्दी के प्रमुख पत्र एवं संपादक	138
19.	मलयालम से अनूदित काव्य रचनाएँ	141
20.	मलयालम से अनूदित उपन्यास	143
21.	मलयालम से अनूदित कहानियाँ	145
22.	मलयालम से अनूदित नाटक	147
23.	दलित साहित्य	148
24.	हिन्दी प्रचार प्रसार में रत निजी संस्थाएँ	149
25.	हिन्दी पत्र पत्रिकाएँ एवं संपादक	151
26.	नमूने का प्रश्न पत्र	153

Unit 1

भक्तिकाल सामान्य परिचय

साहित्य युग युग के चिन्तन का सार है। हर एक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है । इन्हीं चित्तवृत्तियों को परेखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांप्रदायिक परिस्थितियाँ जनता की विचार धारा में ज़रूर अपना प्रभाव डालते हैं । अतीत के किसी भी तथ्य, तत्व एवं प्रवृत्ति के वर्णन, विवरण, विवेचन व विश्लेषण को - जो कालक्रम की दृष्टि से किया गया हो - इतिहास कहा जाता है। साहित्य भी इतिहास से जुटा हुआ है। साहित्य के इतिहास में हम मानवीय क्रिया कलापों के स्थान पर साहित्यक रचनाओं का अध्यापन ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं । ऐतिहासिक काल क्रम के अनुसार हिन्दी साहित्य को चार कालों में विभक्त किया है ।

1. आदिकाल सं 1010-1375
2. पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल) सं 1375-1700
3. उत्तर मध्यकाल (रीति काल) सं 1700-1900
4. आधुनिक काल सं 1900 -

इन कालों का नामकरण प्रत्येक काल की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल विभावन को अपनाया था।

इतिहास और साहित्य का चिर संबन्ध है। इतिहास संबन्धी समस्त घटनायें साहित्य की प्रगति पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता । साहित्य में सत्य का तत्व सौन्दर्य में संयुक्त होकर मंगलक बन जाता है । लेकिन इतिहास का सत्य कठोर सत्य के रूप में ही रहता है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण इतिहास और साहित्य दो स्वतंत्र विधायें हैं । फिर भी दोनों का अविच्छिन्न संबन्ध है। इतिहास और साहित्य विचार और मस्तिष्क के समान साधन और साध्य है।

साहित्य निर्माण में प्रत्येक युग की ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्ण प्रभाव रहा है। इतिहासकार अतीत की खंडित घटनाओं का कालक्रमानुसार नियोजन करता है। साहित्यकार इन स्थूल सत्यों के तह तक पहुँचकर आन्तरिक रहस्यों को प्रकारा में लाता है। इतिहास राष्ट्र का जीवनवृत्त है और साहित्य राष्ट्र की आत्म कथा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्य युग, रचना, सन्दर्भ, अभिव्यक्ति कुशलता एवं कलात्मकता की दृष्टि से नितंत विशिष्ट कालखंड है । विषयवस्तु की मौलिकता, अनुभूति की गहनता, चिंतन की मौलिकता, शिल्प की विविधता, विचारों की उदात्तता आदि मध्यकालीन साहित्य की विशेषतायें हैं । इसी कारण से ही मध्ययुग 'स्वर्णयुग' कहलाया । आचार्य रामचन्द्र शुवला ने इस काल को पूर्व और उत्तर विभागों में विभाजित किया। भक्तिकाल पूर्व मध्यकाल के नाम से जाने जाते हैं। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल तीन सौ वर्षों के विराट पृष्ठभूमि में फैला है।

भक्ति

भक्ति भगवान के प्रति अखण्ड और अव्याहत प्रेम है और वह अमृत तुल्य भी है। आलंबन के आधार पर भक्ति के दो भेद हैं - सगुण और निर्गुण। निर्गुण भक्ति में आलंबन निराकार ब्रह्म है तो सगुण भक्ति में साकार। सगुण भक्ति को भक्ति के क्षेत्र में और निर्गुण भक्ति को ज्ञान के क्षेत्र में गिना जाता है।

सगुण भक्ति का प्रमुख आलंबन राम और कृष्ण रहा है। पौराणिक मान्यताओं के आधार पर ये दोनों परमपिता ब्रह्मा के अवतार ही है लेकिन निर्गुणोपासक परमपिता को किसी रूप में मानने को तैयार नही थे । 'निर्गुण' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'महाभारत' में मिलता है।

भक्ति काल में निर्गुण ब्रह्मा को आराध्य मानकर भक्ति साहित्य दो रूपों में सृजित हुआ - सन्त साहित्य और सूफ़ी साहित्य । आराध्य, आराधना, दार्शनिकता आदि में दोनों के साहित्य में बहुत बडा अंतर है।

पन्द्रहवीं सदी में विदेशी चढाई और जाति- पाँति की भावना लोगों को सताने लगे। ऐसी हाल में निर्गुण संप्रदाय के अंतर्गत एक विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति विकसित हुई जिसमें मुख्य रूप से संप्रदायिक एकता और समानता की भावना समाहित थी।

भक्ति कालीन ज्ञानाश्रयी भक्तों के साहित्य 'संत साहित्य' नाम से जाना जाता है। 'सन्त' साधक की एक अवस्था विशेष का नाम है, जहाँ द्वैत भावना के स्थान पर अद्वैत भावना का उदय होता है। सन्त कवियों ने ब्रह्म को सगुण और निर्गुण के परे माना । सन्त कवि पंडित नहीं थे शुद्ध ज्ञानी थे ।

हिन्दी भक्ति साहित्य में संत साहित्य का सूत्रपात कबीर साहित्य से शुरू होता है। लेकिन आपके पहले ही संत साहित्य का अद्भव हुआ था। नामदेव, जयदेव जैसे भक्त कवियों की रचनायें समय पर प्रभाव डाला भी था। उनके बारे में अब विचार करेंगे। सन्त संप्रदाय की भूमि तैयार करने के लिए निम्न लिखित धार्मिक प्रभाव देखे जा सकते हैं –

1. नाथ संप्रदाय की आत्मानुभव और योग की परंपरा
2. विट्टल संप्रदाय की प्रेमासक्ति
3. रामानंद के प्रभाव से उत्पन्न अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत की मिश्रित विचाराधारा में भक्ति की स्थापना
4. सूफीमत की रूपकों से संपन्न रहस्यवादमयी मादकता और माया के मानवीकरण की प्रवृत्ति।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल एक प्रकार से लडाई झगडे का युग था । भीतरी और बाहरी राजाओं के आक्रमण के कारण लोग ऊब गये थे। गुप्त सामाज्य के पतन के बाद सफल शासक न होने के कारण कई विदेशी शक्ति भारत में आये । उनमें प्रमुख मुसलमान ही थे। भारत में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो गया। उत्तर भारत में आये मे लोग भारतवासियों को सताना शुरू किया । रक्षा करनेवाले - शासक का यों भक्षक बन जाने के कारण लोगों की ध्यान भगवान की शक्ति और करुणा की ओर मुड गयी।

राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में आये परिवर्तन सामान्य लोगों के लिए किसी प्रकार सराहनीय नहीं रही। विभिन्न बौद्ध तथा जैन अचार्यों के आचार- अनुष्टानों के कारण लोगों की धर्म भावना डूबती जा रही थी। उनका हुदय धर्म से हटता चला जा रहा था।

समाज में आये इन परिवर्तनों के कारण भक्ति का जो प्रवाह दक्षिण की ओर से धीरे धीरे उत्तर

भारत की ओर बह रही थी, तेज़ होने लगी। प्रेम स्वरूप ईश्वर के बारें में बतानेवाले उनके पीछे हिन्दु जनता ही नहीं मुसलमान भी आने लगे। व्यक्तियों में आत्विक गुणों के विकास करके उसे आध्यात्मिक जीवन प्रदान करने में संतों को सफलता मिली।

मध्य युगीन भवित का मूलाधार राम और कृष्ण है। 'भागवत पुराण' के कृष्णावतार कृष्ण भक्त कवियों के लिए उपज बन गया और भागवत के आधार पर कृष्ण भक्त कवि व्रज भाषा में रचना करने लगे। वैष्णव भक्ति के आचार्यों ने समाज में दया, प्रेम, अहिंसा, सद्भाव, त्याग आदि भावनाएँ लाने की कोशिरा की । उनका युग ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवतीं शताब्दी तक स्वीकार किया जाता है। इन में श्री रामानुजाचार्य, श्री माधवाचार्य, निंबार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से सगुण भक्ति का निरूपण किया तो गुजरात में माधवाचार्य ने दूँतवादी वैष्णव संप्रदाय चलाया। जयदेव, विध्यापति व रामानन्दजी भी इन दोनों के सुर के साथ अपना सुर मिलाया। रामोपासक और कृष्णोपासक भक्तों की परंपरायें यों चलने लगी । इन भक्तों ने ब्रह्म का साक्षात्कार राम और कृष्ण के रूप में किया। भारत में मुसलमानों के बस जाने से देश में जो नई परिस्थिति उत्पन्न हुई, उसकी दृष्टि से हिन्दु, मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग का विकास होने लगा। महाराष्ट्र के विख्यात भक्त कवि नामदेव के बाद कबीरदास जी ने एक व्यवस्थित रूप से इस सामान्य भक्ति मार्ग को 'निर्गुण' पंथ के नाम से चलाया।

भक्तिकालीन परिस्थितियाँ

भक्तिकाल का समय सं 1375-1700 तक रहा। उस समय के भारत का इतिहास देखते वक्त हम यह समझ पायेंगे कि वह समय राजनैतिक दृष्टि से उथल - पुथल का रहा है । भारत में गुप्त साम्राज्य के बाद प्रबल शासक गद्धी पर आये ही नहीं। जो शासक यहाँ शासन कर रहे थे वे दूर्बल थे। अपने पडोस के राज्य को अपना बनाने की कोशिश में तल्लीन उनको मदद देने के बहाने से आये विदेशी शासक रानैः रानै भारत को अपने अधीन में लाये। मुगल काल तक देश में राजनैतिक स्थिरता रहा ही नहीं । भक्तिकाल की समयावधि में तुग्लक, सैयद मोदी और मुगल वंश के सम्राटों ने भारत पर शासन किया। भक्तिकाल का पूर्वार्द्ध शासकों के बीच घमासान लडाइयों के कारण आशान्त ही रहा। विदेशी शासकों ने तलवार के बल पर अपने धर्म को प्रचारित करने का प्रयास किया। आम लोगों का जीवन अस्त व्यस्त ही रहा। इस प्रकार तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का भक्ति आन्दोलन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

सामाजिक व्यवस्था भी किसी प्रकार से सराहनीय नहीं रहा । भारतीय समाज में छुआछूत तथा ऊँच नीच की भावना और अधिक बढ़ गयी। हिन्दु और मुसलमाल के बीच का अंतर और बढ़ गया। समाज में संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी। स्त्रियों को समाज में ऊँचा दर्जा नहीं मिला था । बहु विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। साथ ही साथ बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती-प्रथा का भी खूब प्रचलन हुआ।

आर्थिक दृष्टि से सुविधा संपन्न तथा अभावग्रस्त रूप में समाज विभाजित हो गया था। अभावग्रस्तों का जीवन किसी भी प्रकार संकट मुक्त नहीं रहा। अमीर लोग विलासिता में डूबते रहे। उनके विलासिता के लिए रुपया गरीबों से ही वसूल करते रहे। यह उनमें नीरस की भावना उत्पन्न होने का कारण बना। धन की कमी, छुआछूत, लडाई, विदेशी शासकों के आक्रमण इन सब कारणों से लोगों में आतंक फैलने लगी ।

'धर्म' व्यक्ति और ईश्वर के बीच के पुल के समान है। पुल तो किसी के पक्ष में होनेवाला नहीं होना

चाहिए। पूर्व मध्यकाल में अमीर लोगों ने धर्म के नाम पर भी औरों को सताना शुरू किया। समाज में बाह्याडंबर तथा कर्म काण्डों की प्रधानता होने लगी। आम लोगों को ईश्वर के पास पहूँचने की मौका भी यों बन्द हो गया। धार्मिक नेता भी मूर्ख शासकों से हाथ मिलाये तो लोग पूर्ण रूप से ऊबने लगे। इस्लाम और हिन्दु धर्मानुयायियों के बीच धर्म के नाम पर झगडा भी शुरू हुआ । इस प्रकार धर्म भी आम लोगों के लिए अप्राप्य रहा।

इन सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में भक्ति साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। भक्ति का जो प्रवाह दक्षिण की और से धीरे उत्तर भारत की और आ रहे थे उसकी गति बढ़ाने में ये परिस्थितियाँ सहायक सिद्ध हुए । यों एक और तो प्राचीन सगुणोपासना का काव्य क्षेत्र तैयार हुआ, दूसरी और हिन्दु - मुसलमान के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग का विकास भी होने लगा।

Unit 2

भक्तिकालीन संत कवि एवं काव्य

हिन्दी साहित्य में भक्ति से संबन्ध रखनेवाली भावधारा के अंतर्गत सन्त काव्य का विशेष महत्व है। सन्त काव्य उन्हीं कवियों की बानियों का नाम है जिन्होंने निर्गुण संप्रदाय के अन्तर्गत रचना की है। संत काव्य की आधार-शिला अनुभव ज्ञान की है। उसमें जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन विधमान है। संत काव्यों के अंतर्गत जन-जीवन की स्वाभाविक एवं धार्मिक प्रेरणाओं की सहज अभिव्यक्ति हुई है । संत काव्य की ऐतिहासिक स्थिति विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी से मानी जाती है। जिन परिस्थितियों में संत काव्य की रूपरेखा साकार हुई, उनमें हमारे देश के धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास की पृष्ठभूमि है। अब कुछ संत कवियों के बारे में विचार करना है ।

14 वीं से 17 वीं के मध्य भक्ति की स्थिति इस प्रकार थी-

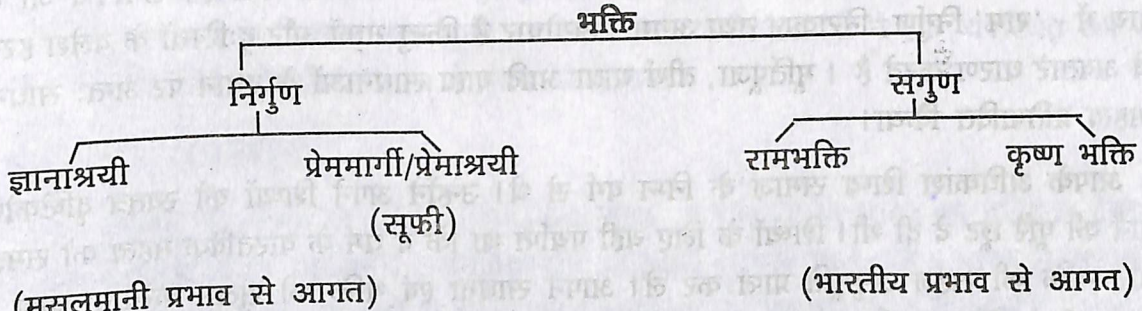

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति युग के अन्तर्गत जिस काव्य प्रवृत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख किया जा सकता है उसका संबन्ध निर्गुण काव्य से है। विदेशी आधिपत्य होने के कारण जनता में धार्मिक भावनाओं का उद्रेक हुआ। समाज में अनेक धार्मिक संप्रदाय प्रचलित थे। जिनके अनुयायी हिन्दु परस्पर विरोध और शत्रुता की भावना रखते थे। उसके ऊपर विदेशी अक्रमण भी हुए तो सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त बना। ऐसे मौके में निर्गुण संप्रदाय के अंतर्गत एक विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति विकसित हुई जिसमें मुख्य रूप से साँप्रदायिक एकता और समानता की भावना निहित थी। जाति और संप्रदाय विहीन यह विचारधारा समकालीन आवश्यकताओं की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण थी ।

निर्गुण काव्य में जो पहली धारा मिलती है वह ज्ञान और साधना पर आधारित है। भक्ति युग में निर्गुणकाव्य की प्रवृत्ति के अंतर्गत जिन प्रमुख कवियों का योगदान है उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :-

जयदेव

निर्गुण शाखा के सर्व कवि के रूप में जयदेव का नाम ही उल्लेखनीय है। 'गीत गोविन्द' इनकी विख्यात कृति है। आप राजा लक्ष्मण सिंह की सभा के पाँच रत्नों में से एक थे। 'गीत गोविन्द' के अतिरिक्त 'रसना राघव' तथा 'चन्द्रालोक' नामक दो अन्य कृतियाँ भी उनकी हैं । जयदेन के बारे में सूचना चन्द बरदाई की रचना तथा 'भक्तमाल' में मिलता है। आप निंबार्क संप्रदाय को माननेवाले थे। लेकिन निर्गुण काव्य का तत्व इनकी कविता में सर्व प्रथम उपलब्ध होता है।

नामदेव

नामदेव महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत था। आप नाम स्मरण पर बल देनेवाले विट्टल संप्रदाय के कवि थे। 'निर्गुण बानी' आपकी प्रमुख रचना है।

रामानन्द

भक्ति कालीन संतों में रामानन्द का नाम सबसे पहले लिया जाता है। संत मत के प्रचार में रामानन्द की बहुत बडी मूभिका रही है। आप के शिष्यों की एक लम्बी परंपरा रही है। नाभादास के 'भक्तमाल' में रामानन्द के बारह शिष्यों का नाम है-

"अनंतानंद, कबीर, सुखा, सूरसुरा, पद्मावत, नरहरी, पीपा, भावानन्द, रैदास, धना, सेन, सुरसरि की धररहरि।"

रामानन्द को रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में चतुर्थ माना जाता है। आपके साधना मार्ग दशधा भक्ति के रूप में माना जाता है । दसवीं प्रकार की भक्ति को प्रेम भक्ति माना जाता है। आपने 'रामावत' संप्रदाय का प्रवर्तन किया। 'रामावत' संप्रदाय में राम को आराध्य माना गया है। रामानन्द जी के संप्रदाय में - 'राम' निर्गुण, निराकार तथा अगम - अगोचार है किन्तु भक्तों और दुःखियों के क्लेश हरण हेतु वे अवतार धारण करते है । मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा आदि बाह्य साधनाओं के स्थान पर अन्तः साधना का महत्व प्रतिपादित किया।

आपके अधिकांश शिष्य समाज के निम्न वर्ग से थे। उन्होंने अपने शिष्यों को स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाने की पूरि छूट दे दी थी। शिष्यों के लिए यही पर्याप्त था कि वे धर्म के वास्तविक महत्व को समझ ले और भक्ति की सहज अनुभूति प्राप्त कर ले। आपने साधना एवं भक्ति को सुलभ करवाना चाहा । रामानन्द जी के शिष्य कबीरदास ने साधना एवं भक्ति के सोपान सबके लिए खुला रखा । सोलहवीं सदी में रामावत संप्रदाय श्री संप्रदाय के बीच का भेद लुप्त हो गया।

रामार्चन पद्धति, आनन्द भाष्य और वैष्णवमताब्ज भास्कर आपकी रचनाओं में प्रमुख है । रामानंद का महत्व हिन्दी साहित्य में राम भक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य के रूप में अन्यतम है।

रामानन्द जी के शिष्यों में प्रमुख स्थान कबीरदास को ही है। उनके अलावा और कुछ शिष्यों का उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है ।

सेननाई

रामानंद के शिष्य सेननाई ज्ञानेश्वर के समकालिक थे। ये बारकरी संप्रदाय के अनुयायी भी बताये जाते हैं ।

कबीरदास

रामानंद जी के शिष्यों में प्रमुख स्थान कबीरदास को ही है । विभिन्न इतिहासकारों ने आप को इब्राहिम लोदि का समकालीन बताया है। डॉ.माता प्रसाद गुप्त, हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे आचार्यों ने उनका जन्म संवत् १४५५ में होने का अनुमान लगाया है। उनके जन्म के बारे में ऐसा एक जनश्रुति है; महात्मा रामानन्द ने प्रसन्न होकर एक विधवा ब्राह्मणी को पुत्रवती होने का आशिर्वाद दिया। उस आशिर्वाद के फलस्वरूप कबीर का जन्म हुआ। किन्तु उस ब्राह्मणी ने लोकलाज से डर कर उसको एक तालाब के किनारे पर छोड दिया। वहीं से नीरू और नीमा नामक जुलाहा दंपतियों ने उनको लिवा लाया और पाला पोसा।

कबीर रामानन्द को अपना गुरु बनाना चाहा नीच जाति के होने के कारण रामानन्द जी तैयार नहीं हुए। कबीरदास अमावसि की रात में गंगा घाट की सीढ़ियों पर जाकर लेट गए। जहाँ पर रामानन्द नित्य नहाने जाते थे । रामानन्द का पैर कबीरदास के शरीर पर लगा और उनके मूँह से 'राम, राम' शब्द निकला । कबीर ने राम मंत्र को गुरू मंत्र और रामानन्द को गुरु मान लिया। कबीर के गुरु के रूप में शेख तकी का नाम भी बताया जाता है । ऐसा माना जाता है कि कबीर के लोई नाम की पत्नी भी थी, जिससे कमाल और कमालि नामक पुत्र तथा पुत्री उत्पन्न हुए । कबीर की मुत्यु संवत् १५७५ में मगहर नामक स्थान पर हुई थी।

कबीर को कोई शिक्षा नहीं मिली। अनुभव तथा श्रुति से प्राप्त ज्ञान को ही आप गाते रहे। उन्होंने स्पष्ट ही कहा था-

"मसी कागद छुऔ नहीं

कलम गाह्यौ नहीं हाथ"

देशाटन और साधुओं की संगति से ही आप बहुज्ञ बने। कबीर की भाषा सधुक्कडी है। भाव विभोर होकर आप के गाते वक्त शिष्यों ने उन पदों को लिपिबद्ध किया। कबीर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी के डिक्टेटर' कहकर पुकारा है । कबीर की वाणी में बनावटीपन के स्थान पर भावों की सहजता दिखायी देती है।

कबीर रचित कुल 61 ग्रन्थ माने जाते हैं । इनमें 'अगाध मंगल', 'अमरमूल', 'अक्षर खंड की रमैनी', 'साखी', 'बीजक' आदि उल्लेखनीय हैं । कबीर के काव्यों में निरूपित विविध विषयों के आधार पर उनके विविध रूप - समाज सुधारक, समन्वयक, दार्शनिक, भक्त आदि हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं।

कबीर के साधना मार्ग

कबीरदास निर्गुण भक्ति संप्रदाय के प्रतिनिधि है। इन्होंने निर्गुण, निराकार ब्रह्म की उपासना की है । कबीर ने माता को 'माया' और पिता को 'परमात्मा' कहा है । कबीर का एकेश्वरवाद भारतीय अद्वैतवाद के अनुरूप ही है। परमात्मा से मिलने केलिए तडपनेवाले आत्मा का चित्रण आपकी वाणियों में दीख पडता है । निराकार की प्राप्ति उन्होंने ज्ञान द्वारा संभव बताई है। उन्होंने 'राम' शब्द की प्रयोग किया है, परन्तु इसका अभिप्राय दशरथ के पुत्र राम से न होकर ब्रह्म से है । ज्ञान के साथ कबीर ने प्रेम के महत्व को भी स्वीकार किया है।

अपने काव्य में एकेश्वरवाद की पुष्टि कर उन्होंने हिन्दु और मुसलमान दोनों वर्गा में एकता का बीजारोपण किया। वे हठयोग तथा वेदान्त सिद्धान्त एवं साधना के द्वारा इडा, पिंगला, सुषुम्न, कुंडलिनी, शून्यदेश, षटचक्र आदि का विवेचन प्रतीकों का प्रयोग और उलटबासियों के माध्यम से किया है। आत्मा और परमात्मा, ब्रह्म और जीव, लोक - परलोक की रूपोक्ति द्वारा उन्होंने अनन्त ब्रह्म की सत्ता गान किया है। कबीर ने ब्रह्म को प्रियतम और अपने को प्रेयसी के रूप में चित्रित किया।

कविता लिखना कबीर का लक्ष्य था। आप भक्त, साधक और सुधारक अधिक थे, कवि कम। कबीर की प्रेम तथा भक्ति परक रचनाओं में निरूपित भावात्मकता का प्रवाह उन्हें कवि रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। कवि के रूप में आप जीवन के अत्यन्त निकट है।

कबीर ने अपनी वाणियों में गुरु को महत्व दिया है। देखिए-

'गुरु गोविन्द दोऊ खडे काके लागूँ पाय

बलिहारी गुरू आपने जिन गोविन्द दियों बताय ।।'

हठयोगियों और सूफियों का असर भी आप पर पडा है। आपकी वाणी में स्थान स्थान पर भावात्मक रहस्यवाद की जो झलक मिलता है वह सूफियों के सत्संग का प्रसाद ही है।

आप एकेश्वरवादी है । लेकिन उनका एकेश्वरवाद मुसलमानों से भिन्न है। कबीर का राम व्यापक है वह समस्त संसार में रम-रहा है। वह अगोचर है, वर्णनातीत है । उसकी प्राप्ति प्रेमपूर्ण भक्ति से ही संभव होगा।

आपकी भक्ति अनन्य भाव से संपन्न है । भक्ति के मार्ग में माया, कनक और कामिनी रोक डालती है, अतः आपने इनकी भर्त्सना की है । सूफियों की और आपकी रहस्यवाद समता की अपेक्षा विषमता अधिक रखता है । कबीर फक्कड फकीर थे। वे जन्मजात विद्रोही थे। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में - "कबीर सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड, आदत से अक्कड, भक्त के सामने निरीह, दिल से साफ, धूर्त वेषधारी से आगे प्रचंड, दिमाग से दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे।"

कबीर का रहस्यवाद

रहस्यवाद पर चर्चा करने के पहले रहस्यवाद के बारें में जान लेना आवश्यक है । दर्शन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, वही काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद है। ईश्वर आरम्भ से ही अज्ञात और रहस्य की वस्तु रहे हैं । जब मानव उस परमतत्व को जानने का प्रयत्न साहित्य के माध्यम से करता है तब वह रहस्यवाद कहलाता है । कबीर ने ज्ञान, योग, प्रेम आदि साधनों द्वारा उस परम तत्व को जानने का प्रयत्न किया है। काव्य में भावात्मक तथा साधनात्मक रहस्यवाद दीख पायोंगे। कबीर की रचनाओं में इन दोनों का सफल मिश्रण हुआ है।

भावात्मक रहस्यवाद को अनेक अवस्थाओं में विभक्त किया है। उसमें प्रेम की प्रधानता होती है। प्रथम अवस्था में साधक की आत्मा परमात्मा की असीम सत्ता तथा अनिर्वचनीय सौन्दर्य को देखकर चकित रह जाता है । ऐसी हाल में साधक सब कुछ देखकर भी उसे व्यक्त कर नहीं पाता। उनके लिए ईश्वर 'गूँगे के गुड' के समान है ।

"ऐसा अद्भुत जिन कथै, अद्भुत रखिलुकाई

वेद कुरानौ गमि नहीं, कहाँ है न को पतियाँड।"

दूसरी अवस्था में आत्मा परमात्मा से मिलने की आतुरता प्रकट करती है। यहाँ साधक की आत्मा आशा - निराशा, विरह-मिलन, अभिलाषा -वेदना के बीच भटकती है। आपकी रचनाओं में इस पक्ष का मार्मिक चित्रण हुआ है। विरहिणी आत्मा प्रियतम के आगमन का समाचार सुनने के लिए तडप रही है, देखिए-

"आँखडियाँ झाँई पडी, पंथ निहारी निहारी

जीभडियाँ छाला पड्या राम पुकारी पुकारी"

तृतीय अवस्था आत्मा और परमात्मा के ऐक्य की है। यहाँ साधक को सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम दिखाई देता है-

"लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल

लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल"

इस प्रकार कबीर ने आध्यात्मिक विषयों का दुरूह चित्रण अपने काव्य में किया है। कबीर के

रहस्यवाद में मुख्यतः आत्मा और परमात्मा के पृथकीकरण की स्थिति को प्रकट किया है। कबीर का रहस्यवाद सूफी सैद्धान्तिक मान्यताओं और भक्तियुगीन अद्वैतवादी मत का समन्वयात्मक रूप है। आत्मा और परमात्मा का एकीकरण और आत्मा का परमात्मा में विलिनीकरण इसकी चरम परिणति है।

कबीर के काव्य में रहस्यवाद के दूसरे रूप साधनात्मक रहस्यवाद का भी सफलतापूर्वक निरूपण हुआ है। साधनात्मक रहस्यवाद में ज्ञान की प्रधानता है। आत्मा और परमात्मा वास्तव में एक ही है। लेकिन माया के आवरण पडने के कारण हम यह समझते ही नहीं। इसको कबीर कैसे समझाता है देखिए,

"जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी

फूटा कुंभ जल जल ही समाना यह तथ कह्यो ग्यानी ।"

साधना के क्षेत्र में गुरु को सर्वाधिक महत्व दिया है ।

कबीर के चरित्र और विचारधारा पर विचार करते समय दो विरोधी पक्ष हमारे सामने आते हैं । एक पक्ष तो उनके प्रखर तेजस्वी, अन्धविश्वास विरोधी, समाज सुधारक का है तो दूसरा सन्त, भक्त, ज्ञानी, मनीषी और मानवतावादी का है ।

कबीर का रचनायें

कबीर पुस्तकीय ज्ञान का सदा विरोध करते रहे । वे पांडित्य को अपूर्ण ज्ञान कहते हैं । उनके मुँह से जो वचन निकले उसे उनके भक्तों और शिष्यों ने लिपिबद्ध कर साहित्यबद्ध किया है । कबीरपंथी भक्त 'बीजक' को प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं । बीजक को तीन भागों में विभक्त किया है– साखी, सबद और रमैनी ।

साखी

'साखी' का शब्दिक अर्थ होता है प्रत्यक्ष दृष्टा । सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्त के उपदेश मुख्यतः साखी के भीतर है । कबीर ग्रन्थावली में ८०९ साखियाँ हैं, जिन्हें आठ शीर्षकों – नियम, मानवी स्वभाव, पाखण्ड, गुरुदेव, परमात्म परिचय, प्रेमभक्ति, आदर्श व्यवहार, आदेश व विनय में प्रस्तुत किया है ।

सबद

ये पद मुख्यतः गेय उपदेशत्मक वचनों का बोध कराते हैं । इनको कबीर पंथियों ने सबद संज्ञा प्रदान की है । सबद में ४०३ पद है । भौतिक विषयों की नश्वरता, जीवन की क्षणभंगुरता आदि सबद के प्रतिपाद्य हैं ।

रमैनी

कबीर के वर्णनात्मक पद्यों को इसमें समेटा है । ईश्वर प्रशंसा 'राग सूही' में, माया की भयंकरता 'सतपदी' में, 'बडी अष्टपदी' में ईश्वर - अनिर्वचनीयता, 'चौपदी' में मानवीय एकता का निरूपण हुआ है ।

कबीर का काव्य अत्यन्त व्यापक है । कबीर की समस्त वाणियों को समाहित करना आसान काम नहीं है । इनमें से गुज़रते वक्त इन विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है,

1. नाथ संप्रदाय की आत्मानुभव
2. विट्टल संप्रदाय की प्रेमभावना
3. स्वामी रामानंद की भक्ति भावना
4. सूफी मत की रहस्यवादी मादकता
5. वेदान्त के एकेश्वरवाद

तत्कालीन पाँच विचारधाराओं का सफल सम्मिश्रण करने में आपको सफलता मिली ।

समाज सुधारक कबीर

संत कबीर एक क्रान्तिकारी कवि थे । अनुभव ज्ञान के आधार पर ही आप कुछ कहते थे । इसीलिए ही मानव समाज से संवाद करने में उनको कोई दिक्कत नहीं हुई ।

कबीर के आविर्भाव काल में परिस्थितियाँ इतनी उलझ रही थी कि उन्हें सुलझाना, मुश्किल ही था। धार्मिक और सामाजिक समस्यायें जटिल हो रहे थे । ऐसी हाल में कबीर जैसे समाज सुधारक की ज़रूरत थी । धर्म के सीमाओं को तोड़ने के लिए विश्व धर्म की कल्पना आप ने की । ईश्वर एक ही है वह अगोचर है, यह धारणा फैलाने में आप तल्लीन रहे ।

परब्रह्म तक पहूँचने के लिए जाति और धर्म रोक डालनेवाला है । उनके आचार्यों ने ही आत्मा और परमात्मा के बीच विभाजक रेखायें खींच डाला । समाज का संबन्ध राजनीति और धर्म से है । उन दोनों में होनेवाले हलचल समाज में भी दीख पायेंगे । पन्द्रहवीं सदी में राजनीति और धर्म से लोगों को चैन नहीं मिला । ऐसे समाज को अपने वाणियों से सचेत करने में कबीर सफल रहे -

"कबीर गरबु न कीजिए, याम लपेटे हाड

हरबर ऊपर छत्र पर ते पुनि परतीगाड ।"

धर्म के क्षेत्र से जाति की जाल तुड़वाने की कोशिश बौद्ध धर्म ने किया था । कबीर और गुरु रामानन्द जाति के जंजीरों को तोड़ने का काम किया । धर्म प्रचार और प्रसार के लिए भी यह परम अवश्यक ही था ।

इसके साथ साथ समाज में और एक मुसीबत आने लगे – हिन्दु-मुसलमान झगड़ा । शासक के रूप में आए मुसलमान हिन्दुओं को मानने के लिए तैयार नहीं थे और मुसलमान विधर्मी होने के कारण हिन्दु घृणा की नज़र उन पर डाल रहे थे । भिन्न आचारवाले दोनों के बीच समझौता बनाना आसान काम नहीं था । फिर दोनों समाजों में प्रचलित पाखण्डों व अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाते हुए कबीर दोनों के मन में जगह पा लिया और समझौता की भावना का बीज बोया । यह समाज की भलाई के लिए आवश्यक ही था ।

घूमते रहने के आदत होने के कारण समाज के प्रत्येक परिस्थितियों का ज्यों का त्यों चित्र कबीर को मिला । इसलिए ही समाज को जिसकी ज़रूरत है उनको उपलब्ध कराने में आपको सफलता मिला। सफल समाज सुधारक का मुख्य ध्येय भी यही है । सहजता, स्पष्टता और सरलता आपकी वाणियों की विशेषता है । समाजोन्मुखी भक्ति साधना आपकी खासियत है ।

रविदास या रैदास

संत रविदास रामानन्द के बारह शिष्यों में प्रमुख थे । चमार जाति के आप का उल्लेख भक्त मीरा की पदों में भी मिलता है । ये कबीर के समकालीन थे । आपका परिचय 'भक्तमाल', 'रैदास की परिचई' आदि रचनाओं में भी हुआ है । आपका लिखा कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता । इनके लिखे

४० पद गुरु ग्रंथ साहब में संकलित है । आप निर्गुण मार्गी संत थे । आपका साधना मार्ग बहुत कुछ कबीर के मार्ग जैसा ही है । अवधि, राजस्थानी, खडीबोली, उर्दु, फार्सी शब्दों का प्रयोग आपकी भाषा में अन्यत्र मिलते हैं । कहा जाता है कि रैदास को मीराबाई ने गुरु के रूप में स्वीकार किया । मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा जैसे बाह्य विधानों का विरोध कर उन्होंने आभ्यन्तरिक स्थान पर बल दिया है । वस्तुतः रविदास-वाणी आज के भौतिकवाद के संतप्त संसार को सुख और शान्ति प्रदान करने में पूर्ण रूप से समर्थ है । इनकी भक्ति प्रेम भाव की है । कबीर का माधुर्य भाव भी इन्हें अभीष्ट है ।

धर्मदास

धर्मदास बनिया जाति का माना जाता है । कबीर के मृत्यु के बाद उनकी गद्धी पर बैठने का श्रेय आपको मिला है । भक्ति मार्ग के अनुयायी होने के पश्चात् यह कबीर से दीक्षा लिये । आपने कबीरदास के गूढ़ उपदेशों को सामान्य और सरल शैली में लोगों को समझाया। सगुण भक्ति से आप निर्गुण की ओर आया । धर्मदास की सबसे प्रमुख रचना 'अमर सुख निधान' है । धर्मदास की वाणी में मधुरता है । अनुभूति की सरलता और सहजता तथा अभिव्यंजना की तीव्र संप्रेषणीयता भी दीख पायेंगे । प्रेमतत्व को लेकर ही इन्होंने अपनी वाणी का प्रसार किया ।

गुरु नानाक

गुरु नानाक ऐतिहासिक पुरुष थे साथ ही साथ संत भी । आपका जन्म सं. १५२६ ई. में लाहौर जिले के तलबंडी ग्राम में हुआ था । आप जाति के खत्री थे । आपके पिता का नाम कालू एवं माता का नाम तृप्ता कहा जाता है । ज्ञान का प्रकाश हृदय में फैलने के कारण इन्होंने स्कूली शिक्षा का परित्याग करके सतसंग एवं ज्ञान-चिन्तन करने लगे । गृहस्थ जीवन बिताने का अवसर भी आपको मिला । आपके दो पुत्र - श्रीचन्द तथा लक्ष्मी चन्द थे ।

आपने विविध स्थानों की यात्रायें की । इन यात्राओं से मिले भिन्न मतों के अनुयायियों के सहारे से आप नानक पंथ का प्रवर्तन किया । नानक के पदों को छठे गुरु अर्जुन देव ने 'गुरु ग्रंथ साहब' नामक ग्रंथ में संकलित किया । यही बाद में सिक्खों के धार्मिक ग्रन्थ बन गये । इसमें मुख्यतः एकेश्वरवाद से संबन्धित सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन हुआ है । आपकी रचना में भक्ति, दीनता, सरलता एवं समर्पण की प्रधानता है । नानक देव की काव्य भाषा के तीन रूप है -हिन्दी, फारसी और पंजाबी। उनकी भाषा में प्रवाह और सहजता अन्यत्र दिखाई देता है ।

इनकी रचनायें पढ़कर स्पष्ट होता है कि इनकी प्रकृति अत्यन्त सरल, अहंभाव शून्य और स्फटिक के समान निर्मल थी । सन् १५३९ ई. में उनका देहान्त हुआ ।

दादू दयाल

हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा में दादू का महत्वपूर्ण स्थान है । आपका जन्म सन् १५४४ ई. में हुआ था । आपका वास स्थान अहम्मदाबाद माना गया है । कबीर के समान आप भी बहुश्रुत थे । सिद्धान्त दृष्टि से आप कबीर पंथ के अनुयायी थे । पर उन्होंने दादू पंथ के नाम से नया पंथ चलाया। आप के गुरु, परिवार आदि के बारे में पंडितों के बीच मतैक्य नहीं है । आप यायावरी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । दादू की रचनाओं का संकलन 'हरडेवाणी' के नाम से निकले थे । जिसका संग्रह उनके शिष्य संत दास और जगन्नाथ ने किया था । दादू का आत्मानुभव ही उनकी वाणी हैं । कबीर की वाणियों की चमत्कार दादू की वाणियों में नहीं है । कबीर के समान खंडन और मंडन में इन्हें रुचि नहीं थी ।

सुन्दरदास

आपका नाम दादू दयाल के शिष्यों में आता है । आपके पिता का नाम चोखा तथा माता का नाम सती था । 'ज्ञान समुद्र', 'सुन्दरविलास', 'साखी' आदि आपकी प्रमुख रचनायें हैं । निर्गुण पंथियों में समुचित शिक्षा मिलने का श्रेय सिर्फ आपको ही मिला है । वे काव्यकला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे । आप ने व्रज भाषा में भी काव्य रचना की है ।

मलूकदास

आपका जन्म इलाहाबाद जिले के कठा गाँव में सन् १६३७ ई. में हुआ । पिता का नाम सुन्दरलाल खत्री था । 'ज्ञानबोध', 'रत्नखान', 'भक्त विरुदावली' आदि आपकी मुख्य रचनायें हैं । आत्म समर्पण इनकी भक्ति का सार कहा जाता है । आपने व्रज तथा अवधी भाषाओं में काव्य रचना की । देवनाथ आपके दीक्षागुरु के रूप में जाने जाते हैं ।

भक्तिकालीन हिन्दी निर्गुण काव्यधारा के अन्य कवियों में जम्भनाथ, हरिदास निरंजनी, सींगा, लालदास, सदना, गुरु अर्जुन देव आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

संत काव्य की प्रमुख विशेषतायें

हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच संघर्ष चलते वक्त संत काव्य का प्रादुर्भाव हुआ । धर्म, वर्ण, जाति के आधार पर ऊँच नीच की चरम शिखर थी । समस्त स्तर की सुख-सुविधाओं पर उच्च जाति के लोगों का एकाधिकार था । इसी वक्त संतों का प्रादुर्भाव हुआ । उनकी काव्यों की प्रमुख विशेषतायें हैं –

1. **ईश्वर** : संतों ने भक्ति का आधार 'निर्गुण' ब्रह्म माना । इस्लाम साकार में विश्वास नहीं रखते थे और हिन्दु समाज में सगुणोपासन, समाज के ऊँच जातिवालों तक ही सीमित रहा। ऐसी हाल में संतों ने आराधना के लिए 'निर्गुण ब्रह्म' को स्वीकार लिया । हमारे तन में ही जीवित ईश्वर को पहचानने की सलाह उन्होंने दिया ।

2. **साधना** : पूजा, अर्चना आदि के स्थान पर योग - साधना और ज्ञान मार्ग को अपनाने पर बल दिया । अज्ञान रूपी अंधकार से बचने के लिए गुरु की आवश्यकता है । साधक को आत्मानुभूति देने की क्षमता गुरु को ही है । संतों पर नाथ योगियों का प्रभाव था । नाथ योगियाँ तो हठयोग पर विश्वास करनेवाले थे । कुंडलिनी शक्ति को जगाकर शरीर से मुक्ति पाने के लिए वे कर्मरत थे । संतों ने हठयोग को पूर्ण रूप से स्वीकार न करके सहज योग को स्वीकार लिया । इसमें ज्ञान, योग और प्रेम का सम्मिश्रण हुआ है । साधना में बाह्याडंबर के स्थान पर मानसिक भक्ति की प्रमुखता थी । लोक कल्याण के लिए उन्होंने वैयक्तिक साधना पर बल दिया ।

3. **माया की व्यर्थता का चित्रण** : भक्तिकालीन निर्गुण साहित्य में माया का वर्णन गम्भीरता से हुआ है । माया के भिन्न रूपों को संतों ने दिखाया है । आम लोग माया में भ्रमित होकर घूमते रहते हैं । मिथ्या को जानकर भी लोग उनकी जाल में पडते हैं । उससे बचने गुरु की सेवा होना ही चाहिए ।

4. **समाज सुधार की कल्पना** : साहित्य समाज का दर्पण है । साहित्यकार अपने समाज का प्रतिनिधित्व करता है । सन्तों ने समाज में प्रचलित अनाचारों को मिटाने की कोशिश की । वैदिक काल से चली आ रही जाति-उप जाति संस्कार को उन्होंने तोड़ डाला । मानवीय एकता के लिए मार्गदर्शक के रूप में संतों का आविर्भाव हुआ ।

अन्धविश्वासों से लपेटे समाज को बचाने वे तल्लीन रहे । पत्थर की पूजा करनेवालों पर निन्दा करते हुए कबीर कह रहे हैं –

"पाथर का ही देहरा,पाथर का ही देव
पूजनहारा आँधला लागीखोटी सेव ।।
पत्थर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहाड"

हृदय के भीतर बसनेवाले खुदा को देखने तीर्थयात्रा करनेवालों को पंडित मानने संत लोग तैयार नहीं थे । उनकी व्यर्थता समझाकर दीन दुःखियों को मदद देने की सलाह संतों ने दिया । सन्तों ने कविता द्वारा मानव मन को एकसूत्र में बाँधकर मानवता के निर्मल पद पर पहूँचाने की कोशिश की ।

5. **संत काव्य में नारी** : संतों ने नारी की कामिनी रूप और सती रूप को माना है । वासना और मायामयी नारी की जितनी कठोरता के साथ भर्त्सना की है उतनी ही सहृदयता से पतिव्रता और सती नारी की प्रशंसा भी की है । सन्तों ने जहाँ माता की उल्लेख किया है, वहाँ वह सम्मान भावना का बोधक है । सन्तों की रचनाओं से तत्कालीन नारियों की हाल की निर्णय लेना आसान नहीं है ।

6. **नैतिक भावना** : नीति, मानव को किन किन काम करना है, का विवेक प्रदान करता है । सन्त काव्यों में दान, दया, सत्यता आदि नीति के नाना रूपों को शब्दांकित किया है । सन्तों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नैतिक भावना के परिष्कार की शिक्षा दे रही है।

7. **मानवतावादी चिन्तन** : आत्मा की एकता ही समाज में एकता लाने की सफल तरीका है । यह समझकर सन्तों ने आत्मा की एकता के अनेक पक्षों को उद्भावित किया है । यह लक्ष्य तक पहूँचने में विघ्न पैदा करनेवाला अन्धविश्वास, पाखण्ड आदि ही है । इसलिए उनके खिलाफ सन्तों ने तलवार उठायी । बाह्याडंबर के स्थान पर मानस भक्ति की प्रतिष्ठा करने वे काम करते रहे । स्वतंत्रता, समानता और विश्व बन्धुत्व की भावना फैलाने के संतों के कोशिश हिन्दु और मुसलमान अपने दिल में ले लिया ।

सन्तों ने व्यक्ति, समाज और अध्यात्म को आधार बनाकर रचनायें की । परपीड़ा आत्म ही समझकर धर्म, जाति सीमाओं को पार कर आगे चलने की प्रेरणा अपनी रचनाओं के ज़रिये सन्तों ने दी ।

8. **दार्शनिकता** : दार्शनिक दृष्टि से संत काव्य भारतीय अद्वैतवाद पर आधारित है । साथ ही साथ बौद्ध, वैष्णव, सूफी धर्मों का असर भी संतों पर पड़ा । शंकर के मायावाद को संतों ने ज्यों का त्यों स्वीकारा है । भक्ति के आलंबन के रूप में निराकार ब्रह्म को संतों ने स्वीकार लिया और अवतारवाद का विरोध भी किया ।

आत्मशुद्धि, इन्द्रिय निग्रह और आचरण की पवित्रता पर बल देनेवाले संत लोग लोक कल्याण के लिए विश्व धर्म की धारणा फैलाने की कोशिश की ।

9. **भाषा** : सन्त साहित्य सधुक्कड़ी भाषा में लिखा गया है । जन बोलियों में अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में उनको अपूर्व सफलता मिली । सीधी-सादी, सरल, सहज और भावानुकूल भाषा उनकी रचनाओं की विशेषता है ।

CUP/6181/08/500/SDE-2

10. हिन्दु-मुस्लिम एकता : हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए सन्त कवियों ने बहुत काम की । दोनों धर्मों की अच्छी बातों पर बल देकर और दुर्बलताओं पर प्रहार करके दोनों के बीच सौहार्द की भावना लाने का प्रयत्न किया ।

सन्त कवियों ने इस लोक में रहते हुए, गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए व्यक्तिगत साधना करते रहने का मार्ग प्रशस्त किया । उन्होंने अद्वैतवाद से निर्गुण ब्रह्म की भावना लेकर, वैष्णवों से सगुण भक्ति के तत्वों को अपना करके; सिद्ध नाथों से प्राचीन शास्त्रों की अवहेलना, वर्ण व्यवस्था का विरोध आदि की भावना ग्रहण करके जो मार्ग खोज निकाला, वह बाह्य विधानों के बन्धनों से मुक्त था ।

मानव में आत्म विश्वास व आत्म सम्मान की भावना जागृत करने का भरपूर कोशिश संतों ने किया था । यों आम लोगों को जंजीरें तोड़कर मानसिक दासता से मुक्ति दिलाने में उनको सफलता मिली । संतों की साधना-पद्धति पर सिद्धों तथा नाथों के साथ साथ वैष्णव भक्ति का भी प्रचुर प्रचार था । संत मत प्राचीन भारतीय दर्शन में निरूपित भावनाओं का विकसित रूप हैं ।

प्रेमाश्रयी शाखा

उत्तर मध्य काल में संत काव्य धारा के समानान्तर ही सूफी काव्य धारा का प्रवाह हुआ था । परस्पर लड़ते रहे दो समुदायों के बीच समरसता लाने की कोशिश सूफियों ने की ।

सूफी शब्द का अर्थ

सूफी शब्द की उत्पत्ति फारसी के 'सूफ' शब्द से मानी जाती है । 'सूफ' शब्द का अर्थ 'श्वेत वस्त्र' है । हमेशा सफेद वस्त्र पहननेवाले साधक को सुफी कहकर पुकारते थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में यों लिखा है – आरंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे, जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे । दीनता और नम्रता के साथ बडी-फटी हालत में दिन बिताते थे । ऊन के कंबल लपेटे रहते थे । भूख प्यासा सहते थे और ईश्वर के प्रेम लीन रहते थे ।

निर्गुण भक्ति का स्वरूप

आलंबन के आधार पर भक्ति के दो भेद हैं – निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति । पहली प्रकार की भक्ति में आलंब निराकार ब्रह्म है । सगुण भक्ति में आलंब साकार ब्रह्म है । सगुण भक्ति को भक्ति के क्षेत्र में और निर्गुण भक्ति को ज्ञान के क्षेत्र में गिना जाता है । निर्गुण शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग महाभारत में मिलते हैं ।

निर्गुण भक्ति में गुरु को महत्वपूर्ण स्थान है । उनके कृपा के बिना साधक एक पग भी नहीं चल सकता । किसी रूप में परमपिता को मानने वे तैयार नहीं थे । शंकराचार्य जी ने निर्गुण भक्ति को पारमार्थिक माना है ।

भक्ति काल में निर्गुण ब्रह्मा को आराध्य मानकर भक्ति साहित्य दो रूपों में सृजित हुआ – सन्त साहित्य और सूफ़ी साहित्य । सन्त साहित्य ज्ञानाश्रयी शाखा में और सूफ़ी साहित्य प्रेमाश्रयी शाखा में गिना जाता है ।

इन वस्तुगत प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि निर्गुण पंथियों ने व्यक्ति, समाज और अध्यात्म को अपनी कविता का विषय बनाया है । उन्होंने स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की व्यापक व्यंजना करके अपने उदार मानवतावादी दर्शन और दृष्टि का परिचय दिया है ।

रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से सगुण भक्ति का निरूपण किया तो गुजरात में माधवाचार्य ने द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय चलाया । जयदेव, विद्यापति व रामानन्द जी भी इन दोनों के सुर के साथ अपना सुर मिलाया । रासोपासक और कृष्णोपासक भक्तों ने परंपरायें यों चलने लगे । इन भक्तों ने ब्रह्म का साक्षात्कार राम और कृष्ण के रूप में किया । भारत में मुसलमानों के बस जाने से देश में जो नई परिस्थिति उत्पन्न हुई, उसकी दृष्टि से हिन्दु, मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग का विकास होने लगा । महाराष्ट्र के विख्यात भक्त कवि नामदेव के बाद कबीरदास जी ने एक व्यवस्थित रूप से इस सामान्य भक्ति मार्ग को निर्गुण पंथ के नाम से चलाया ।

निर्गुण काव्य : वस्तुगत प्रवृत्तियाँ

निर्गुण शाखा के प्रवर्तक लोभ लाभ की कामना से विरहित आत्मसाधना में लीन साफ सहज जीवन बितानेवाले साधु मानव थे । उनकी कथनी और करनी में विशेष तादात्म्य था । निर्गुण काव्यों की वस्तुगत प्रवृत्तियाँ ये हैं –

1. निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना :

हिन्दी के निर्गुण कवियों ने निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की है । सन्तों ने ब्रह्मा को सर्वदा निर्गुण माना है । उसको रूप नहीं है, मुख-माथा नहीं है । उसके स्वरूप निरूपण की युक्ति किसी के पास भी नहीं है । वह न मरता है, न जन्म लेता है । वह एक रस ही है । सन्तों ने ऐसे निर्गुण ब्रह्मा को हरि, राम, गोविन्द, विट्ठल, रहीम, अल्लाह जैसे कई नामों से पुकारा । ये नाम तो सगुण संप्रदाय का है । निराकार ब्रह्म सगुणता धारण करके आया है । यों सन्तों ने निर्गुण और सगुण के बीच एक सेतु बनाया है ।

2. गुरु महिमा वर्णन :

भारतीय वाङ्मय में गुरु को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया है । क्योंकि अज्ञान रूपी अन्धकार मिटाने की क्षमता उन्हीं को है । सन्त साहित्य में यह असर देख सकेंगे । उन्होंने गुरु को जीवात्मा का निर्मल रूप बताकर परमात्मा का साक्षात्कार करानेवाले मध्यस्थ के रूप में माना है । सन्तों का गुरु ईश्वर से ऊपर है ।

3. माया की व्यर्थता का प्रतिपादन :

कोई रचना या रूप जो साधकों को भ्रम में डालते है, वही माया है । भारतीय अध्यात्मक क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता माया का सिद्धान्त है । माया आत्मा और परमात्म का के मध्य भेद का पर्दा डालकर साधकों को परमात्मा से पृथक करती है । माया का वर्णन सन्त साहित्य में गंभीरता से किया है । समग्र संसार माया में आलिप्त हुआ है । हरि भक्ति के बिना माया से छुटकारा पा नहीं सकोगे - सन्तों ने यही धारणा का प्रतिपादन किया है ।

4. भक्ति भावना के विविध आयाम :

हिन्दी की निर्गुण कविता का मूल स्वर भक्ति है । भक्ति ही उनका आदि-मध्य-अन्त है । सन्तों की भक्ति भावना उनकी निजी थी । उनका मत है कि चित्त को पलमात्र के लिए भी ईश्वर से अलग न करना ही भक्ति है । यह भक्ति हमें गुरु कृपा से ही मिलते हैं । निर्गुण पंथियों की भक्ति व्यावहारिक जीवन के सन्देश से पुलकित है ।

5. उनकी साधना पक्ष और भक्ति पद्धति पर आचार्य शंकर की विचारधारा का व्यापक प्रभाव थे ।

6. निर्गुण भक्ति का मूल तत्व था नाम जप । नाम ही समस्त बन्धनों और संशयों को विच्छिन्न कर देता था ।

7. ये लोग मानसिक भक्ति पर ज़ोर दिये थे ।

8. ये लोग मानव को ऐसे धर्म के सूत्रों में बाँधना चाहा जहाँ जाति, वर्ग, वर्ण संबन्धी भेद न हो ।

9. सन्त संप्रदाय ने गुरु को ब्रह्म से भी महान माना ।

10. ये लोग सहज साधना पर बल देनेवाले थे ।

मध्ययुगीन संत साहित्य में भक्ति का मूल उद्देश्य मनुष्यों में श्रद्धा, विश्वास, सहयोग, भगवान का नाम, कीर्तन, स्मरण, उपासना और एकांत देश में रहकर अव्यभिचारिणी भक्ति से ईश्वर का ध्यान रखना है । वसुधैव कुटुंबकम का भाव भी साहित्य में दृष्टि गोचर होता है ।

सामाजिक सुधार की संदृष्टि

साहित्य और समाज का अत्यन्त समीपी संबन्ध है । इतना ही नहीं हम साहित्य को समाज का दर्पण भी मानता है । निर्गुण पंथी लोग एक आदर्श मानव और समाज की स्थापना के लिए काम करनेवाले थे । समाज में प्रचलित जाति-पांति का विरोध इसलिए ही उन्होंने की । सामाजिक संस्कारों एवं विश्वासों के बारे में मनन करके उनकी व्यर्थता को समाज के सम्मुख ये उजागर किए ।

नारी विषयक चिन्तन

निर्गुण पंथियों ने नारी के दो रूपों को माना है – कामिनी रूप और सती रूप । उन्होंने वासना और मायामयी नारियों की भर्त्सना एवं पतिव्रता और सती नारी की प्रशंसा की है ।

रहस्यात्मकता

उस अज्ञात परमसत्ता के प्रति जिज्ञासा, प्राप्ति की उत्कट लालसा तथा तदरूप हो जाने की तीव्र कामना का नाम ही रहस्यवाद है । उनका रहस्यवाद अत्यन्त व्यापक है । डॉ. गोविन्द त्रिगुणासत ने लिखा है कि उनके रहस्यवाद में कर्म, भक्ति, प्रेम, ज्ञान आदि सभी का सुन्दर सामंजस्य मिलता है । किन्तु इन सब में प्रधानता प्रेम की है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति युग के अंतर्गत जिस काव्य प्रवृत्ति का उल्लेख किया जा सकता है वह निर्गुण काव्य ही है । विदेशी आक्रमण और जाति-पांति की भावना लोगें को सतत समय में ही इनका विकास हुआ । इसमें मुख्य रूप से सांप्रदायिक एकता और समानता की भावना समाहित थी। ऊपर बता चुका है निर्गुण भक्ति शाखा को दो विभागों में बाँटा गया है । उनमें से ज्ञानाश्रयी शाखा के बारे में अब विचार करेंगे ।

ज्ञानाश्रयी शाखा

भक्तिकालीन ज्ञानाश्रयी भक्तों के साहित्य को सन्त साहित्य कहा जाता है । 'सन्त' साधक की एक अवस्था विशेष का नाम है, जहाँ द्वैत भावना के स्थान पर अद्वैत भावना का उदय होता है । सन्त कवि पंडित नहीं थे । सन्त कवि ब्रह्म को निर्गुण और सगुण दोनों से परे मानते थे ।

सन्त कवियों ने गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए व्यक्तिगत साधना करते रहने का मार्ग प्रशस्त किया था । अद्वैतवाद से निर्गुण ब्रह्म की भावना लेकर वैष्णवों से सगुण भक्ति के तत्वों को अपना करके,

सिद्ध एवं नाथों से प्राचीन शास्त्रों की अवहेलना, वर्ण व्यवस्था का विरोध आदि की भावना ग्रहण करते हुए निकले संत साहित्य, संपूर्ण बाह्य विधानों के बन्धनों और आडंबरों से मुक्त थे ।

हिन्दी साहित्य में संत साहित्य का उद्‌भव कबीरदास जी के पहले ही शुरू हुआ था । नामदेव, जयदेव आदि आचार्यों के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं । हिन्दी साहित्य में संत साहित्य का एक सुदृढ़ सूत्रपात कबीर के साहित्य से ही शुरू होता है । आपके अलावा लालदास, दादू दयाल, नानाक देव आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

सन्त काव्य जन मानस की अभिव्यक्ति और सामाजिक, धार्मिक चेतना का काव्य है । सन्त काव्यों की प्रमुख विशेषता यह थी कि वह पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर रचित रचनायें नहीं बल्कि अपने जीवन अनुभवों से मिले ज्ञान के आधार पर रचित रचनायें थी ।

भाषा, साहित्य को जीवन्त बनानेवाली है । सन्त साहित्य सधुक्कड़ी भाषा में लिखा गया है । सीधी-सादी, सरल और भावानुकूल भाषा उनकी रचनाओं की विशेषता है ।

Unit 3

सूफी कवि और उनकी रचनायें

ईसा की आठवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म में एक विप्लव हुआ । पुराने विचारों के कट्टर मुसलमानों के विरुद्ध एक दल उड़ खड़ा हुआ और परंपरागत मुस्लिम आदर्शों का घोर विरोध किया। और उसने एक स्वतंत्र मत की स्थापना की । सादगी और सरलता ही उसके बाह्य जीवन की अभिरुचि बन गई । इसे 'सूफी मत' के रूप में मानने लगे ।

सूफी मत के बीज ढूँढते जाते वक्त हमें जाहिलियत काल तक जाना होगा । इस काल के अरबी लोग शुद्ध भाव से किसी देवता की उपासना करनेवाले नहीं थे । ऐसी हाल में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ । आपने ईश्वर में विश्वास, प्रार्थना, ज़कात (दान), उपवास, मक्का की यात्रा रूपी पाँच स्तंभों में इस्लाम धर्म रूपी महल का निर्माण किया । ईश्वर का जो रूप 'कुरान' में वर्णित था उसमें सूफियों के लिए रहस्यवाद के बीज विद्यमान थे ।

हज़रत मुहम्मद साहब के मक्का से मदीना तक जाने के वक्त से ही सूफीमत का इतिहास शुरू होता है । इतिहास ग्रन्थ यह सूचना देता है कि सूफी मत का प्रारंभ लगभग ६२३ ई. से प्रारंभ होता है । सूफी मत के प्रारंभिक काल में आचार नीति प्रायः ईसाइयों से अपनाई गयी थी ।

हज़रत मुहम्मद साहब के घोरतम मूर्ती विरोध ने ईश्वर को निर्गुण और ध्यान का विषय बना दिया। रहस्यवाद आधृत सूफीमत को पूर्णतः वास्तविक रूप देने में तत्कालीन सभी धर्मों की सहायता ज़रूर मिला है । सूफीमत का बीजारोपण तो मुस्लिम मानस में ही हुआ । लेकिन उसके पालन पोषण करने का श्रेय भारत को भी मिला । ईरान, अरब राज्यों के धार्मिक नेताओं के खिलाफ आवाज़ उठाने के कारण वे लोग सूफीमत के खिलाफ हुए और सूफी आचार्यों को जन्म भूमि छोड़कर जाना पड़ा ।

सूफीमत भिन्न देशों से घूमते रहे । भारतीय वेदान्त, युनानी दर्शन और कुरान मत के सम्मिश्र रूप में सूफीमत का विकास हुआ । हज़रत मुहम्मद साहब ने जो धर्म चलाया था, वह दास्य भाव प्रधान था । सूफियों ने दास्य भाव को काट कर वहाँ प्रेम और रती को अंकित कर दिया । उमेश वंश के शासन के अंत में संपूर्ण इस्लामी संसार में विश्रृंखलता आ गयी थी । आपसी मतभेद, खून-खराबा, शासकों की विलासिता आदि के कारण सूफी साधक अधिक से अधिक अंतर्मुखी और संसार के प्रति विरक्त हो उठे । यों वे सनातन पंथी इस्लाम से दूर होने लगे ।

भारतीय दृष्टि से देखा जाय तो अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का मिश्रण सूफीमत की रूपरेखा है । विशिषटाद्वैतवाद की प्रेममयी भक्ति ही सूफीमत में इश्क की साधना है । फर्क सिर्फ यह है कि उसमें कर्म कांड को स्थान नहीं है । तसवुफ़्फ में मुख्यतः दो प्रमुख कर्तव्य है – पहला है मुस्लिम विधान के अनुसार आचरण और दूसरा है ध्यान एवं अनुभव सूफी मत के बारे में अनुसन्धान किए अनुसन्धाता सूफी मत के उद्‌गम और विकास में निम्न तत्व सक्रिय बताया है –

1. शामि विचारधारा
2. नास्टिक मत
3. युनानी दर्शन के तत्व
4. नव अफलातूनी मत
5. भारतीय वेदान्त तथा बौद्ध विचारधारा
6. कुरान में अभिनिविष्ट विचारधाराएँ
7. अरब देश की राजनैतिक स्थिति

इस्लाम धर्म के अनुयायी ईश्वर को समर्पित करके अपने सह जीवियों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाला है । इस्लाम धर्म के पाँच स्तंभ है – एकेश्वरवाद, नमाज़, रोज़ा (उपवास), ज़कात, हज। हज़रत मुहम्मद साहब के निधन के बद इस्लाम धर्म में उथल पुथल शुरू हुआ । राजनैतिक और धर्म के अधार पर इस्लाम में विभाजन हुआ । शिया और सुन्नी । सुन्नी विभागवाले हज़रत मुहम्मद साहब के वचनों को ज्यों का त्यों पालनेवाले थे अैर शिया शासक को धर्म दूत माननेवाले ।

बसरा सूफी साधना का प्रमुख केन्द्र रहा । इल्म-ए-सफीना (पुस्तकगत ज्ञान) उलमाओं का और उनका इल्म-ए-सीना हृदय तत्व सूफियों का विषय बना । इब्राहिम बिन अद्हम, सिरीन, राबिया आदि उस ज़माने के विख्यात सूफी साधक थे । काल प्रवाह में सूफी मत रिश्तिया, तुहरावर्दिया जैसे कई विभागों में विभक्त हुए । इसका मूल कारण प्रत्येक सूफी साधक ही था । साधक लोग अपने आदर्शों को फैलाना चाहा और उनके पीछे आनेवालों को लेकर प्रत्येक पंथ के नाम जानने लगे ।

ईरान में १४ वीं सदी में शिया पंथ प्रबल बन गये । सूफी आचार्यों की कब्र तीर्थस्थल के रूप में मानने लगे । शियाओं के लिए यह मूर्तिपूजा ही लगा । और वे सूफियों पर क्रोधित हुए । धीरे धीरे ईरान में तसवुफ्फ का नाश शुरू हुआ और उनको ईरान छोड़कर भारत जाना पड़ा ।

सूफी मत का भारत में आगमन

भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश सन् ७२२ ई. में हो चुका था । अरबी जनरल बिन कासिम के सिन्ध आने से यह रिश्ता शुरू हुआ । दक्षिण भारत में तो अरबी लोग बहुत पहले से आते जाते थे । दक्षिण भारत में अरबी लोग व्यापार करने आये तो उत्तर में चढ़ाई करने । मुहम्मद गोरी के भारत आक्रमण के पश्चात् कई सूफी संत भारत में आये। उनमें प्रमुख ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती था । सूफी साधकों का सादा जीवन, सांसारिक विषयों के प्रति विरक्ति, प्रेम भावना आदि गुण भारतीय जनता को आकृष्ट किया । भारत के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियाँ सूफियों को सफलता मिलने में अत्यन्त सहायक रहा ।

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत छोटे छोटे राजाओं के शासन में रहे । उनकी आपसी लड़ाई देश के आर्थिक स्थिति और जनता के जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया । विदेशी आक्रमण, शासकों की मूर्खता आदि के कारण समाज अस्तव्यस्त रहे । साथ ही साथ वर्ण व्यवस्था, छुआछूत आदि भी आए तो नाश पूर्ण हो गए । समाज में महिलाओं को मुख्यधारा में जगह नहीं मिला ।

ऐसी हाल में इश्क के दूत - सूफी से प्रीति होना तो स्वाभाविक बात ही है । सूफी साधक आचार विचार, रूढ़ियों आदि पर बल न देकर सदाचार संबन्धी नियमों का पालन करके प्रेमस्वरूप परब्रह्म की उपासना करने लगे । उनका ध्येय तो सामंजस्य एवं समन्वय ही था ।

मध्यकालीन समाज की धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक स्थिति प्रजाओं के लिए किसी प्रकार सराहनीय नहीं रहीं । इसलिए ही वैयक्तिक आराधना पर बल देनेवाले ईश्वर की लीला रूप को प्रस्थापित करनेवाले, समन्वय पर बल देनेवाले सूफी अपनी ओर लोगों को आकृष्ट कर पाये।

भारतीय सूफी संप्रदाय

ईसा की बारहवीं शताब्दी में इस देश में सूफी मत का प्रवेश हुआ । इस मत के पाँच संप्रदाय भारत में आये ।

चिश्ती	-	ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती
सुहरवर्दी	-	शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी
कादिरी	-	अब्दुल कादर जिलानी
नक्शबन्दी	-	ख्वाजा उबैदुल्ला
शतारी	-	शेख अब्दुल्ला शतारी

चिश्ती संप्रदाय

भारत में आए सूफी संप्रदायों में प्रमुख स्थान चिश्ती संप्रदाय को ही मिला है । इसका मूल प्रवर्तक ख्वाजा इसहाक समि चिश्ती है । भारत में इसका आचार्य ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती है । इस संप्रदाय में संगीत को प्रमुख स्थान मिला था । भारत में इस संप्रदाय की जडें ज़्यादा फैल गयी ।

सुहरावर्दी संप्रदाय

शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी इस संप्रदाय के मूल प्रवर्तक थे । भारत में इस संप्रदाय का प्रवर्तक बहाउद्दीन जुकाररिया थे । ये लोग भीख माँगकर जीवन बिताते थे । ईश्वर को पति मानकर वे पूजा करते थे ।

कादिरी संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक अब्दुल कादर जिलानी थे । भारत में इस संप्रदाय का प्रवर्तक मुहम्मद गौस था । ये लोग परमात्मा के ध्यान में विलीन होकर रहना चाहते थे ।

नक्शबंदी संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक ख्वाजा उबैदुल्ला थे । आप तरह तरह के चित्र जो अध्यात्मिक तत्वों से संबन्धित थे, बनवाते थे । इनमें आप रंग भरा करते थे । इसलिए उनके अनुयायी नक्शबन्दी कहलाये। भारतवर्ष में इसका प्रचार अहम्मद फारूकी शरहिन्दी के द्वारा हुआ । फारूकी ने सूफियों के सिद्धान्तों को सनातन पंथी इस्लाम के निकट लाया ।

शतारी संप्रदाय

शेख अब्दुल्ला शतारी के भारत आगमन के साथ शतारी संप्रदाय का आविर्भाव भारत में हुआ। भारत के शतारी सूफियों ने भारतीय साधना पद्धतियों का अंगीकार किया ।

सूफी संप्रदाय की उक्त शाखाओं के बीच कोई पारस्परिक विरोध नहीं रहा । इन संप्रदायों के कालक्रम में अनेक उप संप्रदाय भी हुए । इसे मूल रूप में दो संप्रदायों में बाँटा जा सकता है – इस्लाम का आचार विचार ज्यों का त्यों माननेवाला और दूसरा इस्लाम पर उतना ध्यान नहीं देनेवाला ।

सूफी प्रेमाख्यान

फारसी में 'लैला-मजनु', 'युसुफ जुलेखा' आदि अनेक मसनवियाँ लिखी गयी है । सूफी प्रेमाख्यानों की कहानी फारस से ही शुरू होता है ।

हिन्दी में प्रेममार्गी साहित्य का प्रवाह दो धाराओं से आया है । पहला हिन्दवी शाखा और दूसरी अवधी काव्य धारा । हिन्दवी उत्तर भारत में प्रचलित शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि साहित्यिक भाषाओं के सामान्य रूपों को लेकर हुआ था । मसूद, खुसरो, फरीद शकरगंजी, सैयद मुहम्मद, मैसूद आदि इसी शाखा के प्रमुख कवि हैं । इन कवियों की अधिकांश रचनाएं स्फुट पदों, दोहों और गज़लों में हैं ।

अवधी धारा में अनेक महत्वपूर्ण प्रेमाख्यानों की रचना हुई है । भारतीय काव्य परंपरा का प्रभाव इस शाखा में रचित रचनाओं में स्पष्ट रूप से दर्शनीय है । 'चन्दायन', 'पद्मावत', 'मृगावती', 'मधु मालती' आदि रचनाओं का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इनके ऋतुवर्णन, नगर वर्णन, सौन्दर्य चित्रण आदि भारतीय परंपरा के अनुरूप ही है ।

भारतीय कथानकों के आधार पर रचना करने के कारण भारत के हिन्दु लोग इनकी ओर आकृष्ट हुए ।

साहित्य के माध्यम से व्यक्ति अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है । सूफी संतों ने भी अपनी विचारों को फैलाने के लिए साहित्य का इस्तमाल किया । सूफी साधकों के साहित्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है – आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया निबन्ध साहित्य, सूफी साधकों के जीवन कथाओं को संग्रहीत किए गए जीवनी और काव्य साहित्य । काव्य का और दो भेद है - प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य । प्रबन्ध काव्य में अन्योक्तियाँ और प्रतीकों की व्याख्या की गयी है । मुक्तक काव्य में गज़लों, रुबाइयों आदि साधक के भावों का चित्रण किया गया है ।

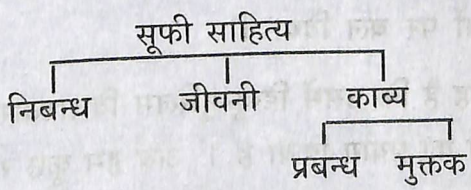

सूफी साहित्य का तृतीय विधा काव्य सर्वाधिक पूर्ण माना जाता है । हिन्दी साहित्य में सूफी

काव्यों का प्रसार ज़्यादा हुआ है ।

उत्तर मध्यकाल में संत काव्य धारा के समानांतर ही सूफी काव्य धारा का प्रवाह हुआ था । प्रेमाश्रमी रचनाओं के बारे में किए गए अध्ययन ने यह व्यक्त किया है कि उन्होंने दो प्रकार की रचनाओं का निर्माण किया -

1. आध्यात्मिक और प्रेमपरक काव्य
2. विशुद्ध - लौकिक प्रेम काव्य

कुतुबन कृत 'मृगावती', मंझन कृत 'मधुमालती', जायसी कृत 'पद्मावत' आदि आध्यात्मिक प्रेम परक सूफी रचनायें हैं । विशुद्ध लौकिक प्रेम काव्य के अंतर्गत दामो कृत 'लखनसेन', 'पद्मावती कथा' आदि आते हैं । स्थूल रूप से सूफी काव्य की प्रवृत्ति का प्रसार चौदहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी तक मिलता है । सूफी काव्य मसनवी शैली से अधिक प्रभावित रहे ।

मसनवी शैली

मसनवी शब्द अरबी भाषा के 'सिन-उस' से बना है । उसमें दो दो चरण होते हैं जो बराबर तुकों में भी होगा । मसनवी शैली पर लिखे गये काव्यों में पहले परमात्मा का नमन, पैगम्बर का स्मरणफिर, समसामयिक राजा का नमन और फिर मूल कथा – यही क्रम है । उसके बाद रचना में मदद दिए मित्रों की चर्चा होगी । काव्य विभिन्न खंडों में बाँटा रहता है और प्रत्येक खंड के विषय के अनुसार शीर्षक दिया जाता है ।

मसनवी ईरान का अपना काव्य शैली है । विशाल काव्य के लिए ही इस शब्द का प्रयोग होता है । फारस में धार्मिक उपदेशात्मक काव्य के लिए इसी को स्वीकारा था । नायक नायिका के नाम पर ही प्रेमाख्यानक मसनवियों का नामकरण हुआ है ।

साधारणतया मसनवी पद्धति में छन्द परिवर्तन नहीं होता है । मसनवी की दो अर्धालियाँ परस्पर तुकान्त होती है । लंबाई की कोई सीमा निर्धारित नहीं होती ।

सूफी धर्म के प्रेम संबन्धी विचारों का प्रचार फारसी भाषा में ही हुआ है । उसको आधार बनाकर भारतीय भाषाओं में भी रचनायें हुईं । सूफी धर्म की संपूर्ण साधना प्रेम पर आधारित है । लौकिक प्रेम मार्ग से अलौकिक प्रेम पथ तक पहूँचने की कोशिश उन्होंने किया । हिन्दुस्तानी सूफियों के सामाजिक और वैचारिक सिद्धान्तों की आधार शिला थी - मनुष्य समाज को एक इकाई के रूप में मानना और उनमें एकता लाना । भारतीय समाज में सौहार्द और एकता लाने के लिए सूफी साधकों ने सामाजिक, भाषिक, भावनात्मक सिद्धान्तों पर बल दिया ।

भारतीय सूफी साहित्य की विशेषता यह है कि उसमें हिन्दु-मुस्लिम विचारधाराओं का सम्मिश्रण हुआ है, लगभग सारे कवियों ने अवधी भाषा का प्रयोग किया है । अब हम कुछ रचनाकारों के बारे में विचार करेंगे ।

मुल्लादाऊद

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सूफी काव्य की प्रवृत्ति के अंतर्गत सर्व प्रथम कवि के रूप में आपका नाम ही आता है । 'चंदायन' लोरिक तथा चंदा के प्रणय पर आधारित प्रेम-कथा है । इसकी भाषा अवधी है, जिसमें मालवी तथा शौरसेनी का भी प्रभाव विद्यमान है । हिन्दी में मुस्लिम कवियों द्वारा लिखित प्राचीनतम उपलब्ध रचना भी यही है । इसमें एक विवाहित पुरुष लोरिक के साथ परविवाहिता नारी (चंदा) के प्रेम एवं पलायन का वर्णन है ।

'चन्दायन' नायिका प्रधान है । सारा पात्र नायिका के चारों ओर ही उभरते हैं । सूफी काव्यों में कभी भी नायिका पर-पुरुष पर आसक्त नहीं होती । लेकिन इस रचना में इसका ठीक उल्टा दृश्य ही नज़र आता है । अक्सर प्रेमाख्यानों में नायक के मन में नायिका के प्रति आकर्षण होता है। लेकिन यहाँ नायिका नायक की ओर आकृष्ट हो जाती है ।

कुतबन

कुतबन का काल सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में है । इनके द्वारा लिखा गया प्रेमकाव्य है 'मृगावती' । 'मृगावती' में कुतबन ने चंदगिरी के राजा गणपतदेव के कुमार राजकुंवर तथा मृगावती की कथा को प्रस्तुत किया है । 'मृगावती' के कथानक के पीछे हिन्दु जीवन और सूफी मान्यताओं की एक परम्परागत पृष्ठभूमि है । साधक को प्रेमी के रूप में और परमात्मा को प्रेम पात्र के रूप में चित्रित किया है । अचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में यों कहा है – "इस कहनी के द्वारा कवि प्रेममार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत् प्रेम का स्वरूप दिखाया है ।" जन साधारण की परम्परागत विचारधाराओं और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने के कारण ही यों कहा गया है कि 'मृगावती' के कथानक के पीछे हिन्दु जीवन और सूफी मान्यताओं की एक परंपरागत पृष्ठभूमि है।

मंझन

मंझन ने 'मधुमालती' की रचना सन् १५४५ ई. में की । इसकी कथा का आधार एक लोक प्रसिद्ध कहानी है । कनेसर के राजा के पुत्र मनोहर और महासागर की राजकुमारी मधुमालती की प्रेम कहानी का वर्णन इसमें किया गया है ।

भारतीय नारी जन्म जन्मोतर में एक ही पति को प्राप्त करना चाहती है । मधुमालती और प्रेमा उसी आदर्श के पालन करने वालों में से ही है । यों चित्रित करने से भारतीय संस्कृति की ओर की आपकी झुकाव हम समझ पायेंगे । नायक, नायिका के साथ उपनायक ताराचंद और उपनायिका प्रेमा की कहानी भी चलती है और दोनों कहानियों का सुखान्त ही होता है ।

उसमान

'चित्रावली' की रचना उसमान ने सन् १६२३ ई. में की थी । नेपाल नरेश के पुत्र सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की प्रेम कहानी का वर्णन इसमें हुआ है । चित्रावचली का कथानक पूर्णतः काल्पनिक ही है । सूफी प्रेमाख्यानों की आदर्शात्मक प्रेम पद्धति इस काव्य में भी

मिलती है । चित्रावली एक श्रृंगारिक काव्य है । साथ ही साथ वीर रस का भी समावेश इसमें हुआ है ।

जान कवि

जान कवि का वास्तविक नाम न्यामत खां था । आप राजस्थान के निवासी थे । आपकी लिखी हुई रचनायें ७६ बतलायी जाती है । 'कनकावती', 'कामलता', 'मधुकर मालती', 'कथा रत्नावली', 'रूप मंजरी' आदि इसमें विख्यात हैं । 'कथा रत्नावली' में अमृतपुरी के राजकुमार महिमोहन तथा फुलवारी नगर के राजकुमारी रत्नावली की कहानी का वर्णन किया है । इसमें निर्गुण ब्रह्मा की वन्दना के बाद सरल, सुबोध भाषा में कथा का वर्णन किया है ।

सूफी कवियों की इस श्रृंखला में शेखनबी, कासिमशाह, नूर मुहम्मद, शेख निसार, हुसैन अली, नसीर, शेख रहीम आदि के नाम भी आते हैं ।

सूफी काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि जायसी

सूफी काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत सबसे विख्यात नाम जायसी का ही है । मलिक आपका कुलीनता का वाचक, मुहम्मद आपका नाम और 'जायसी' जायस कर्म क्षेत्र होने के कारण कवि का उपनाम है । अब तक के शोधों के अनुसार जायसी की रचनाओं की संख्या २५ बताई गई है । आपके गुरु सैयद अशरफ थे । 'पद्मावत', 'कन्हावत', 'चित्ररेखा', 'आखिरी कलाम' आदि आपकी विख्यात रचनायें हैं ।

जायसी की कीर्ति का मुख्य कारण उनका लिखा हुआ प्रेमाख्यान 'पद्मावत' है । इसमें जायसी ने सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती और चितौड के राजा रत्नसेन की प्रेमकथा प्रस्तुत की है । पद्मावती अत्यन्त सुन्दरी थी और उसके योग्य वर नहीं मिलता था । उसके पास हीरामन नामक एक तोता था । एक दिन वह तोता पद्मावती से अपने वर के संबन्ध में वार्तालाप कर रहा था । तभी राजा गंधर्वसेन के सुन लेने के कारण भयातुर होकर उड़ जाता है । उसे एक वहेलिया पकड़ता है और एक द्विज उसे खरीदता है । वह ब्राह्मण तोते को चितौड़ के राजा रत्नसेन को देता है ।

रत्नसेन की पत्नी नागमति से, तुम से अच्छी सुन्दरी पद्मावती है - कहने के कारण नागमती तोते को मारने की आज्ञा देती है । लेकिन तोता रत्नसेन के लिए बेहद प्यारा था । इसलिए सेविका उसे छिपाती है । राजा लौट आने के बाद सारी खबर सुनकर रूपवती पद्मावती की खोज में राजमहल से निकलते हैं । तोता बराबर उनका मार्ग दर्शन करता है । अनेक कष्ट झेलते हए आप सिंहल द्वीप तक पहूँच जाते हैं । सिंहल द्वीप के शिव मन्दिर में आप रहने लगते हैं । हीरामन पद्मावती को पूरा समाचार बता देता है । पंचमी के दिन पूजा के लिए पद्मावती मन्दिर जाती है तो राजा उसे देखकर अचेत हो जाते हैं ।

सिंहलगढ़ पर विजय प्राप्त करने के बिना पद्मावती को प्राप्त नहीं कर सकते, यह जानकर रत्नसेन गढ़ पर चढ़ाई करता है और शिव के वरदान से विजय प्राप्त करता है । गंधर्वसेन पुत्री का

विवाह रत्नसेन से कर देता है । उधर नागमती विरह पीड़ा से जल रही थी । यह खबर सुनकर रत्नसेन पद्मावती समेत चितौडगढ़ आता है और वहाँ खुशी से रहने लगता है ।

रत्नसेन के दरबार में राघवचेतन नामक पंडित था । राजा उसका निष्कासन करता है तो वह अलाउद्दीन के पास जाकर पद्मावती की अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन करता है । उसमें मुग्ध होकर अलाउद्दीन चितौड़ पर चढ़ाई करता है । लेकिन हर वक्त जीत रत्नसेन की होती है । सालों के बाद सुलतान सन्धी का प्रस्ताव रखता है। भोजन के बीच पद्मावती की छवी देखकर वे अचेत हो जाते हैं।

बाद में सुलतान को विदा देने आए रत्नसेन को कपटपूर्वक बन्दी बना लेता है और उन्हें दिल्ली ले आता है । पद्मावती ने पति को छुड़ाने के लिए एक कूट नीतिक चाल चलाता है । उसके आदेश से गौरा और बादल नामक दो शूर वीर और 700 सैनिक दिल्ली पहूँचते हैं और सुलतान को यह सूचना भेजते हैं कि पद्मावती राजा से मिलने के बाद सुलतान के पास जायेगी । अनुमति मिलने पर पालकी में छिपे सैनिक राजा को बचाते हैं । इसके बाद राजा देवपाल से युद्ध में उनकी मृत्यु हो जाती है । उनके शव के साथ पद्मावती और नागमती सती हो जाती है ।

यह एक श्रेष्ठ प्रेमाख्यान है जिसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान है । कथानक महाकाव्य के अनुरूप ही सजाया है । कथा को सर्गों के स्थान पर 57 खंडों में विभक्त किया है । मंगलाचरण, कथाप्रवाह आदि भी महाकाव्य के अनुरूप ही है ।

जायसी का विरह वर्णन बड़ा विशद है । आप बहुश्रुत थे । उन्होंने ज्योतिष, हठयोग आदि का अच्छा ज्ञान दिखलाया है । अपनी रचनायें ठेठ अवधी भाषा में ही लिखा है । इसमें इतिहास और कल्पना का सम्यक मिश्रण हुआ है । महाकाव्य के अनुरूप इसमें प्रकृति वर्णन हुआ है । इसका प्रधान रस श्रृंगार है । श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का वर्णन इसमें हुआ है । नागमती विरह वियोग श्रृंगार का ज्वलंत उदाहरण ही है ।

'पद्मावत' के विभिन्न पात्र विभिन्न दार्शनिक तत्वों के प्रतीक हैं – इसलिए उसे रूपक काव्य (allegory) भी कहा जा सकता है । पद्मावती परमात्मा का, रत्नसेन साधक का हीरामन तोता पीर का प्रतीक है ।

'पद्मावत' के रूपक तत्व का भारतीय साधना पद्धति से कितना गहरा संबन्ध है इसका चित्रण अज्ञेय जी ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में किया है –

रत्नसेन	मन
पद्मावती	श्रद्धा
नागमती	साँसारिकता की ओर ले जाने वाली बुद्धि
राघव चेतन और अलाउद्दीन	आसुरी शक्तियाँ

सात्विक बुद्धि की सहायता से बन्धनों से मोक्ष प्राप्त करना, यह भारतीय साधना का मुख्य ध्येय

ही है । यही 'पद्मावत' में आकर्षक ढंग से चित्रित किया है । उचित रंगों से इसको भरने में जायसी को सफलता मिली है । कवि कल्पना का सार्थक प्रयोग यहाँ हुआ है । प्रेम के मार्ग पर चलनेवाले कवि जायसी ने कथा को प्रेममय कर दिया जिससे 'पद्मावत' प्रेम का अमर काव्य बन गया ।

मलिक मुहम्मद जायसी तक के प्रेमाख्यानों में आध्यात्म की भावना और वेदान्त की रहस्यवादिता को लेकर चले थे । लेकिन उनके बाद लौकिकता की वृद्धि हो गई । परिणामस्वरूप उनके महत्व घटने लगे । ये सूफीमत की सीमा से पृथक होकर कोरी कथाओं के क्षेत्र में पहुँच गये ।

हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य प्रवृत्ति विश्लेषण

हिन्दी के किसी भी प्रेमाख्यान न तो पूर्णतः ऐतिहासिक कह पायेगा न काल्पनिक । कल्पना और इतिहास का मिश्रित रूप ही यहाँ दर्शनीय है । इनका कथानक इसी क्रम में होगा ।

1. नायक, नायिका का जन्म माता पिता के विशेष प्रयत्न से किसी देव-देवी की आराधना के कारण होना
2. नायक-नायिका का मिलन स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन आदि से अप्रत्यक्ष रूप में होना ।
3. शिव मन्दिर या फुलवारी में उनका गुप्त मिलन ।
4. नायक का किसी अन्य सुन्दरी को राक्षस से बचाकर विवाह कर लेना ।
5. नायक-नायिका का मिलन

ये कथानक रूढ़ियाँ तो प्राकृत और अपभ्रंश के कथानक रूढ़ियाँ ही है । पाठकों में औत्सुक्य और कौतूहल बढ़ाने के लिए विशेष मिश्रण का प्रयोग कथानकों में ज़रूर किया है । इसलिए ही कथानकों में असाधारण, विचित्र घटनाओं का होना स्वाभाविक बात ही है ।

सूफी कवि मुसलमान थे । वे एकेश्वर में विश्वास करते थे । सूफी कवियों ने निर्गुण, निराकार ईश्वर की उपासना करने की सलाह दी है । ईश्वर को स्त्री और आत्मा को पुरुष रूप में जो कल्पना की है, वह भारतीय पद्धति नहीं है । भारतीय तो परमात्मा को पुरुष के रूप में ही मानते हैं ।

शैतान को वे ईश्वर के द्वारा भेजे गये रूप के रूप में ही मानते हैं । जो साधक शैतान की परीक्षा में खरा उतरता है वही परमात्मा से मिल पाता है । सन्त कवियों की 'माया' और सूफी कवियों का 'शैतान' परमात्मा से मिलने के साधक के चाह को रोकनेवाला ही है । गुरु की कृपा होने से ही शैतान को जीत कर साधक आगे बढ़ पायेगा ।

लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) से अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) को प्राप्त करने का काम सूफी कवियों ने किया । सूफियों का रहस्यवाद भावात्मक रहस्यवाद नाम से जाना जाता है ।

सभी कृतियों में दोहा-चौपाई छन्दों का ही प्रयोग विशेष रूप से हुआ है । सवैया, सोरठा, वरवै आदि का भी प्रयोग दिखाई देता है ।

ये सांप्रदायिकता से मुक्त रचनायें हैं । सूफी - साधना और सिद्धान्तों का सम्मिश्रण करने पर

भी उनमें धर्म निरपेक्षता दृष्टिगोचर होता है ।

प्रेमिका के सौन्दर्य की कल्पना से ही प्रेमी का मूर्छित हो जाना भारतीय परम्परा की बात नहीं है । सूफी साधकों का प्रेम ईश्वरोन्मुख है, लौकिक नहीं । वास्तव में अध्यात्म-भावना ही उनके प्रेम की आत्मा है ।

हिन्दी के अधिकतम प्रेमाख्यान सुखान्त ही है । कुछ दुःखान्त भी है, लेकिन उनका दुःखान्त प्रायः उद्वेलित नहीं करता ।

हिन्दी प्रेमाख्यानों के नायक सुन्दर, गुणवान, वीर एवं साहसी है । प्रायः सभी नायकों का संबन्ध राजकुलों से है । नायिकाएँ भी राजकुल युवती ही है । यह नायिकाएँ प्रेम में अडिग है और अपने नायकों से मिलने के लिए उत्कंठित । मानवीय और मानवेतर पात्रों का चित्रण रचनाओं में हुआ है ।

प्रेमाख्यानों का प्रधान रस श्रृंगार हैं । श्रृंगार के दोनों पक्षों का (संयोग, वियोग) निरूपण इनमें हुआ है ।

कबीर और जायसी के रहस्यवाद

रहस्यवाद और रहस्यवादी साधना का प्रमुख देश भारत है । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक रहस्यवादी साधना होती रही ।

अपनी अंत स्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा सत्य, परमतत्व अथवा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है । या तो रहस्यवाद जीवात्म की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल संबन्ध जोड़ना चाहता है । यों संबन्ध में आते वक्त जीवात्मा अपने अस्तित्व को भूल सा जाता है ।

डॉ. त्रिगुणायत कबीर के रहस्यवाद के संबन्ध में लिखते हैं – "कबीर के काव्य में प्रेममूलक भावना प्रदान रहस्यवाद का अनुभूतिमय प्रकाशन है । उसकी अभिव्यक्ति अनुभूति के आश्रय से होती है । अनुभूति भावना से संबन्धित है । भावना प्रेम की प्रधान प्रवृत्ति है । यह अनुभूति प्रेम पर अवलंबित होने के कारण जीव और ब्रह्म में एक अविच्छिन्न और अनन्य संबन्ध स्थापित करता है । प्रेम की चरम परिणती दांपत्य प्रेम में देखी जाती है । अतः रहस्यवाद की अभिव्यक्ति प्रियतम और विरहिणी के आश्रय में होती है ।"

कबीर के प्रियतम मिलन की आतुरता संसार के किसी भी प्रेमव्यापार से अधिक तीखी और चुटीली है । देखिए –

"चकवी बिझुरी रैन की आई मिली परभाति
जो जन बिझुरै राम से ले बिन मिलै न राति ।"

कबीरदास में भावात्मक रहस्यवाद का आदर्श अपनी पूर्णता को प्राप्त हो गया है ।

कबीर और जायसी के रहस्यवाद के बारे में आचार्य शुक्ल का कथन है –"कबीर में जो कुछ

रहस्यवाद मिलता है, वह बहुत कुछ उन पारिभाषिक संज्ञाओं के आधार पर है जो वेदान्त तथा हठयोग में निर्दिष्ट है ।" आपके अनुसार जायसी में शुद्ध भावात्मक रहस्यवाद मिलता है और कबीर में चित्रात्मक।

जायसी के लिए रहस्यात्मकता कबीर की भाँति साध्य नहीं है । इन्होंने कथा के बीच समासोक्ति द्वारा कई स्थलों पर परोक्ष सत्ता की ओर संकेत किए है । कबीर का रहस्यवाद साधना क्षेत्र में तथा जायसी का रहस्यवाद भावना क्षेत्र में आता है । कबीर के लिए बाह्य जगत मिथ्या या माया का प्रतीक है तो जायसी के लिए जगत तथा प्रकृति मिथ्या नहीं है ।

कबीर की दांपत्य भावना भारतीयता से प्रभावित है । इन्होंने आत्मा को पत्नी तथा परमात्मा को पति माना है । जबकी जायसी की दांपत्य भावना विदेशी है । आत्मा रत्नसेन को पति और परमात्मा पद्मावती को पत्नी के रूप में माना है । जायसी का आराधक परमात्मा के लिए उतना ही तड़पता है जितना आराध्य स्वयं ।

साधनात्मक रहस्यवाद में चिन्तन की प्रधानता है और भावनात्मक में भावावेश की । कबीर की रहस्यवाद उक्त प्रथम श्रेणी में और जायसी दूसरी में आते है । भावात्मक रहस्यवाद शुद्ध रहस्यवाद माना गया है ।

विरहिणी आत्मा के प्रिय से मिलने के लिए तड़प उठने का चित्र कबीर में अपेक्षाकृत कम है । लेकिन जायसी में अन्यत्र ऐसी घटनायें मिलता है । रहस्यवाद के विरह, प्रयत्न और मिलन दशाओं का खुलकर वर्णन जायसी ने किया है ।

कबीर और जायसी दोनों रहस्यवादी कवि हैं । दोनों संत और फकीर हैं । दोनों के ईश्वर निराकार हैं । उस निराकार परमसत्ता के साथ एकत्व स्थापित करना दोनों का उद्देश्य रहा है । यद्यपि दोनों में ज्ञान और प्रेम है तो भी जायसी में प्रेम की प्रधानता है और कबीर में ज्ञान की । शुद्ध रहस्यवाद कबीर की अपेक्षा जायसी में अधिक है ।

लोककथा के माध्यम से ब्रह्म के सच्चिदानन्द रूप की विभिन्न लक्षणों, उपदानों तथा प्रतीकों का सहारा लेकर, उसे प्राप्त करने के लिए साधनात्मक उपायों का संकेत जायसी के काव्यों में किया गया है । यही अद्वैतवादी दर्शन आपके काव्य का रहस्यवाद है । जायसी का रहस्यवाद प्रथमत: प्रेम मूलक है, जिसका आधार सूफी दर्शन है ।

डॉ. शिव सहाय पाठक ने जायसी के रहस्यवाद के बारे में यों कहा है – "जायसी के रहस्यवाद का वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने इस शुष्क और साधनात्मक रहस्यवाद में अपने अन्तर का समस्त रस उँडेल कर इसे सरस और मधुर बनाया है ।" आपके रहस्यवाद में अद्वैत के सर्वात्मवाद, सूफी मत के सौन्दर्य और विरह की लौकिक-अलौकिक अभिव्यंजना, साधनात्मक दार्शनिक सिद्धान्तों और प्रकृतिमूलक रहस्यवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

Unit 4

सगुण भक्ति काव्य - राम भक्ति शाखा

हम ऊपर बता चुके हैं, आलंबन के आधार पर भक्ति को सगुण, निर्गुण धाराओं में विभक्त किया गया है । निर्गुण भक्ति के भिन्न पक्षों का अध्ययन भी संपन्न हो चुका है, अब हम सगुण भक्ति के बारे में विचार विमर्श करेंगे । सगुण भक्ति में ईश्वर या परमात्मा को साकार रूप दिया जाता है । सगुण भक्ति के मुख्यत: दो उपधारायें बहने लगे – कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा । सगुण भक्ति का आधार अवतारवाद है । राम और कृष्ण दोनों विष्णु के अवतार माने जाते हैं ।

राम भक्ति शाखा

'राम' शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग वैदिक साहित्य में ही हुआ है । वाल्मीकी रामायण राम के जीवन चरित्र से संबन्धित प्रथम रचना है । बौद्ध, जैन धर्म ग्रन्थों के साथ साथ उपनिषद और पुराणों में भी रामकथा का वर्णन है । आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी रामकथा का वर्णन हुआ है ।

राम भक्ति का आरंभिक रूप दक्षिण के आलवार संतों से माना जाता है । ये आलवार संख्या में बारह थे । अब हमें हिन्दी राम काव्य के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करना है ।

स्वामी रामानन्द

उत्तर भारत में राम भक्ति के आचार्य के रूप में आपका नाम ही आ जाता है । धनुष बाण धारी राम के लोक रक्षक रूप की उपासना करने का श्रेय भी आपको ही मिला है । हिन्दी राम काव्य के सिद्धान्त प्राय: आपके विचारों के अनुसार ही था । 'वैष्णव मताब्द भास्कर' और 'श्री रामार्जुन पद्धति' इनके विख्यात ग्रन्थ हैं ।

अग्रदास

आप स्वामी रामानंद के शिष्य परंपरा में प्रमुख थे । 'रामभजनमंजरी', 'अष्टयाम' आदि आपकी रचनायें हैं । राम भक्ति शाखा में रसिक-भावना का समावेश इन्होंने ही किया । रामभक्ति में ज्ञान की अपेक्षा मधुरोपासना का अनुमोदन आपने ही किया । आपके कई शिष्य भी हुए ।

नाभादास

अग्रदास जी के मुख्य शिष्य के रूप में आप जाने जाते हैं । भक्तमाल, रामाष्टयाम जैसी आपकी कई रचनायें हैं ।

ईश्वरदास

'भरत विलाप', 'अंगदपैज' नामक ग्रन्थों की रचना आपने की है ।

CUP/618/08/500/SDE-3

तुलसीदास

रामभक्ति शाखा के सर्व श्रेष्ठ कवि के रूप में तुलसीदास के नाम ही आते हैं । जनश्रुति के अनुसार आपके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था । तुलसी का बाल्यकाल बड़ी विषम परिस्थितियों में बीता । गोसाई चरित में लिखा है – जब आप पैदा हुए तब पाँच साल के बालक के समान थे और पूरे दाँत भी थे । वे रोये नहीं, केवल 'राम' शब्द ही उनके मुँह से निकले । बालक को राक्षस समझकर पिता ने उसकी उपेक्षा की । बाबा नरहरिदास ने उसे अपने पास रख लिया और शिक्षा दीक्षा दी ।

तुलसीदास काशी में आकर पंच गंगा घाट पर अपने गुरु स्वामी रामानन्द के यहाँ रहने लगे । वहाँ से सनातन जी उनको वेद, वेदान्त, पुराण आदि में प्रवीण कर दिये । पन्द्रह सालों के बाद गाँव लौट आये । लेकिन वहाँ उनको पहचाननेवाले कोई नहीं थे । उनकी पांडित्य में मुग्ध होकर एक द्विज अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी । इसी पत्नी रत्नावली के उपदेश के कारण आपका विरक्त होना और भक्ति की सिद्धि प्राप्त करना विख्यात है ।.

वे अपनी पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक दिन लाश के ऊपर बैठकर वे बड़ी नदी पार करके ससुराल पहूँचे । पत्नी ने यह घटना जानकर यों कहा –

"लाज न लागत आपको दौरे आये हूँ साथ
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहों मैं नाथ ।
अस्थि, चर्म मय देह मम ता मैं जैसी प्रीति
तैसी जौ श्रीराम वहम होति न तो भावभीत ।"

यह घटना माया की बन्धन से विमुक्त होने का कारण बना । तुरंत ही आप काशी छोड़कर अयोध्या गये । वहीं से 'रामचरित मानस' की रचना शुरू की और दो साल सात महीने में रचना समाप्त की । काशी में आपका स्वर्गवास हुआ । 'रामलला नहछु', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'जानकी मंगल', 'रामचरित मानस', 'कवितावली', 'दोहावली', 'वैराग्य संदीपनी' जैसी कई रचनायें आपने की । अपने अधिकांश ग्रन्थों में आपने अवधी भाषा का प्रयोग किया है । साथ ही साथ व्रज भाषा का आंशिक समावेश भी दर्शनीय है । 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावाली', 'विनय पत्रिका' जैसी रचनाओं में व्रज भाषा अत्यन्त परिमार्जित रूप में मिलती है । ठेठ अवधी का माधुर्य 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'बरवै रामायण' और 'लला नहछु' में दर्शनीय है । तुलसी की रचना अधिक संस्कृत गर्भित है । संस्कृत के उच्च ज्ञान के कारण ही उनकी भाषा में संस्कृत निष्ठता अपेक्षाकृत अधिक मिलता है । 'गीतावली' की रचना तुलसी ने सूर के अनुकरण स्वरूप किया है । 'बालकाण्ड' के कई पद ज्यों का त्यों 'सूर सागर' में भी है । भाषा की दृष्टि से तुलसीदास की तुलना हिन्दी के किसी अन्य कवि से नहीं हो सकती । आपकी भाषा जितनी लौकिक है, उतनी शास्त्रीय भी है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तुलसी को भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि मानते हुए लिखते हैं कि "तुलसी में व्यक्तिगत साधना के साथ लोकधर्म की अत्यन्त उज्वल छटा, वर्तमान है ।" हज़ारी प्रसाद

द्विवेदी जी ने यों लिखा है – "आप कवि थे, भक्त थे, पंडित थे, सुधारक थे, लोकनायक थे और भविष्य के स्रष्टा थे ।"

तुलसी का समन्वयवाद

गोस्वामी तुलसीदास के समन्वयवाद को मोटे तौर पर चार क्षेत्रों में बाँट सकते हैं – दार्शनिक क्षेत्र, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र तथा साहित्यिक क्षेत्र । अपने विशाल ज्ञान के सहारे उन्होंने यह समझा कि विभिन्न विचार और व्यवहारों में व्यर्थ का संघर्ष चल रहा है । अपनी रचनाओं के माध्यम से उनके बीच की दूरी कम करने की वे कोशिश करते रहे । दार्शनिक क्षेत्र में आप का मुख्य प्रयत्न द्वैतवादी और अद्वैतवादी दर्शनों के बीच समन्वय स्थापित कर दर्शन को व्यावहारिक बनाना था । रामचरितमानस के उत्तरकांड में उन्होंने द्वैत अद्वैत का समन्वय करते हुए लिखा है –

"ज्ञान अखंड एक सीतावर मायाबस्य जीव चराचर
जौ सब के राह ज्ञान एक रस । ईश्वर जीवहि भेद कहहू कस ।।"

द्वैत और अद्वैत वादों का मिश्रण तुलसीदास के राम में मिलेंगे ।

सगुण और निर्गुण मत वालों के बीच जो झगडा चल रहा था उन लोगों को ऐसा एक राम का रूप देने से तुलसीदास दोनों के बीच समन्वय लाने में एक हद तक सफल रहे । अखंड और अनंत शक्ति के नामों पर झगड़ा करने की मूर्खता पर आपने अपनी रचनाओं के ज़रिए प्रकाश डाला । दार्शनिक क्षेत्र में द्वैत और अद्वैत का समन्वय करने पर सांस्कृतिक और धर्मिक क्षेत्र में ज्ञान और भक्ति के समन्वय की रास्ता भी खुल गयी ।

ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का समन्वय करके, निर्गुण - सगुण में एकता स्थापित कर, शिव और विष्णु को सम स्थान देकर तथा अन्य मतावलंबियों को उदारता की दृष्टि से देखकर गोसाई जी ने अपने समय की धार्मिक समस्या को हल किया । यों आप अद्वितीय धर्म सुधारक पद विशेषण के योग्य बने ।

अपने समय के प्रचलित आत्मप्राप्ति के मार्ग व्यर्थ है यह समझकर आपने भक्ति मार्ग को ही उचित माना । सब मतों को एक ही डोरी में बाँधने में आप सफल रहे । तुलसी जी के धर्म को प्रेमधर्म कहा जाता है । उनकी रचना प्रेम का विकास है, उनके पात्र प्रेमरूप है । गोसाई जी ने भक्ति को महत्व दिया था, क्योंकि उसमें विनय, समर्पण, प्रेम और दैन्य की भावना है जो मानवता के महत्वपूर्ण गुण माने जाते हैं । भक्ति के क्षेत्र में भेद-भाव समाप्त करने के उद्देश्य से रामचरितमानस में राम और अन्य देवताओं का संबन्ध स्पष्ट किया है –

"सिव द्रोही मम दास कहावा । सो नर सपनेहु माहि न पावा मानस;
सेवक स्वामि सखा सिय पी के"

शंकर राम के सखा, स्वामी और सेवक है तो उनके अनुयायियों के बीच अलगाव क्यों ? राम की जन्म वेला पर स्तुति करनेवाले शिव को देखिए -

"सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनु
विधि हरिहर बंदित पदरेनु"

राम और कृष्ण के बीच के संबन्ध को भी आपने सूचित किया है –

"हरिहूँ और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई
लै चिउरा तिथि दई सुदांमहिं यद्यपि बालमिताई"

इस प्रकार देवों के बीच समन्वय करवाने से उनके आराधकों में भी समन्वय की भावना जागृत हुए । जो समाज कल्याण के लिए सफल कदम ही रहे । सामाजिक क्षेत्र में तुलसी जी का शास्त्र और लोक समन्वय, सत्य और प्रेम का समन्वय भी उद्धरणीय है ।

आपकी रचनाओं में आदर्श और यथार्थ का वर्णन हुआ है । सामाजिक क्षेत्र में आपका बड़ा सुन्दर कार्य व्यष्टि और समष्टि का समन्वय है । राजा दशरथ ने सत्य के पालन के लिए राम को त्याग दिया और वही राम के लिए वह अपना प्राण छोड़ दिया । सत्य और प्रेम का पालन करने में आप यों सफल रहे ।

भाषा शैली समन्वय भी आलोचनीय ही है । संस्कृत की विस्तृत जानकारी होने पर भी आपने लोकभाषा में रचना करना चाहा । भिन्न भाषाओं से पदों का चयन करके भाषाओं के बीच समन्वय लाने की कोशिश आपने की ।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने यों लिखा है – "भारत वर्ष का लोक नायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके । उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है - लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, कथा और तत्वज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चंडाल का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय - समन्वय का मतलब है कुछ झुकना, कुछ दूसरों को, झुकने के लिए बाध्य करना ।"

समाज के सामने आदर्श परिवार के नमूने के रूप में दशरथ के परिवार का विधान किया है । समन्वय से किन किन तरह के लाभ होते है - यह परिवार और समाज को कैसे उपयोगी सिद्ध होता है - ऐसे तथ्यों का वर्णन आपने किया है । रामराज्य की कल्पना भी गोसाई जी हमें दिया है । वहाँ तक पहूँचने के लिए समाज, परिवार आदि का समन्वय करना परम अवश्यक भी है ।

राम भक्तिकाव्य की विशेषतायें

राम भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषता इसकी समन्वयवादिता है । ये लोग दूर दूर रहनेवालों के बीच समन्वय की सेतु बनाने में तल्लीन थे । प्रबन्ध और मुक्तक, जैसे साहित्य रूपों तथा व्रज और अवधी भाषाओं का समन्वय भी काव्यों में अन्यत्र दर्शनीय है ।

काव्य शैलियाँ, रस, भाषा, छन्द आदि की दृष्टि से राम काव्य अपना विशिष्ट महत्व रखता है। इन काव्यों का अधिकांश दोहा, चौपाई में लिखा गया है । अलंकारों के प्रयोग में भी उन्होंने अपनी दक्षता दिखायी है । राम भक्ति काव्यों का मुख्य रस शांत रस है । उसके साथ-साथ श्रृंगार रस को भी स्थान दिया है ।

राम की भक्ति का वर्णन मुख्य रूप में इस शाखा के कवियों ने किया है । आदर्श मानव को परिवार में व समाज में किस प्रकार का व्यवहार करना है इसका चित्रण इन कवियों ने किया है । नैतिकता और आदर्श के प्रतिमूर्ति के रूप में राम को दिखाया है ।

राम भक्ति काव्यों में भक्ति को अधिक महत्व और कर्म को कम महत्व दिया है । उनके लिए भक्ति समस्त विकारों, रोगों और समस्याओं को दूर करने के लिए प्रयुक्त उपकरण ही था ।

पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का हल त्याग और प्रेम के द्वारा करने की सलाह इन कवियों ने दिया है । जिनसे हमारा निकट का संबन्ध है, उनकी त्रुटियों पर रोष प्रकट करना उचित नहीं है । इसके बदले उनकी त्रुटियों को प्रेम एवं त्याग की उच्च एवं उदात्त भावनाओं से परिष्कृत करने से क्या क्या फायदा हो सकता है इसका जीवन्त चित्रण कवियों ने अपने काव्यों में किया है ।

राम भक्त कवियों ने अपने ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति का एक प्रामाणिक एवं सर्वग्राह्य स्वरूप अंकित किया है । विद्वान, कवि, दार्शनिक सभी को महत् संदेश भी उन्होंने दिया ।

भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में राम भक्ति शाखा के कवियों का देन महत्वपूर्ण है । उनकी रचनाओं में जन्म से लेकर, मरण पर्यन्त के संस्कारों का वर्णन है । विभिन्न पर्वों का चित्रण हमें लोक जीवन का यथार्थ रूप दिखाते भी है ।

रामचरितमानस के रामराज्य की धारणा

जिस रामराज्य की स्थापना करने का प्रयास हम कर रहे हैं, उसका मूल श्रोत तो तुलसीदास जी है । उसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने कर्तव्य का संकेत है । उनका पालन करने पर ही रामराज्य की स्थापना कर पायेंगे ।

तुलसी के रामराज्य का आदर्श राजा दशरथ नन्दन श्रीराम ही है । उनको अपने वैभव ऐश्वर्य या राजपद का मान कभी भी नहीं है । उनका शासन प्रेम, कर्तव्यपालन और मर्यादा -निर्वाह के बूते पर चलता है । राजा होने के लिए त्याग की भावना, धर्म परायणता आदि गुण-विशेषों का होना परम आवश्यक है । पिता के आज्ञा पालन करने राज्याभिषेक के समय पर वनवास के लिए तैयार होना तो सामान्य बात नहीं है ।

ऐसे त्यागमूर्ती राजा के राज्य में तो खुशियाँ ही रहेगा । तुलसी के राम राजय की पहली विशेषता यह है कि जिसके हाथों में देश का शासन हो उसको राम के समान सद्गुण संपन्न होना चाहिए ।

सद्गुण संपन्न राजा के राज में जनता सुखी और समृद्ध रहेगा । राजा और प्रजा की सच्चाई राज्य को एक नया आकर्षण ज़रूर देगा । रामराज्य में राम ने अपने जीवन से सबको इसी सद्व्यवहार की शिक्षा दी और सभी ने उसको स्वीकारा भी ।

रामराज्य में प्रकृति से मिलकर जीनेवाले ही हैं । इसलिए प्रकृति उनसे रुष्ट नहीं होते । रामराज्य में सभी कुछ व्यवस्थित है । रामराज्य की कुछ कल्पनायें यों है –

- सभी व्यक्ति समान है ।

- प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता पर काम करना चाहिए ।

- जो काम नहीं करेंगे, उन्हें खाना पाने का कोई अधिकार नहीं है ।

- प्रत्येक का काम समाज के हित के लिए होना है ।

- संपत्ती व्यक्ति की नहीं वरन् समाज की है ।

"राम राज बैठे तैलोका । हरषित भये सबशोक ।

वैर न कर काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ।"

राम की नीति-धर्म-शीलता और वीरता के कारण ही सुग्रीव से मैत्री हुई । राम धर्मशील तो थे, पर नीचों को दण्ड देना भी वे जानते थे । राम ने समुद्र से विनयभरी नीति का प्रस्ताव किया, पर जब उससे समुद्र न माना तो उसे दंड देने में भी वह हिचकिचा या नहीं । अच्छा राजा माली के समान ही है ।

"माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल ।

प्रजा भाग बए होहिंगे, कबहूँ कबहुँ कलि काल ।"

रामराज्य समत्व का राज्य था । उसमें ऊँच नीच का भेद नहीं था । अल्पायु में मृत्यु नहीं होती थी । कोई पीडा और अनाचार नहीं था । सूर्य उतनी ही गर्मी देता था, जितनी आवश्यकता थी । पशु पक्षी स्वच्छन्द विहार करते थे । बादल समय पर वृष्टि देते थे । वन और उपवनों के वृक्ष समय पर फल-फूल देते थे । किसी को भी दैविक और भौतिक कष्ट नहीं होते थे । संक्षेप में तुलसी के रामराज्य का रूप यही है ।

शासक में राम का गुण और जनता में उनकी प्रजा का गुण होने से ही हम पुनः सुखी और समृद्ध होने का स्वप्न सच्चा कर सकते हैं ।

तुलसीदास की रचनायें

काशी नागरी प्रचारणी सभा ने आपकी बाहर ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है । उनमें छः बड़ा और छः छोटा है ।

दोहावली

इसमें नाम महिमा, नीति, भक्ति और राम महिमा विषयक ५७३ दोहे हैं । इसमें व्रज भाषा परिमार्जित रूप में मिलता है । भगवान के प्रति भक्ति की भावनात्मक अनन्यता और एकनिष्ठता का वर्णन इसमें हुआ है ।

कवितावली

इस रचना में रामायण कथा काण्डों के अनुसार वर्णित किया है । लेकिन वह क्रमबद्ध रूप में नहीं है । कवित्त, सवैया, छप्पय आदि छन्दों का प्रयोग इसमें किया गया है । परिमार्जित रूप में

व्रज भाषा का प्रयोग इसमें देख पायेंगे ।

गीतावली

राम कथा क़ा वर्णन सात कांडों में विभाजित करके इसमें प्रस्तुत किया है । इसमें कुल ३२८ पद है । गीती शैली का प्रयोग इसमें किया है ।

कृष्ण गीतावली

श्रीकृष्ण का यशोगान इस रचना में हुआ है । इसमें कुल ६१ पद हैं । अवधि भाषा के साथ साथ परिमार्जित रूप में व्रज भाषा का प्रयोग इसमें भी हुआ है ।

विनयपत्रिका

विनयपत्रिका में अनेक देवी-देवताओं की स्तुति है । आत्म-निवेदन के रूप में लिखे गये काव्यों में सर्वोच्च रचना है यह ।

रामचरितमानस

इसमें रामकथा का वर्णन सात कांडों में किया गया है । आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना भी यही है । प्रसंगानुसार स्फुट कथाओं के साथ साथ दार्शनिक विचारों का वर्णन भी किया गया है । आपकी भक्ति भावना रामचरितमानस के संदर्भ में स्पष्ट होती है । इसकी रचना करने गोसाई जी दो साल तक कर्मनिरत रहे । अवधि भाषा का प्रयोग इसमें ज़्यादा किया है ।

रामलला नहछु

राम के जनेऊ के अवसर को ध्यान में रखकर लिखा गया है यह ग्रन्थ । इसमें कुल २० छन्द है ।

वैराग्य संदीपनी

संतमहिमा, स्वभाव और शान्ति का वर्णन दोहा, चौपाई में इस रचना में वर्णित है ।

बरवै रामायण

इसमें ६९ छन्दों में रामकथा का वर्णन किया गया है ।

पार्वतीमंगल

१६४ छन्दों में शिव और पार्वती के विवाह वर्णन इस रचना में हुआ है ।

जानकीमंगल

राम के विवाह का वर्णन इस रचना में मन मोहक ढंग में किया गया है ।

रामाज्ञा प्रश्न

इसमें सात सर्ग है । यह सगुण विचार के लिए लिखा गया है ।

Unit 5

सगुण भक्ति काव्य - कृष्ण भक्ति शाखा

.मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन में कृष्ण भक्ति काव्य का प्रमुख स्थान है । निर्गुण पंथी संतों की कठोर साधना रीतियाँ आम लोगों को आसान नहीं लगा । इसलिए भारतीय पुराण और इतिहास में सर्वाधिक वर्णित श्रीकृष्ण की ओर लोग आकृष्ट हुए । इसी बीच निर्गुण पंथ के सूफी कवियों की रचनायें आये । लेकिन जन मानस में प्रतिष्ठा पाने में वे भी असफल रहे । तुलसीदास जी के आदर्श पुरुष राम भी लोगों को हितकर नहीं रहा । श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन लोगों के दिलों को छूने में विजय हासिल किया ।

कृष्ण विषयक काव्य का बाहुल्य हमें बारहवीं शताब्दी के बाद देखने को मिलते हैं । आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य का प्रारंभ मैथिली कोकिल, विद्यापति से स्वीकार किया जाता है । राधाकृष्ण की लीलागान के लिए उन्होंने 'पदावली' की रचना की । उनके काव्यों में श्रृंगारिकता की प्रधानता थी ।

कृष्ण कथा का वर्णन जयदेव ने भी किया था । उनके प्रसिद्ध काव्य 'गीत-गोविन्द' में राधा कृष्ण के लीलाओं का वर्णन किया गया है । कृष्ण भक्ति शाखा का विकास प्रायः मुक्तक रूप में ही हुअ है ।

कृष्ण काव्य के दो प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं ।

१. वल्लभाचार्य की बालकृष्ण उपासना पद्धति

२. जयदेव, विद्यापति आदि भक्त कवियों की गीति काव्य पद्धति ।

इन्होंने कृष्ण की ओर भक्तों को लाने उनकी रागात्मक वृत्तियों का आश्रय लेकर उनका स्मरण करवाया है ।

विद्यापति

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में राधाकृष्ण प्रेम की अवतरणा करते हुए आप कृष्ण भक्त कवियों की पंक्ति में आगे खड़े रहे हैं । आप मिथिला निवासी थे । उनकी 'पदावली' नामक रचना उन्हें 'अभिनव जयदेव', 'मैथिली कोकिल' आदि उपाधियाँ मिलने का कारण रहा । आपके पिता गणपंति ठाकुर संस्कृत के प्रकांड पंडित और राजाश्रयी कवि थे । पिता के समान आपने भी राजाश्रय में रचनाएं की। 'भूपरिक्रमा', 'गंगावाक्यावली', 'पुरुषपरीक्षा' आदि संस्कृत ग्रन्थ, अवहट्ठ में 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका' और मैथिली में 'पदावली' की रचना की ।

'पदावली' में मुख्य रूप से भक्ति और श्रृंगार का मिश्रण ही मिलता है । कवि ने राधा-कृष्ण के मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही नहीं उन्हें एक दूसरे के प्रति वासना-निमग्न भी दिखाया है । इसी आधार पर रामचन्द्र शुक्ल, रामकुमार वर्मा जैसे कुछ इतिहासकार उन्हें श्रृंगारी कवि मानते हैं । लेकिन

ग्रियेर्सन जैसे कुछ लोग उनमें रहस्यात्मकता का आरोप किया ।

राधा के नखशिख वर्णन, रूप वर्णन तथा उनके प्रति कृष्ण का अनुराग वर्णन आपने अत्यन्त भावात्मक रूप में किया है । यह पढ़कर चैतन्य महाप्रभु भाव विभोर होकर ध्यान लीन हो जाते थे। परवर्ती कृष्ण काव्य पर भी विद्यापति का छाप ज़रूर पड़ा है ।

वल्लभ संप्रदाय

वल्लभाचार्य ने १६वीं शताब्दी के मध्य में उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया । विष्णुस्वामी के भक्ति सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतदर्शन तथा प्रेम लक्षण भक्ति के मार्ग पुष्टिमार्ग की स्थापना की । व्रजमण्डल, गुजरात आदि राज्यों में पुष्टिमार्ग का प्रचार हुआ । आपके मृत्यु के बाद गोपीचन्द आचार्य हुए । मगर २८ वर्ष की अल्पायु में उनका देहान्त हो गया । और वल्लभ का दूसरा पुत्र विट्ठलनाथ आचार्य के पद पर आये और संप्रदाय का प्रसार करने लगा ।

विष्णुस्वामी शुद्धाद्वैतवाद को मानते थे अतः उसका असर वल्लभाचार्य पर भी पड़ा । आत्मा-परमात्मा में शुद्धाद्वैतता का प्रतिपादन होने के कारण ही यह मत शुद्धाद्वैतवाद के नाम से जाना जाता है । इनके अनुसार ब्रह्म माया से रहित शुद्ध है । ब्रह्म को एक अखंडित, आदि, अनादि, अद्वैत तत्व के रूप में उन्होंने माना । शंकर ने ब्रह्म को छोड शेष सभी को असत्य माना था । लेकिन वल्लभाचार्य जग जगत और जीव सृष्टि को ब्रह्म का ही रूप माने हैं ।

वल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम माना है । कृष्ण के रसेश रूप की प्राप्ति के लिए स्तुति करनेवाले भक्तों को ब्रह्म-भाव की प्राप्ति अथवा पृष्टि मिलेगी । पृष्टि (अनुग्रह) मार्ग की अवधारणा आपको 'भागवत' से ही मिला होगा । 'कठोपनिषद' में भी यह व्यक्त किया गया है कि ईश्वर की प्राप्ति ईश्वर के अनुग्रह पर ही निर्भर है ।

वल्लभाचार्य के अनुसार कर्ममार्गी और ज्ञानमार्गी लोग स्वर्गादि लोकों को पाकर मर्त्य लोक में आता जाता रहता है, लेकिन पुष्टि मार्गी परब्रह्म में विलीन हो जाता है । जब भक्त अपनी समस्त इच्छाओं और भावनाओं को भगवदर्पण कर देगा तब भगवान उस पर अनुग्रह देगा और उनके साथ नित्य लीला करेगा । यह नित्य लीला स्वरूप की प्राप्ति पृष्टिमार्ग का सबसे बडा लक्ष्य है ।

पुष्टिमार्ग में मधुर रूप से भक्ति करनेवालों को सखी रूप में और सख्य भाव से भक्ति करनेवालों को सखा रूप में चित्रित किया है । पुष्टिमार्ग के अनुसार सभी देवी-देवता, अवतार कृष्ण का ही अंग है ।

पुष्टिमार्ग के मान्य ग्रन्थ 'प्रस्थान चतुष्टय' है । 'वेद-उपनिषद', 'ब्रह्मसूत्र', 'भगवदगीता' और 'भागवत पुराण', 'प्रस्थान चतुष्टय' के नाम से जाने जाते हैं । पहला तीन तो 'प्रस्थान त्रयी' नाम से पहले ही प्रचार में था । 'भागवत पुराण' रूपी नींव पर ही पुष्टिमार्ग का निर्माण हुआ था ।

पुष्टिमार्गी, सेवा के राग, भोग और श्रृंगार को मानते थे । संसार के लोग इन तीनों में फँसा पड़ा है । उससे बचने इनको भगवान की सेवा में लगकर इनको भी कृष्ण निमित्त बनाने की सलाह उन्होंने दिया ।

पुष्टिमार्गीय भक्ति पूर्ण प्रेम लक्षणा भक्ति है ।

अष्टछाप

अष्टछाप हिन्दी की अष्टधातु की मुद्रा है जिसकी अमिट छाप हिन्दी भाषा और साहित्य पर बहुत गहरी है । अष्टछाप वल्लभ संप्रदाय का ही साहित्यक रूप है । वल्लभाचार्य के बाद गोस्वामी विट्ठलनाथ ने वल्लभ संप्रदाय को पूर्ण व्यवस्थित और संघटित करने का प्रयत्न किया । इसी उद्देश्य की पूर्ती के लिए उन्होंने अष्टछाप की स्थापना की । वल्लभाचार्य के शिष्यों में से चार और अपने चार शिष्यों को मिलाकर अष्टछाप की स्थापना की । वल्लभाचार्य के चार शिष्य थे – सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास और कृष्णदास और विट्ठलनाथ के शिष्य थे - गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास ।

अष्टछाप काव्य का धार्मिक महत्व अक्षुण्ण है । निर्गुण भक्ति से ऊबे मध्यकालीन समाज को उन्होंने सगुण प्रेम लक्षणा मधुर भक्ति का अमृत दिया । अष्टछाप के सभी कवि संगीत कला के मर्मज्ञ थे कृष्ण लीलाओं के मौकों पर वे अपनी शास्त्रीय संगीत के ज़रिए लोगों को भाव विभोर करते रहे । तानसेन जैसे कवियों का सूरदास आदि कवियों की कला से प्रभावित होने की सूचना अन्यत्र उपलब्ध है । संगीतकला और गायन विधा को नया जोश यों मिला ।

प्राचीन हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक चर्चित अष्टछाप की कवियों का ही रचना है । व्रज भाषा काव्य को विशेष प्रश्रय मिला । कृष्ण काव्यों के लिए आज भी व्रंज भाषा का ही प्रयोग किया जाता है । कृष्ण लीला संबन्धित छोटी सीमित क्षेत्र में खड़ा होकर भाषा, रस, शैली आदि के विकास के लिए पर्याप्त योगदान देकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया । इन कवियों ने रति भाव का बड़ा व्यापक एवं गंभीर चित्रण किया है । वात्सल्य रति, दाम्पत्य रति एवं भगवद् रति का विस्तृत चित्रण इन्होंने किया है । श्रृंगार, भक्ति एवं वात्सल्य रसों को परकाष्ठा पर इन कवियों ने पहुँचाया ।

समग्र अष्टछाप काव्य भक्ति भावना से ओतप्रोत है । ये पहले भक्त थे और कवि बाद में । हिन्दी में भ्रमरगीत काव्यों का नवोत्थान इनके द्वारा ही हुआ । विद्यापति की पदावली के मधुर संगीत ध्वनि का विकास इन कवियों ने ही किया । अष्टछाप काव्य का कला पक्ष सूरदास और नन्ददास से संपन्न हुआ था । उनके रचनाओं में प्रयुक्त होने के कारण व्रज भाषा का भी परिष्कार और परिमार्जन हुआ है । इन कवियों की प्रेरणा से भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य होते रहे । रामचन्द्र शुक्ल ने यों लिखा था – आचार्यों की छाप लगी आठ वीणायें श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठी । जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अंधकवि सूरदास की वीणा की थी । मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया । ब्रज प्रदेश में प्रचलित संस्कार,आचार-विचार, रीति-रिवाज़ आदि का एक सजीव झलक अष्टछाप काव्यों में मिलते हैं ।

परमानन्ददास

आप वल्लभाचार्य जी के शिष्यों में प्रमुख थे । आपके घर परिवार आदि के बारे में जानकारी कम ही मिलते हैं । ऐसा अनुमान शेधकर्ताओं ने प्रकट किया है कि वे कन्नौज निवासी थे । 'दानलीला', 'ध्रुवचरित' आदि आपकी प्रमुख रचनायें हैं ।

परमानन्द दास के काव्य भाव प्रधान काव्य है । स्वाभाविक और निरलंकृत भाषा में आप ने रचना की । आपकी रचनाओं में कृष्ण की बाल लीला को विशेष महत्व दिया गया है । वात्सल्य रस और बाल भाव के चित्रण में आप अद्वितीय रहे । आपका वात्सल्य वर्णन बालक कन्हाई के जन्म से शुरू होते हैं । श्रृंगार वर्णन में भी पवित्रता,अनुभूति की स्वाभाविक मार्मिकता आदि दर्शनीय है। चित्रात्मकता, आलंकारिकता, मधुरता आदि आपकी भाषा की विशेषताएँ हैं । वियोग श्रृंगार वर्णन में आपको अद्‌भुत सफलता मिली है ।

नन्ददास

अष्टछाप कवियों में नन्ददास का नाम प्रमुख है । आपका जन्म सन् १५३३ ई. में रामपूर में हुआ - यों अनुमान लगाया जाता है । पुष्टिमार्ग के आचार्य विट्ठलनाथ से मिलने के बाद आप विलासी जीवन छोड दिये और कन्हाई के नाम गुन गुनाते जीवन बिताने लगे । 'रासपंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' आपके श्रेष्ठतम ग्रन्थ माने जाते हैं । मधुर शब्दों से युक्त, लोकोक्ति और मुहावरों से भरा हुआ संगीतात्मक भाषा के प्रयोग आपकी रचनाओं की खासियत है । आपके संपूर्ण ग्रन्थ परिमार्जित व्रज भाषा में है । सुन्दर एवं उपयुक्त भाषा चयन के कारण आप जडिया कहे जाते है । निर्गुण निराकार ब्रह्म की खंडन करके सगुण साकार कृष्णभक्ति की स्थापना करने का कोशिश आपने भी किया है ।

कृष्णदास

आपके जन्म, परिवार आदि के बारे में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई है । गुजरात के रहनेवाले आप बचपन में ही घर छोड़कर चले गए थे । वल्लभाचार्य जी ने उनकी प्रखर बुद्धि और भगवत् भक्ति के कारण श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारी बना दिये थे । आप कवि और गायक भी थे । आपके फुटकर पद ही आज उपलब्ध है । कृष्णदास के पदों की भाषा शुद्ध व्रज है । इन्होंने बाललीला, राधाकृष्ण प्रेम-प्रसंग, रूप सौन्दर्य आदि का मनोहर वर्णन किया है ।

कुंभनदास

आप का जन्म सन् १४६८ ई. में माना जाता है । आर्थिक कठिनाईयों से पीड़ित परिवार में जन्म होने के कारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था । महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने उनकी सुरीली आवाज़ सुनकर उनको दीक्षा दी । गृहस्थ होते वक्त भी आप कृष्ण के भक्त थे; अब उसकी गति तीव्र होने लगी । श्रीनाथ के चरणों में बैठकर आप भजन गाते रहते थे । इसलिए अक्बरबादशाह के यहाँ जाकर भी जल्दी लौट आये । 'रागकल्पद्रुम', 'रागरत्नाकर' आदि रचनाओं में आपका फूटकर पद उपलब्ध है । साधारण व्रज भाषा पर ही आप ने रचनायें की । अष्टछाप की शिष्यों में प्रथम होने की ख्याति आपको ही मिला है ।

गोविन्दस्वामी

आप का जन्म भारतपूर के आँतरी गाँव में सन् १५०५ ई. में हुआ था । गृहस्थ जीवन से विरक्ति महसूस होने पर आप व्रजमण्डल के महावन नामक स्थान में जाकर नामस्मरण करने लगे । उनकी गीत सुनकर विट्ठलनाथ जी ने उनको दीक्षा दी । उसके बाद आप गोवर्धन चले गए । आपके स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । आपके लिखे पदों का संकलन गोविन्द स्वामी के पद नाम से विख्यात है ।

आप काव्य और संगीतशास्त्र के उच्चकोटी के ज्ञान रखते थे । प्रेम भक्ति से ही भगवत् प्राप्ति संभव है – यही आपका राय था । आपके पदों में गुरु के प्रति ईश्वर भाव ही मिलता है । तानसेन कभी कभी आपसे गाना सुनने के लिए आया करते थे ।

छीतस्वामी

आप का जन्म सन् १५१५ ई. में मथुरा में हुआ था । पंडा होने के कारण आप अक्खड एवं पाखंड थे । लेकिन बाद में गोस्वामी विट्ठल नाथ जी से दीक्षा लेकर आप कृष्ण भक्त बन गये । राधाकृष्ण के प्रेम लीलाओं तथा कृष्ण की बाल-लीलाओं संबन्धी अनेक पद आप ने लिखा । लेकिन आपका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है ।

चतुर्भुजदास

आप के पिता अष्टछाप के कवि कुंभनदास थे । इन्होंने अपने पिता से बचपन से ही काव्य और संगीत की शिक्षा प्राप्त कर ली । आप की रचनाओं में कृष्ण जन्म से लेकर गोपी विरह तक की घटनाओं का वर्णन हुआ है । आपके स्फुट पदों का प्रकाशन 'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह', 'कीर्तनावली' तथा 'दानलीला' नामों में किया गया है ।

सूरदास

कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में आपका नाम गिना जाता है । यद्यपि आपके बारे में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हो चुका है तो भी आपके जीवन के बारे में दृढ़ता पूर्वक कुछ बताने कोई तैयार नहीं है । आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी ने यों लिखा है – "श्री हरिरायी जी द्वारा लिखित चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में यह सूचना दिया गया है कि सूरदास जी का जन्म दिल्ली के पास सीही ग्राम में, जो जनमेजय के यज्ञ स्थान के निकट है, एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ हुआ था ।"

सूरदास जी सलपट जन्मान्ध थे और उनके नेत्रों के गड्ढ़े भी नहीं थे, केवल भौहें थे । वे अपने पिता के चौथे पुत्र थे । छः वर्ष की आयु में वह घर से दूर पीपल वृक्ष के नीचे रहने लगे । कुछ दिनों के बाद एक धनी ब्राह्मण के गायों की पता देने के कारण वह उनको घर बनाकर दिया । वहीं से वह प्रेमगान गुनगुनाने लगे । १७ वर्ष की अवस्था में उनको विरक्ति हुई, और यमुना के किनारे आकर रहने लगे । वहीं वल्लभाचार्य से मिले । सूरदास आपके शिष्य बने ।

आचार्य हज़ारी प्रसाद जी लिखते हैं – "सूरदास जी के प्राकृतिक शोभा और रूप वर्णन को देखकर अधिकांश विद्वान यह नहीं मानना चाहते कि वह जन्मान्ध थे । आपके कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य मिलती है कि आप अपने को जन्म का अन्धा अैर कर्म का अभागा कहते हैं ।" एक पद देखिए –

"रास-रस रीति नहिं बरनि आवै
इहैं निज मन्त्र, यह ज्ञान यह ध्यान है,
दरस दम्पति भजन सार गऊँ
इहै माँगों बार-बार प्रभु, सूर के
नयन है रहौ नरदेह पाऊँ ।"

'सूर सारावली', 'भागवत भाष्य', 'सूर रामायण', 'भँवरगीत', 'नाग लीला', 'सूर सागर', 'सूर सागर सार' जैसी कई रचनायें आपका हैं । इनमें कुछ प्रकाशित और कुछ अप्रकाशित है ।

'सूर सारावली' में होली के खेल का वर्णन हुआ है । इसी होली के रूपक में सृष्टि की उत्पत्ति का भी सुन्दर वर्णन हुआ है । इसका आधार श्रीमद् भागवत तथा अन्य पुराण ग्रन्थ है । कृष्णावतार की कथा, कृष्ण से संबन्धित समस्त लीलाओं का वर्णन आदि इसमें हुआ है ।

'साहित्य लहरी' दृष्टिकूट कहे जानेवाले पदों के संग्रह हैं । इसमें ११८ पद है । इस रचना के अधिकांश पदों में नायिका भेद, अलंकार आदि का विवेचन हुआ है ।

'सूर सागर' सूरदास जी की महत्वपूर्ण प्रामाणिक रचना है । द्वादश स्कन्धों में इस रचना की व्याप्ति है । ४००० से ज़्यादा पदों में इसकी रचना की गयी है । गेय पदों की मुक्तक शैली में भगवतपुराण की विषयवस्तु के आधार पर सूर ने सागर प्रवाहित किया है । 'सूर सागर' की आत्मा आप की आत्मा की शाब्दिक प्रतिछाया ही है ।

भ्रमरगीत

भ्रमरगीत एक विरह काव्य है । सूर ने अपने अन्धे नेत्रों से एक न्यारे प्रेमलोक की आनन्द का अवलोकन किया है । कृष्ण के मथुरा प्रस्थान पर गोपियों के हृदयों में जो विरह गरज उठा उसका मनोरम वर्णन भ्रमरगीत में हुआ है । सूर ने इसमें सगुणोपासना का निरूपण बडे ही मार्मिक ढंग से किया है । श्रृंगार के वियोग पक्ष का बड़ा गंभीर एवं विशद वर्णन इसमें है । सूर की राधा सूर का अपना भक्त हृदय है । वे हमेशा परमात्मा के साथ रहना चाहते हैं । एक पल के लिए भी बिछुड़ने के लिए वे तैयार नहीं है ।

ऊधव कृष्ण का मित्र था । उन्हें अपने योग और ज्ञान का बड़ा घमंड था और प्रेम और भक्ति को अवहेलना की दृष्टि से देखते भी थे । श्रीकृष्ण साकार उपासना की महिमा उद्धव को समझाना चाहा । इसलिए उन्होंने ऊधव को गोपियों को समझाने के बहाने गोकुल भेजा । उन दोनों के बीच के संवाद के माध्यम से सूरदास सगुण भक्ति की महिमगान कर रहे हैं । गोपियों से कृष्ण के हाल बता देने के साथ साथ उन्होंने अपना ज्ञानोपदेश अरंभ कर दिया । इसी बीच में एक भ्रमर राधिका के चरण पर बैठ गया । गोपियों ने ऊधो को सुनाते हुए भ्रमर को संबोधित कर के उपालंभ देना आरंभ कर दिया । ऊधो तो ज्ञान सिखाने आये थे लेकिन वह स्वयं प्रेम के प्रवाह में डूब गये।

"प्रेम मगन ऊधो भए हो देखत व्रज को भाय
मन मन ऊधो कहै यह न बूझिए गोपल सिंह ।
व्रज को हेत बिसरिजोग सिखवत व्रज - बालहिं
पदि बाँचि न आवई रहे नयन जल पूरि ।
सूर स्याम भूतल गिरे रहे नयन जल छाय
पोंछि पीत पट सौं कह्यो आये जोग सिखाय ।"

गोपियों की परम भक्ति के सामने ऊधो प्रेम की महत्ता जान गए । निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर वह सगुण की उपासना करने लगे ।

सूर और तुलसी की तुलनात्मक विशेषतायें

तुलसी के उपास्य भगवान राम थे तो सूर के आराध्य थे श्रीकृष्ण । दोनों ने सगुणोपासक रूप में आराध्य देव को रिझाया है । संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदिकवि वाल्मीकि एवं व्यास का है वही स्थान हिन्दी साहित्य में सूरदास और तुलसीदास जी का है ।

तुलसी ने अपने उपास्य देव राम का जीवन चरित्र पूर्ण रूप से चित्रित किया है तो सूर ने केवल बाल-चरित्र और उसके बाद मथुरा जाने तक की कथा को अपनी प्रतिभा से सजाया है ।

तुलसी भक्त शिरोमणि होते हुए समाज सुधारक थे तथा लोकनायक भी, पर सूरदास मात्र भक्त गायक ही रहे ।

तुलसी की भक्ति दास्य भाव से ओतप्रोत है जबकि सूर की भक्ति में सख्या भाव का प्रभाव ज़्यादा है ।

सूर का काव्य केवल पुष्टि मार्ग का प्रचारण करता है तो तुलसी भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार करने के लिए काव्य रचना की है ।

सूर व्रजमण्डल के लोकनायक बने तो तुलसी समस्त उत्तर भारत के ।

तुलसी का अपने समय की सभी भाषा-शैलियों पर समान अधिकार था तो सूर का एकमात्र ब्रजभाषा पर ही ।

तुलसी अपनी रचनाओं में लोक मर्यादा के निर्वाह पर विशेष बल दिया तो सूरदास ने लोक रंजन रूप को महत्व दिया ।

अष्टछाप के अतिरिक्त कृष्ण कवि

अष्टछाप के अतिरिक्त कृष्ण भक्ति काव्य के दो संप्रदायों का नाम उल्लेखनीय है - गुसाईं हितहरिवंशी द्वारा स्थापित 'राधावल्लभी संप्रदाय', स्वामी हरिदास जी द्वारा स्थापित 'सखी संप्रदाय'। राधावल्लभी संप्रदाय में राधा को सर्वोपरि माना गया है । उन्होंने सदैव संयोग और माधुरी के ध्यान तथा गायन में बल दिया है । सखी संप्रदाय में साकार कृष्ण की सखी भाव से उपासना करते थे ।

कृष्ण भक्ति से संबन्ध रखनेवाला व्रजमण्डल का प्रमुख वैष्णव संप्रदाय है 'निंबार्क संप्रदाय' । 'युगल शतक 'की रचनाकार श्रीभट्ट, 'परशुराम सागर' के रचयिता परशुराम देव आदि इस संप्रदाय के प्रमुख कवि थे । हितहरिवंशी, हित चौरासी, स्फुट वाणी आदि के नाम उल्लेखनीय है । सखी संप्रदाय में हरिदास जी द्वारा लिखित 'सिद्धान्त के पद' और 'केलिमाल' के नाम उल्लेखनीय हैं ।

'आदिवाणी', 'गीतगोविन्द भाषा' जैसे रचनाओं के प्रणेता 'चैतन्य संप्रदाय' के रामराय के नाम भी यहाँ उल्लेखनीय है ।

सूर की भक्ति पद्धति

जीवन के प्रथम चरण में आप ने निर्गुण साधना पद्धति को स्वीकार कर कुछ पदों की रचना की थी । लेकिन बाद में वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पृष्टिमार्ग में दीक्षित होकर जिस भक्ति पद्धति का प्रणयन किया वह सख्य कोटी की अनन्य भक्ति कही जाती है ।

सूरदास की रचना में दो प्रकार के पद मिलते हैं - एक विनय-भक्ति-संबन्धी पद और दूसरे माधुर्य भक्ति संबन्धी पद । विनय भक्ति की साधना में वैष्णव संप्रदाय के अनुसार दीनता, मानमर्षता, भय-दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य आदि सात भूमिकाएँ स्वीकार की गयी है । इन सातों भूमिकाओं को लक्ष्य करके सूर ने पद रचना की है ।

भगवान के समक्ष दैन्य का प्रदर्शन करनेवाले सूर से वल्लभाचार्य जी ने लीला वर्णन करने का उपदेश दिया । यों सूर के जीवन में विचित्र परिवर्तन हुआ । उनको ऐसा लगने लगा कि भगवान हमेशा उसके पास ही है । यही भगवान का अनुग्रह और पोषण है । इसी पोषण के सांप्रदायिक रूप दो प्रकार का बताया गया है - साधन रूप और साध्य रूप । साधन भक्ति में भक्त को प्रयत्नशील रहना पड़ता है, साध्य रूप में भक्त सब कुछ विसर्जित करके भगवान के शरण में अपने को छोड़ देता है । याने जीव भगवान के शरण में पुष्टि (कृपा) प्राप्त करके सफलता प्राप्त करता है । पृष्टिमार्ग की दार्शनिक रूप को भली-भांति समझकर औरों को समझाने के लिए सूर ने सख्य भक्ति का प्रणयन किया ।

गोपियों की विरह भावना का चित्रण दांपत्य भक्ति का मकुटोदाहरण है । सख्य और दांपत्य भाव के बीच की कड़ी है वात्सल्य भक्ति । प्रमुख रूप से सख्य-भक्ति, वात्सल्य-भक्ति और मधुर भक्ति को पल्लवित करनेवाले पद सूर ने अधिक लिखे । भगवत् कृपा की प्राप्ति के लिए सूर की भक्ति पद्धति में अनुग्रह को प्रधानता मिला है । भक्ति में कृपा की प्राप्ति का साधन उन्होंने प्रेम को माना। बाद में वह भगवत् प्रेम को ही भक्ति का मेरुदंड मान लिया । सूरदास की भक्ति सख्य भाव की भक्ति कही जाती है ।

'सूर सागर' के पदों की रचना 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर की गयी है । 'भागवत्' के दशम स्कन्ध से सामग्री विशेष रूप से ली गयी है ।

आप वल्लभ संप्रदाय के पृष्टिमार्गीय भक्त कवि थे । 'पुष्टिमार्ग के ज़हाज़' नाम से भी आप जाने जाते हैं । कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और भक्ति से रचित होने के कारण आपकी भक्ति माधुर्य भक्ति भी कही जाती है । सगुण भक्ति को प्रतिष्ठा देने के लिए आपने भ्रमरगीत प्रसंग का वर्णन किया है । ऊधव निर्गुण भक्ति के वक्ता थे । लेकिन गोपिकाओं की भक्ति देखकर वे भी सगुण के उपासक बन गए ।

सूरदास की भक्ति-धर्म मानव के भाव लोक की भाँति अति विस्तृत और गहन है । सख्य भाव के भक्तों का यह सौभाग्य होता है कि वे अपने इष्टदेव की समस्त क्रियाओं और चेष्टाओं में उनके साथ रहते हैं । सूरदास के पदों में यह हमें दर्शनीय है । उनके मत में भक्ति की एक ही शर्त है – भगवान का सतत ध्यान । 'सूर सागर' में प्रदर्शित भक्ति भाव शान्त, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य के रूप में रखा जा सकता है ।

'सूर सागर' का सबसे ज़्यादा वाग वैदग्ध्य पूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है । भक्ति शिरोमणी सूर ने इसमें सगुणोपासना का निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है ।

सूर काव्य की प्रमुख विशेषतायें

सूरदास की भाषा शुद्ध ब्रज है । उनके पदों में माधुर्य और प्रसादगुण का प्राधान्य है । सूर ने वात्सल्य, श्रृंगार और शान्त रसों को अपनाया था । फिर भी वात्सल्य में आगे बढ़ गए ।

गीत काव्य की सभी विशेषतायें आपके काव्य में है । अत: वे हिन्दी के सबसे सफल और मधुर गीतकार माने जाते हैं ।

सूरदास की मान्यता है कि भगवान के अनुग्रह से ही मानव को सद्गति मिलती है । अटल भक्ति कर्मभेद, जाति भेद से ऊपर है । उनके वर्णों में सूक्ष्मता और निजी निरीक्षण का परिचय मिलता है। अपने चारों ओर घटने वाले छोटी सी छोटी हलचलों को भी आप समझते थे ।

मीराबाई

संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्ति कवियों में पहला नाम मीराबाई की है । मीराबाई मेडता के राव दूदा के चौथे पुत्र रत्नसेन की पुत्री थी । उसके बचपन का नाम प्रेमलकँवर था । मेडता के राव दूदा ने अपनी पौत्री मीरा की शिक्षा के लिए पंडित गजाधर को नियुक्त किया था । माता-पिता के इच्छानुसार मीरा का विवाह महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ । सुखी जीवन बिताने का सौभाग्य मीरा को नहीं मिला । युवावस्था में मीरा के पति भोजराज का निधन हो गया । पूर्व से ही कृष्ण की आराधना करनेवाली मीरा अब पूर्ण रूप से कृष्ण की आराधना में लगी । रैदास को कुछ लोग मीरा की गुरु मानते हैं ।

मीरा की रचित पुस्तकों के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । 'गीत-गोविन्द की टीका', 'नरसीजी का मायरा', 'फुटकर पद', 'राग सोरठ संग्रह', 'मीरा की पदावली' आदि आपकी रचनाएँ हैं । मीरा की भाषा में संगीतात्मकता का प्रभाव ज़्यादा पड़ा है । मीरा रूप की आराधिका थी ।

आपकी भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रज है । खडीबोली और पंजाबी के अंश भी अन्यत्र मिलते हैं । संगीत एवं छन्द विधा की दृष्टि से मीरा का काव्य उच्चकोटि का है । मीरा का काव्य उनके दिल से निकले सहज प्रेमोच्छ्वास का साकार रूप है । कृष्ण प्रेम में मतवाली मीरा, उनके मिलन की सपना संजोकर खुले दिल से गाती रही ।

रसखान

रसखान की जनम तिथि, स्थान आदि के बारे में कोई प्रामाणिक साक्ष्य अभी तक नहीं मिला है । रसखान ने विट्ठलनाथ से वल्लभ संप्रदाय के अन्तर्गत दीक्षा ली थी । 'प्रेमवाटिका' और 'दानलीला' आपकी मुख्य रचनायें हैं । 'अष्टयाम' नामक रचना में श्रीकृष्ण के प्रात: जागरण से रात शयन पर्यन्त दिनचर्य एवं विभिन्न क्रीडाओं का वर्णन हुआ है । बादशाह वंश के जन्मजात आप उन ऐश्वर्यों को छोड़कर श्रद्धा, प्रेम और भक्तिमय रस सागर में डूब गये । उनके काव्य का प्रमुख रस श्रृंगार है ।

अपनी रचनाओं में शुद्ध परिमार्जित साहित्यक व्रज भाषा का प्रयोग आपने किया । उनके काव्य में स्वच्छन्द मन के सहज उद्गार है । इसलिए कुछ लोग उन्हें स्वच्छन्द काव्यधारा का प्रवर्तक कहते

हैं । अन्य अधिकांश कवियों की तरह उन्होंने मुक्तक काव्य की ही रचना की है । आपकी भक्ति पद्धति वल्लभ संप्रदाय की पुष्टि भक्ति के सर्वाधिक निकट रहा है । रसखान ने कृष्ण-लीला-गान के रूप में स्मरण, कीर्तन, गुण-गान, नाम-महिमा आदि नवधा भक्ति के कुछ अंग अपनाये हैं ।

रसखान का श्रृंगार वर्णन रूपासक्ति पर आधारित है । अनुप्रास, वीप्सा और यमक अलंकारों का वर्णन रसखान की रचनाओं में दर्शनीय है । रसखान ने कवित्त, सवैया, दोहा आदि तीन चार छन्दों का ही प्रयोग किया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में – रसखान की सवैया में मृदुता है, लोच है, झंकृति है और है हृदय को छूने की अद्‌भुत शक्ति । तभी तो रसाखान और सवैया एक दूसरे के पर्याय बन गए थे ।

अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति सर्वार्पण में ही रसखान जीवन की सार्थकता मानते थे । कृष्ण गोपाल पर स्वयं को न्योछावर कर देने को ही आप सच्ची साधना मानते हैं । रसाखान भी सूर की भाँति सख्य भाव की ही उपासना करते थे, इसलिए ही इनके उपालम्भों में इतनी स्वतंत्रता और अक्खडपन की भावना है ।

कृष्ण भक्ति शाखा की प्रमुख विशेषताएँ

1. कृष्ण लीला का वर्णन

कृष्ण भक्ति शाखा के सभी कवियों के आराध्य श्रीकृष्ण है । हिन्दी के कवियों ने भगवत्पुराण को आधार बनाकर रचनायें की है । कृष्ण के जन्म से स्वर्गारोहण तक के घटनाओं का वर्णन उन्होंने किया है ।

2. पुष्टिमार्ग का अनुसरण

कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति का दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद है और उनका व्यवहार पक्ष पुष्टिमार्ग ही है ।

3. बाल लीला वर्णन की प्रधानता

लगभग सारे कवियों ने बाल लीला वर्णन के लिए ज़्यादा ध्यान दिया है । सूरदास ने जन्मान्ध होने पर भी कृष्ण की बाल लीलाओं का जो वर्णन किया है वह अनोखा ही है ।

4. भाषा

कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने अभिव्यक्ति के लिए व्रज भाषा का ही प्रयोग किया है । संगीतात्मकता भी अन्यत्र दर्शनीय है ।

5. साधना पद्धति

कृष्ण भक्ति काव्य में दसधा भक्ति का वर्णन देखने को मिलता है । लेकिन माधुर्य एवं सख्य भक्ति को उन लोगों ने प्रामुख्य दिया है ।

6. रसवर्णन

कृष्ण भक्ति काव्य में श्रृंगार, वात्सल्य एवं शांत रस का निरूपण सबसे अधिक हुआ है । श्रृंगार के संयोग व वियोग पक्षों का सम्यक वर्णन इन्होंने किया है ।

CUP/6181/08/500/SDE-4

भक्तिकाल

निर्गुण

ज्ञानाश्रयी शाखा

कबीरदास	-	बीजक (सखी, सब्द रमैनी)
रैदास	-	रैदास का बनी
नानक	-	गुरु ग्रन्थ साहब
दादू दयाल	-	हरदेवाणी, अंगबधू
सुन्दरदास	-	सुन्दर ग्रन्थावली
मलूकदास	-	मलूक ग्रन्थावली
धर्मदास	-	अमरसुख निधान

प्रेमाश्रयी शाखा

मुल्लादाऊद	-	चन्दायन
शेख कुतुबन	-	मृगावती
जायसी	-	पद्मावत, कन्हावत, आखिरी कलाम, अखरावट
उसमान	-	चित्रावली
मंझन	-	मधुमालती
गणपति	-	माधवानल काम कन्दकला
ईश्वरदास	-	सत्यवती कथा
जानकवि	-	कनकावती, मधुकर मालती

सगुण

राम भक्ति शाखा

रामानन्द	-	रामरक्षा - स्तोत्र, श्रीरामार्जुन पद्धति
तुलसीदास	-	रामचरितमानस, होदावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली
अग्रदास	-	ध्यान मंजरी, अष्टयाम
ईश्वरदास	-	भरत मिलाप
नाभादास	-	अष्टयाम

कृष्ण भक्ति शाखा

सूरदास	-	सूर सागर, सूर सारावली
नन्ददास	-	सांवर गीत, रास पंचाध्यायी, रसमंजरी
कुम्भनदास	-	रागकल्पद्रुम, रागरत्नाकर
परमानन्ददास	-	परमानन्द सागर, ध्रुवचरित
कृष्णदास	-	प्रेमतत्व वर्णन, भ्रमरगीत
गोविन्दस्वामी	-	गोविन्दस्वामी के पद
छीतस्वामी	-	पदावली
चतुर्भुजदास	-	चतुर्भुज कीर्तन संग्रह

Unit - 6

आधुनिक काल - भारतेन्दु युग

आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल से यह तथ्य सुव्यक्त होता है कि युगों की विविध परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य में पड़ता है । आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रादुर्भाव के वक्त भी परिस्थितियों के बदलाव की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इतिहास लेखकों ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म वर्ष सन् १८५० ई. को ही हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ मान लिया । आधुनिक काल में साहित्य की इहलौकिक दृष्टिकोण को प्रधानता मिली । मध्यकाल में लोग परलोक के बारे में सोचकर, इहलोक में कैसे जिएँ - इसके बारे में सोचना भूल गये थे । आधुनीकरण के परिणाम स्वरूप खड़ीबोली का प्रचार खूब होने लगा ।

भारत के आधुनिक बनने की प्रवृत्ति सन् १८५७ ई. की प्लासी की लड़ाई से शुरू हुई थी । ईस्ट इन्डिया कंपनी बंगाल के नवाब सिराजुदौला को पराजित करके पूरे बंगाल पर आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुए ।

संपूर्ण देश पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेज़ों को मराठा और सिक्ख को पराजित करना था । सन् १८५६ ई. के आसपास पूरा भारत ईस्ट इंडिया कंपनी के कब्जे में आ गया । अपने इस विजय के कारण अंग्रेज़ मदोन्मत्त हो गये और मनमाने ढंग से राज करने लगे । उनकी नीतियों से असंतुष्ट देशी राजाओं, सिपाहियों और किसानों ने मिल जुलकर सन् १८५७ ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह कर दिया । इसके बाद भारत ब्रिटीश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया ।

अंग्रेज़ों के आने के पहले भारत के गाँव और शहर की आवश्यकताएँ अपने आप पूरी हो जाती थी । किसी भी प्रकार का विघटन उसमें आया ही नहीं । अंग्रेज़ व्यापारियों ने इस देश को अपना बाज़ार बनाने के लिए यहाँ के आम धंधों को बहुत कुछ नष्ट कर दिया । देश की संघटन यों नष्ट होने लगे । साथ ही साथ अकाल भी आया । अकाल से लोगों को बचाने में अंग्रेज़ी शासक असफल रहे ।

पुरानी अर्थ व्यवस्था के स्थान पर नयी अर्थ व्यवस्था को लागू करने के कारण गाँव और शहर के बीच की दूरी घटने लगी । राष्ट्रीय एकता की भावना समाज में दृढ़ होने लगी । जाति प्रथा का प्रचलन होने के कारण यह उतना जल्दी संभव नहीं हुआ । अंग्रेज़ों ने जो सुविधाएँ दी उसका उपयोग उच्च जाति के लोगों ने ही किया । राष्ट्रीय आन्दोलन भी उन्हीं के हाथों में था । साहित्य और कला भी इसी रूप में बदल रहा था । उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और श्रमिकवर्ग के रूप में समाज विभक्त हुआ। आधुनिक काल में मध्य वर्ग की भूमिका प्रमुख रहा ।

शिक्षा उच्च वर्गों पर सीमित रहा । शिक्षा का पश्चिमीकरण के बाद शिक्षा सबको मिलने लगे। मिशनरियाँ, सरकारी प्रयास एवं व्यक्तिगत प्रयास से पश्चिमी शिक्षा का प्रचलन हुआ । अपनी काम

के लिए लोगों को तैयार करने के लिए सरकार इनका खूब प्रोत्साहन भी किया । कलकत्ता का फार्ट विलियम कॉलेज (सन् १८०१ ई.) की स्थापना कंपनी के सिविल सर्वेंट्स को अंग्रेज़ी शिक्षा देने के लिए हुई, लेकिन आधुनिक हिन्दी साहित्य को भी इसकी ढेर सारी उपलब्धियाँ मिली । भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन को प्रोत्साहन मिलने के लिए कॉलेज की स्थापना सहायक रही । अंग्रेज़ी शिक्षा के फलस्वरूप देश में एकता की भावना पैदा हुई, लोग नए ढंग से सोचने लगे ।

सन् १८२४ ई. में कलकत्ता एजुकेशन प्रेस की स्थापना के बाद पुस्तकों की छपाई में वृद्धि होने लगे । रेल, डाक-तार आदि का प्रसार देश के लोगों को एकसूत्र में लाने के लिए सफल सिद्ध हुए । यूरोप की बुद्धिवादी विचारधारा के फलस्वरूप लोगों में परिवर्तन होते रहे । राजाराम मोहनराय का ब्रह्म समाज, स्वामी दयानन्द जी का आर्य समाज आदि समाज में परिवर्तन लाने कर्मरत रहे । प्रेस की स्थापना से विचारों को मुद्रित रूप मिलने लगा । राजाराम मोहनराय का 'संवाद कौमुदी' (सन् १८२१ ई.) नामक बंगला साप्ताहिक पत्र, 'बंगदूत' (सन् १८३० ई.), 'उदंत मार्ताण्ड' (सन् १८२६ ई.), 'प्रजामित्र' (सन् १८३४ ई.) आदि अखबारों के साथ अंग्रेज़ियों के लूट-मार की खबरें भी छापकर लोगों में क्रांतिकारी विचारों को जगाने की कोशिश में संपादक तल्लीन रहे । आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में इन पत्र-पत्रिकाओं का योगदान महत्वपूर्ण रहा ।

जातिप्रथा, सती प्रथा आदि के विरोध करते हुए राजाराम मोहनराय समाज सेवा में लगे रहे । उसके कारण सती प्रथा हमेशा के लिए बन्द कर दी गयी । दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाएँ भी समाज सुधार के लिए प्रयत्न किया । इनके करण नये यथार्थ और पुराने संस्कारों के बीच सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की जाने ली । इस सामंजस्य के फलस्वरूप नये भारतीय समाज का निर्माण शुरू हुआ ।

हिन्दी साहित्य के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि यों तैयार हुआ । भक्ति और श्रृंगार में सीमित साहित्य अब अन्य श्रोतों की ओर भी जाने लगी । सामाजिक समस्याओं, नवीन ज्ञान-विज्ञान आदि का भी समावेश होने लगा । कल्पनालोक से साहित्यकार लोक के कठोर यथार्थों को समझने, समझाने के लिए तैयार हुए । गद्यशाखा के विकास के साथ साथ अनेक गद्य विधाओं – निबंध, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, समालोचना आदि का विकास हुआ । आधुनिक हिन्दी साहित्य का काल विभाजन डॉ. नगेन्द्र ने यों किया है;

पुनर्जागरण काजा (भारतेन्दु युग)	– सन् १८५७-१९०० ई.
जागरण सुधार (द्विवेदी युग)	– सन् १९०१-१९१८ ई.
छायावाद काल	– सन् १९१८-१९३८ ई.
छायावादोत्तर काल	
प्रगति-प्रयोग काल	– सन् १९३८-१९५३ ई.
नवलेखन काल	– सन् १९५३ - ई.

भारतेन्दु काल (सन् १८५७-१९०० ई.)

भारतेन्दु युग में सामाजिक, राजनैतिक जागृत संबंधी साहित्य का प्रकाशन आरंभ हुआ

था । प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सब सन् १८५७ ई. में हुआ था । आधुनिक साहित्य के प्रादुर्भाव में इन दोनों घटनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है । अब हम साहित्य के विविध उप विभागों का विकास भारतेन्दु काल में जिस प्रकार रहा, इसका विचार विमर्श करेंगे ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् १८५० ई.-सन् १९२५ ई.)

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् १८५० ई. में तथा मृत्यु सन् १९२५ ई. में हुई । आपने गद्य व पद्य के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने व्रजभाषा में तथा खड़ीबोली में रचनायें की थी । बंगदेश की नवीन साहित्यिक प्रगति से परिचय होने के कारण वही प्रगति हिन्दी भाषा में भी लाने के लिए वे कर्मरत रहे । सन् १८६८ ई. में उन्होंने 'विद्यासुन्दर' बंगला से अनुवाद करके प्रकाशित किया । इसमें उन्हेंने हिन्दी पद्य के बहुत ही सुडौल रूप का आभास किया । इसी वर्ष उन्होंने वाणी वचन सुधा नामक पत्र निकाला जिसमें पुराने कवियों की कवितायें छपा करती थी । पीछे गद्य लेख भी उसमें छपने लगे । सन् १८७३ ई. में उन्होंने 'हरिश्चन्द्र' नाम का एक मासिक पत्रिका निकाला । बाद में उसका नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' हो गया। हिन्दी गद्य का परिष्कृत रूप पहले पहल इसी पत्रिका में प्रकट हुआ ।

भारतेन्दु जी के साहित्यिक गुरु थे गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्य जी । भारतेन्दु जी हिन्दी के जनक और भारत का शेक्सपियर कहे जाते हैं ।

भारतेन्दु की काव्य कृतियों में 'भक्ति सर्वस्व', 'कार्तिक स्नान', 'वैशाख माहात्म्य', 'प्रेम माधुरी', 'मूक प्रश्न' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । 'निज भाषा उन्नती अहै सब उन्नति कौ मूल' उनके जीवन का मूलमंत्र बनने में उनके पिता बाबू गोपालचन्द्र का भी हाथ है । भारतेन्दु सही अर्थ में आधुनिक हिन्दी गद्य का जन्मदाता है । भारतेन्दु के निबन्धों में उनकी प्रगतिशील मान्यताएँ, व्यंग्य-विनोद, उदारता आदि के दर्शन होते हैं । उन्होंने खड़ीबोली गद्य को अनिश्चितता की स्थिति से मुक्त कर उसकी एक स्थिर और सर्वग्राह्य शैली का अन्वेषण किया । 'हिन्दी कविता', 'परदा', 'भ्रूणहत्या' आदि आपके लघु लेख हैं ।

भारतेन्दु ने अपने स्वल्प वय में आठ मौलिक नाट्य कृतियों (दो नाटक, एक नाटिका, एक गीति रूपक, दो प्रहसन, एक भाषा और एक नाट्य रासक) का निर्माण किया । भारतेन्दु 'रसा' उपनाम से उर्दु में कविता लिखते थे ।

भारतेन्दु जी का हृदय समाज-सुधार की भावना से ओतप्रोत था । ये बाल-विवाह के विरोधी, विधवा विवाह के पक्षपाती तथा स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे । सामाजिक कुरीतियों एवं अन्ध विश्वासों के प्रति आपका दृष्टिकोण सुधारवादी था ।

भारतेन्दु जी का साहित्यिक जीवन केवल अठारह वर्षों का है । इस अवधि में आप हिन्दी साहित्याकाश में पूर्णचन्द्र बनकर आये । डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने लिखा है – "लोहा भी इन्हें छू लेता था, तो सोना हो जाता था ।"

बालकृष्ण भट्ट (सन् १८४५ ई.-सन् १९१५ ई.)

भारतेन्दु के समसामयिक निबन्ध लेखकों में बालकृष्ण भट्ट का नाम सबसे ऊपर है । भट्ट

जी का पहला निबन्ध 'कालिराज सभा' सन् १८७२ ई. में कवि वचन सुधा में छपा । सन् १८७७ ई. में उन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' का संपादन आरंभ किया । विषय की अनुरुप भाषा में बदलाव लाने की अभूत पूर्व क्षमता भट्ट जी में थे । आप देशभक्ति और राजभक्ति को एक साथ लाने के पक्ष में नहीं थे ।

हिन्दी घचर्या के आद्याचार्य भी बालकृष्ण भट्ट है । 'चन्द्रोदय' निबन्ध गद्य-काव्य का पहला नमूना है । इनकी रचनाओं में गंभीर अध्ययन और पांडित्य का परिचय मिलता है । निबन्धों को उनके 'हिन्दी प्रदीप' नामक साहित्यिक पत्रिका में प्रमुख स्थान मिलता था ।

प्रताप नारायण मिश्र (सन् १८५६ ई.)

मिश्र नाटक, कविता, निबंध जैसी विधाओं में लिखे थे । आप ने हिन्दी-हिन्दु-हिन्दुस्तान का बीडा उठाया था । 'मन की लहर', 'प्रेम पुष्पावली', 'श्रृंगार विलास' आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं । तत्कालीन हास्य कवियों में आपका प्रमुख स्थान था ।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (सन् १८५५ ई.-सन् १९२२ई.)

भारतेन्दु युगीन कवियों में प्रमुख स्थान प्रेमधन को मिला था । वे साहित्यिक भाषा में रचना करने के पक्षवाले थे । उनकी रचनाओं में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग ज़्यादा मिलते हैं । वे 'आनन्द कादंबिनी' नामक पत्र के संपादक थे । अपने नये नये विचारों को अंकित करने के लिए ही उन्होंने 'आनन्द कादंबिनी' निकाला था । रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी में समालोचना के सूत्रपात करने का श्रेय भट्टजी तथा चौधरी साहब को ही दिया है । 'जीर्ण जनपद', 'आनन्द अरुणोदय', 'मयंक महिमा' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं ।

उर्दु में 'अब्र' नाम से उन्होंने कवितायें लिखे । देश की बुरी हालत होने के कारण, उससे बचने के उपाय, आदि उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है । उन्होंने मुख्यत: व्रज भाषा में श्रृंगार परक काव्य ही लिखा है । 'जीर्ण जनपद' उनकी प्रबन्ध रचना है । खडीबोली में लिखित काव्यों में 'आनन्द अरुणोदय' तथा 'मयंक महिमा' प्रमुख हैं ।

राधाचरण गोस्वामी (सन् १८५७ ई.-सन् १९२५ई.)

गोस्वामी जी संस्कृत के पंडित थे । आप पुराने ढंग के होते हुए भी स्वतंत्र विचार के थे । आप साहित्यिक भाषा के रुप में खडीबोली को इस्तेमाल करने के विरोधी थे । इनकी काव्य रचनाओं में 'नवभक्तमाल', 'भ्रमरगीत', 'बरहमासी' आदि का नाम उल्लेखनीय हैं । वृन्दावन से 'भारतेन्दु' नामक एक पत्र निकालकर हिन्दी साहित्य के नई दिशायें दिखाते रहे ।

पं. अम्बिकादत्त व्यास (सन् १८५८ ई.-सन् १९००ई.)

संस्कृत के सच्चे विद्वान और सनातन धर्म प्रवक्ता के रुप में आपका नाम गिना जाता है । 'अवतार मीमांसा', 'गद्य काव्य मीमांसा' जैसे कई रचनायें आपका है । सीधी सादी भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करने में आपको सफलता मिली । व्यास जी कवि, नाटककार तथा पत्रकार थे । आप 'पीयूष प्रवाह' नामक पत्रिका के संपादक रहे थे । व्रज भाषा के अच्छे कवि थे व्यास ।

भारतेन्दु युगीन काव्य के विकास में अन्य अनेक साहित्यकारों का भी योगदान है । 'बंगवादी',

'भारतमित्र' जैसे पत्रों के संपादक बाबु बालमुकुन्द गुप्त, विजयानन्द त्रिपाठी आदि कवियों ने इस युग में काव्य रचना की । यों भारतेन्दु युग में व्रज एवं खडीबोली भाषाओं में काव्यों का विकास हुआ । पद्य क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना अधिक होने लगा । जनजागृति के लिए रचनाएँ कैसे प्रयुक्त करना है, इसकी सूचना भारतेन्दु युगीन कवियों ने दिया । इस रूप में वे भावी कवियों के लिए मार्गदर्शक रहे। भारतेन्दु युगीन कवियों की सबसे बड़ी विशेषता प्राचीनता और नवीनता का समन्वय करने में है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य की विशेषतायें

राष्ट्रीयता

भारत के गौरवमान इतिहास पात्रों और अंग्रेज़ी विचारधारा से प्रेरणा लेकर भारतेन्दु युगीन कवियों ने जनमानस में राष्ट्रीयता की बीज बोने की कोशिश की । बाद के युगों के कवियों को देशभक्ति की भावना कविता के ज़रिए प्रकट करवाने की प्रेरणा इन्हीं कवियों ने दिया । 'हमारे उत्तम भारत देस' (राधाचरण गोस्वामी), 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' (भारतेन्दु) आदि कविताएँ देशभक्ति की प्रेरणा से ओतप्रोत है ।

सामाजिक चेतना

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने प्रथम बार जनसमस्याओं को साहित्य में अभिव्यक्त करने की कोशिश की । भारतीय अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए घरेलु उद्योगों पर कवियों ने ज़्यादा ध्यान दिया । इससे यह स्पष्ट होता है कि कवियों को युगीन समस्याओं की पूरी जानकारी थी । 'प्रबोधनी' नामक कविता में स्वयं भारतेन्दु जी ने विदेशी वस्तुओं की बहिष्कार करने की प्रार्थना की है । संपूर्ण राष्ट्र की अखण्डता और एकता का महत्व का प्रतिपादन उन्होंने किया ।

भक्ति भावना

भारतेन्दु युगीन कवियों को विरासत रूप में भक्ति भावना प्राप्त हुई थी । निर्गुण भक्ति, वैष्णव भक्ति, देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत कवितायें इस युग में अन्यत्र उपलब्ध है । श्री ललित रामायण, प्रेमधन का अलौकिक लीला, आनन्द अरुणोदय आदि के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं । रीतिकालीन कवियों के प्रभाव के कारण श्रृंगार वर्णन भी भारतेन्दु युगीन कवियों में दर्शनीय है ।

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन भारतेन्दुयुगीन काव्य का मुख्य विशेषता है । प्रकृति का वर्णन आलंबन और उद्दीपन के रूप में उन्होंने किया है । प्रकृति के सूक्ष्म दृश्यों का उल्लेखन भी कुछ कवियों ने किया है । ऋतुओं का वर्णन, नायक-नायिका की मनोदशाओं के रूप में करने की कोशिश इन कवियों ने किया है ।

हास्य-व्यंग्य

भारतेन्दु युग में हास्य-व्यंग्य श्रेणी में आनेवाली कई रचनाएँ हुई । समाज में प्रचलित अनाचारों, अन्धविश्वासों, विदेशी शासन आदि पर व्यंग्य करने में कवि हिचकते नहीं थे । प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं ।

कविता के क्षेत्र में मुक्तक रचनाओं को प्रधानता मिली । पारंपरिक काव्य शैली और नवीन काव्य शैली का समन्वय करके उन्होंने काव्य को और आकर्षक एवं मनचाहा बनाया । इस प्रकार नवजागरण की दृष्टि से इस युग का आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनन्य महत्व है ।

भारतेन्दु युग काव्य की दृष्टि से संक्रांति का युग है । भारतेन्दु युग के समस्त कवियों को तीन कोटियों में विभक्त किया जा सकताहै । प्रथम कोटि में उन कवियों को रखा जा सकता है, जो प्राचीन परंपरा पर ही चलते गए, आधुनिकता से उन्होंने अपने आप को अलग ही रखा । द्वितीय कोटि में उन कवियों को रखा जा सकता है जिन्होंने प्राचीनता से प्रारंभ किया और आधुनिकता पर समाप्त, इस कोटी के कवियों में भारतेन्दु, बदरीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । तीसरे वर्ग में वे कवि आते हैं, जिन्होंने अर्वाचीन ढंग की रचनाएँ प्रस्तुत की। इस वर्ग के प्रतिनिधि के रुप में बालमुकुन्द गुप्त आते हैं ।

भारतेन्दु युग के कवियों ने जन जीवन से विलग हो गए कविता को फिर से मिलाया । भारतेन्दु जी ने नई नई काव्य प्रणालियाँ खोज निकाली । इन कवियों में स्वदेशी प्रेम और हिन्दी प्रेम कूट कूट कर भरा है । हिन्दी, हिन्दु, हिन्दुस्तान प्रेम को इन कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रकट किया है । भारतेन्दु जी हिन्दी भाषा पर दिया व्याख्यान देखिए –

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' । भारतेन्दु 'रसा' नाम से, प्रेमधन 'अब्र' और प्रतापनारायण मिश्र 'बरहमन' नाम से उर्दू में लिखते थे ।

काव्य भाषा के रुप में खडीबोली को लाने का प्रयत्न इन कवियों ने किया । लोकगीतों की ओर कवियों का ध्यान गया और उस शाखा में भी विकास होने लगा । इस प्रकार जन जीवन से संपर्क होने के कारण लोग उनकी ओर आकृष्ट होने लगे । भारतेन्दु युग के अंतिम चरण में कविता की जीवनसमीपता और बढ़ गयी ।

भारतेन्दु युग के कवि नवीन विषयों पर दृष्टि डालने लगे । राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में नाना प्रकार के पहलुओं से युक्त जीवन का निरीक्षण और विश्लेषण करने का प्रयास इन्होंने किया । उनमें से राष्ट्रीयता को प्रमुख स्थान मिलना तो स्वाभाविक बात ही था ।

भारतेन्दु युग में सतसई-परंपरा, भ्रमरगीत परंपरा और लक्षणग्रंथ परंपरा का प्रचार हुआ । प्रकृति के विभिन्न रुपों के चित्रण में भी इन्होंने ध्यान दिया । स्वच्छन्द रुप में प्रकृति वर्णन करने की प्रथा धीरे धीरे बढ़ने लगे । काव्य भाषा को सरल, प्रवाहमयी एवं सजीव बनाने में भी वे सफल रहे ।

Unit - 7

खडीबोली उद्‌भव और विकास

खडीबोली से तात्पर्य उस भाषा से है जिसका प्रयोग हम आजकल साधारण व्यवहार में लिखने और बोलने के लिए करते हैं । मुसलमानों के आने के पहले इसका क्षेत्र दिल्ली और अजमेर के आसपास था । बोली के रूप में प्रयुक्त खडीबोली को प्रधानता क्यों मिली ? आम लोगों से संपर्क बनाये रखने के लिए उनकी भाषा खडीबोली को अपनाना परम अवयक था । इसलिए मुगल बादशाहों ने खडीबोली का प्रचार करवाने लगे । उनके साम्राज्य विकास के साथ साथ खडीबोली का भी विकास होने लगा ।

मुसलमानों ने इस भाषा में अरबी और फार्सी शब्दों को जोड़ दिया, और कुछ भारतीय आचार्यों ने इसमें संस्कृत शब्दों का समावेश किया । इस प्रकार खडीबोली को एक नया रूप प्राप्त हुआ । कथा और धार्मिक प्रवचनों में इनका प्रयोग होने लगा ।

खडीबोली पश्चिमी हिन्दी का एक महत्वपूर्ण बोली है । पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है । दिल्ली, मेरठ के निकटवर्ती क्षेत्र में ही खडीबोली बोली जाती है । इसे कौरवी, नागरी आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है । खडीबोली के दो रूप दिखाई देते है – दक्खिनी हिन्दी और उत्तरी हिन्दी । खडीबोली इस्लाम के दक्षिण प्रवेश के साथ दक्षिण में गयी और वहीं उसका साहित्यिक भाषा के रूप में विकास हुआ । 18वीं सदी के बाद बोलचाल के लिए प्रयुक्त भाषा के रूप से साहित्यिक भाषा के रूप में भी प्रयुक्त होने लगा । लोक व्यवहार की भाषा को प्रोत्साहन देने में फार्ट विलियम कॉलेज का महत्वपूर्ण योगदान रहा ।

खडीबोली व्रज और उर्दु से संघर्ष करते करते आगे बढ़ती रही । भारतेन्दु युग में खडीबोली गद्य भाषा के रूप में प्रयुक्त होनी लगी । द्विवेदी युग में गद्य व पद्य में प्रयुक्त होने लगी । इसके पश्चात् छायावाद युग में गद्य और पद्य दोनों का उत्कर्ष हुआ । आज खडीबोली हिन्दी जीवन के लगभग सारे क्षेत्रों में प्रवेश कर चुकी है । साहित्य की भाषा से भी ऊपर अब खडीबोली पहूँच चुकी है । स्वतंत्र भारत के संविधान में राष्ट्र भाषा का पद खडीबोली को ही प्राप्त हुआ ।

हिन्दी गद्य के विकास में ईसाइयों का देन

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही पद्य और गद्य की धारायें पृथक पृथक प्रवाहित होने लगीं । विदेशियों के भारत आगमन के समय व्रज भाषा का गद्य रूप और खडीबोली का गद्य रूप प्रचार में था । देश के जनसाधारण की भाषा को अपनाना उनका दिल अपनाना ही है – यह समझकर ईसाइयों ने खडीबोली को अपनाया । 'बाइबिल' का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया और आम लोगों में बाँटा । ईसाई मिशनरियों ने देश के विभिन्न भागों में पृथक पृथक संस्थाओं की स्थापना की । इन संस्थाओं ने धर्म की उपासना और सिद्धान्तों से संबन्धित अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में किया ।

'क्रिश्चियन लिटरेरी सोसायटी', 'किश्चियन वर्नाक्युलर एजुकेशनल सोसायटी' आदि सोसायटियों ने भी गद्य विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । 'धर्माधर्म परीक्षा', 'स्त्रियों का वर्णन', 'गुरु परीक्षा' आदि उनके द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण रचनायें है । 'दूतपत्रिका', 'मसीह महिला' आदि पत्रिकाओं का योगदान भी उल्लेखनीय ही है । अत्यन्त सरल और प्रवाहमयी भाषा होने के नाते लोग, इनकी ओर आकृष्ट हुए ।

ईसाइयों ने विद्यालयों की शिक्षा के लिए भूगोल, इतिहास, स्वास्थ्य आदि विषयों पर सचित्र ग्रन्थों का प्रकाशन किया । अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी गद्य विकसित और परिमार्जित होता जा रहा था । अपनी धर्म प्रचार के लिए इन्होंने देश के कोने कोने में मुद्रणालयों की स्थापना की, जो हिन्दी भाषा की प्रचार और प्रसार के लिए काफ़ी सहायक रही ।

ईसाई मिशनरियों के द्वारा देश के विभिन्न आँचलों में शिक्षा प्रसार के लिए बहुत से स्कूल तथा कॉलेज खोले गए,जहाँ पर नि:शुल्क शिक्षा के साथ भोजनादि की भी व्यवस्था रखती थी । उन विद्यालयों में जनभाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी । पादरियों द्वारा किये गये शिक्षण कार्य से शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति प्राप्त हुई । देशी भाषाओं का महत्व बढ़ा और खडीबोली हिन्दी का यथेष्ट विकास हुआ ।

हिन्दी खडीबोली और फार्ट विलियम कॉलेज

सन् १८०० ई. में माकिर्वस वेलेजली ने इस कॅलेज की स्थापना की । इस कॉलेज में अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दुस्तानी, बंगला, तेलुगु, अर्थ शास्त्र, गणित आदि विषयों की उचित शिक्षा की व्यवस्था की गई थी । इस कॉलेज की भाषा-नीति ईस्ट इन्डिया कंपनी की भाषा-नीति से अभिन्न रही है । हिन्दी खड़ीबोली के विकास में फार्ट विलियम कॉलेज का बहुत बड़ा स्थान है ।

हिन्दी खडीबोली के विकास में कॉलेज के लल्लू लाल, सदल मिश्र, गंगा प्रसाद शुक्ल, नरसिंह, सच्चिदानन्द, ख्यालीराम, दीनबन्धु, शेषशास्त्री आदि पंडितों के नाम उल्लेखनीय हैं । इन पंडितों ने भाषा में सरलता, सरसता, माधुर्य और ओज लाने की कोशिश की । लल्लु जी लाल की 'प्रेम सागर' यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है । कंपनी के सिविल सर्वेंट्स को तैयार करने के लिए इस कॉलेज की स्थापना की थी । इसके साथ साथ कॉलेज के वरिष्ठ अध्यापकों ने देश भाषा में पाठ्यपुस्तकें, कोश और व्याकरण तैयार करने लगे, तो भारतीय भाषाओं का विकास भी होने लगा ।

आर्यसमाज का प्रभाव

ईसाइयों के व्यापक और संघटित धर्मप्रचार से हिन्दुओं में भी उत्साह जागा । स्वामी दयानन्द जी आर्य समाज के माध्यम से हिन्दुओं को संघटित करने का प्रयत्न किया । गुजराती होते हुए भी वह हिन्दी को प्रचार का माध्यम बनाया । उसने हिन्दी में 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ भी लिखा । वैदिक धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रचारार्थ सन् १८७५ ई. में बंबई में दयानन्द जी ने इस संस्था की स्थापना की ।

आर्यसमाज ने स्वभाषा, स्वधर्म, स्वदेश एवं स्वराज्य के लिए व्यापक आन्दोलन किया । दयानन्द जी अपनी भाषण हिन्दी में ही देते रहे । इसलिए ही आर्यसमाज को अखिल भारतीय व्यापकता प्राप्त हुई । आर्य समाज के सदस्यों के लिए हिन्दी भाषा की जानकारी अनिवार्य था । हिन्दी

प्रचार के लिए उन्होंने साप्ताहिक सत्संग की भाषा हिन्दी बनायी । हिन्दी पुस्तकों एवं पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन जैसे महत्वपूर्ण कार्य उन लोगों ने किया ।

शिक्षण संस्थाओं में शिक्षण का माध्यम हिन्दी बनाने में भी आर्य समाज अग्रगामी बना रहा । समस्त भारत में नारी शिक्षा की पक्की नींव यों पड़ी । भारत के बाहर भी हिन्दी की प्रचार करने के लिए आर्य समाज के सदस्य तैयार थे । स्वामी दयानन्द सरस्वती के अलावा भाई परमानन्द, लाला लजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द आदि नेताओं ने हिन्दी की अमूल्य सेवा की । उन्होंने मन, वाणी और कर्म से जो हिन्दी सेवा की उससे हिन्दी भाषा को नव जीवन मिला । आर्य धर्म प्रचार के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा उनके अनुयायियों द्वारा अपनायी जाने के कारण खडीबोली का सर्वांगीण विकास का पथ प्रदर्शित हुआ ।

नागरी प्रचारिणी सभा

राष्ट्रभाषा हिन्दी के देशव्यापी प्रचार के उद्देश्य से सन् १८९३ ई. में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना काशी में हुई । बाबु श्यामसुन्दर दास, पं. रामनारायण मिश्र जैसे मनीषियों के संरक्षण में पले यह सभा भाषा के प्रचार प्रसार करते रहे । पं. अंबिकादत्त व्यास, श्रीधर पाठक जैसे मनीषियाँ भी इस सभा के सदस्य बने । हिन्दी भाषा तथा साहित्य के इतिहास लेखन, कोश निर्माण, प्राचीन पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियों की खोज आदि में सभा ध्यान दिया । सभा के प्रयासों के फलस्वरूप तत्कालीन उत्तरप्रदेश सरकार ने अदालती कामकाजों में नागरी को भी मान्यता प्रदान की । सभा की ओर लोग ज़्यादा आकृष्ट होने के लिए यह घटना पर्याप्त ही रहा । 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' तत्कालीन पत्रिकाओं में प्रमुख स्थान निभानेवाला था । 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो' जैसे कई ग्रंथों के प्रकाशन सभा ने किया । इस प्रकार हिन्दी भाषा के प्रचार में सभा अपनी योगदान देते रहे।

ब्रह्मसमाज

समसामयिक विचारों के प्रचार तथा समाज के पुनर्गठन के लिए सन् १८२८ ई. में कलकत्ता में ब्रह्मसमाज की स्थापना की । हिन्दु धर्म में व्याप्त कुरीतियों को हटाना समाज का मुख्य उद्देश्य था। राष्ट्रीय भावना को जागृत करने और राजनीतिक चेतना को गतिशील बनाने के लिए विचारों का आदान प्रदान होना ज़रूरी था । इसके लिए उनको अखिल भारतीय संपर्क भाषा हिन्दी का आश्रय लेना पड़ा । राजाराम मोहन राय स्वयं हिन्दी में लिखते थे और दूसरों को भी प्रोत्साहित करते थे । सन् १८२६ई. में 'बंगदूत' नामक पत्र उन्होंने निकाला, उसमें एक पृष्ठ खडीबोली के लिए दिया गया था ।

मोहन राय के हिन्दी प्रेम का प्रभाव उनके अनुयायियों पर भी पड़ा । नवीनचन्द राय ने एन् १८६७ ई. में 'ज्ञान प्रदायिनी' नामक पत्र लाहोर से निकाला । लोगों को ब्रह्म समाज की ओर आकृष्ट करने में इसका बड़ा योगदान रहा । मोहन राय और उनके साथियों के मार्ग को अपना करके देश के अन्य संस्थाओं और नेताओं ने देश में हिन्दी का व्यापक प्रचार किया ।

राजनीतिक जागृति

भारतीय राजनीतिक जागृति का आरम्भ सन् १८५७ई. के स्वातंत्र्य संग्राम से हुआ । इसके पश्चात् शासक-शासित के बीच अलगाव बढ़ने लगे । ए.ओ. ह्यूम द्वारा स्थापित नेशनल कांग्रेस

जनता के जुबान के रूप में आने लगे । इस संस्था ने हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दु की उन्नति के लिए अनेकानेक प्रयत्न किये । इनके प्रयत्न से हिन्दी राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त किया । इस संस्था ने जनता में देशभक्ति और राष्ट्रीयता का भाव जगाया । यह भावनायें जन को नयी नयी शैलियाँ मिली तथा शब्द शक्ति का विकास हुआ । अपने विचारों को जनमानस तक पहूँचाने के लिए उन्होंने हिन्दी गद्य का इस्तमाल किया । देशवासियों को एक कड़ी में बाँधने हिन्दी भाषा का प्रयोग करके नाशनल कांग्रेज़ हिन्दी भाषा के लिए बहुत बड़ी सेवा की ।

वैज्ञानिक आविष्कार

गद्य प्रचार में वैज्ञानिक आविष्कारों ने भी भारी योग दिया । प्रेस, रेल, तार आदि आविष्कार आने के साथ साथ जीवन की गति बढ़ने लगी । हिन्दी प्रेसों का प्रचार बढ़ने के साथ साथ खडीबोली गद्य भी उन्नति करती गयी ।

पश्चिमी साहित्य का प्रभाव

पश्चिमी साहित्य ने सबसे पहले बंगाली साहित्य को प्रभावित किया । बंगाली साहित्य हिन्दी में अनूदित होने के नाते पश्चिमी प्रभाव खडीबोली गद्य साहित्य में भी हुआ । शिक्षा नीति बदलने के कारण साहित्य में गद्य की विधाओं तथा शैलियों के नवीन रूप आने लगे । पश्चिम के संपर्क में आने के बाद नव शिक्षित भारतीय साहित्यकारों ने अपने अतीत के गौरव को जगाने के प्रयास करते रहे । नवनिर्माण की प्रेरणा इस प्रकार भारतीय साहित्य में आया । हिन्दी गद्य साहित्य पाश्चात्य प्रभाव को ज़्यादा अपनाया । लेखकों और पाठकों को यथार्थवादी दृष्टिकोण हो जाने के कारण उनकी ध्यान जीवन की वस्तुवादी क्षेत्र की ओर गई ।

राजनीतिक संस्थायें

अंग्रेज़ी की शोषण संबन्धी कूटनीति भारतीयों में राजनैतिक चेतना के विकास का कारण बना। 'ब्रिटीश इन्डियन असोसियेशन' (सन् १८५१ई.), 'इनडियन एसोसियेशन' (सन् १८७६ई.) जैसे संस्थायें लोगों के बीच काम करने लगे । सन् १८८४ई. में ए.ओ. ह्यूम ने 'इंडियन नाशनल यूनियन' नाम से एक राजनीतिक संस्था की स्थापना की, जो सन् १८८५ई. में 'इंडियन नाशनल कांग्रेस' नाम लिया । गाँधीजी कांग्रेज़ के नेतृत्व में आने के बाद हिन्दी भाषा के माध्यम से कांग्रेज़ की कामकाज चलाने लगे । इस प्रकार लोगों के बीच खडीबोली का खूब प्रचार होने लगा ।

खडीबोली गद्य का विकास

ईस्ट इंडिया कंपनी शासन पर आने के बाद राज्य व्यवस्था सुचारन रूप से चलाने, किसी भाषा का माध्यम आवश्यक था । उनके सामने तीन प्रमुख भाषायें थीं - अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी और लोक भाषायें । अंग्रेज़ी भाषा सिखाने ज़्यादा वक्त लगेगा, अरबी, फारसी पढ़ने कुछ लोग तैयार नहीं होंगे । ऐसी हाल में जनसाधारण में प्रचलित खडीबोली को विशेष ध्यान देने का निर्णय लिया गया। शिक्षा के विभिन्न विद्यालयों के द्वारा अंग्रेज़ी और देशी भाषाओं का प्रचार होने लगा ।

मुंशी सदासुख लाल (सन् १७४६ई. - सन् १८२४ई.)

आप दिल्ली के रहनेवाले एक भक्त आदमी थे । 'नियाज' आपका उपनाम था । उस समय

के हिन्दुओं की भाषा में आपने रचनायें की । इसके अलावा वे उर्दू-फारसी के अच्छे ज्ञाता और शायर थे । उन्होंने 'श्रीमद् भागवत' का अनुवाद 'सुख सागर' के नाम से किया है । स्वान्त सुखाय रचना करने के कारण इनकी भाषा में एक गति है ताल भी । 'मंतख्बूतवारीख' आपकी प्रमुख रचना है।

सैयद इंशा अल्ला खाँ

हिन्दी के पहले कहानीकार होने का श्रेय आपको मिला है । उनकी 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी भाषां की पहली कहानी है । हिन्दी भाषा का सुन्दर प्रयोग इसमें हुआ है । इसके माध्यम से सर्वप्रथम खड़ीबोली गद्य साहित्य में लौकिक श्रृंगारमय प्रेमाख्यानक परंपरा का सूत्रपात हुआ । घरेलु शब्दों का प्रयोग, मुहावरों का प्रयोग आदि आपकी विशेषतायें हैं ।

लल्लू जी लाल (सन् १७५६ई. - सन् १८२५ई.)

आग्रा के रहनेवाले गुजराती ब्राह्मण थे लल्लु जी लाल । सन् १८०० ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज में उनकी नियुक्ति हुई । 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी' जैसे ग्यारह कृतियाँ उनका है । श्रीमद् भागवद् के दशम स्कन्ध को आधार बनाकर 'प्रेम सागर' नामक रचना का निर्माण उन्होंने किया । वह हिन्दी गद्य क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखनेवाला है । व्रज मिश्रित खडीबोली का प्रयोग उनकी रचनाओं में हुआ है । बीच बीच में पद्य का प्रयोग उन्होंने किया है, फिर भी आप ने अपनी भाषा में सरलता, सहजता, माधुर्य, सरसता तथा प्रवाह लाने की कोशिश किया है ।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द'

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का जन्म सन् १८२३ ई. में हुआ था । उनकी प्रमुख रचनायें 'कबीर टीका', 'राजा भोज का सपना', 'मानवधर्मसार', 'उपनिषदसार' आदि हैं । व्यावहारिक उपयोग अधिक से अधिक किया जा सके - इसी उद्देश्य में उन्होंने गद्य का एक नया रूप प्रस्तुत किया।

राजा लक्ष्मण सिंह

राजा लक्ष्मण सिंह का जन्म सन् १८२६ ई. में तथा मृत्यु सन् १८९६ ई. में हुआ । संस्कृत, उर्दु आदि भाषाओं में शिक्षा घर पर ही हुई । उच्च शिक्षा उन्होंने आग्रा कॉलेज से प्राप्त की । सन् १८६७ ई. में उन्होंने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का हिन्दी अनुवाद 'शाकुन्तल' नाटक की रचना की । 'प्रजा हितैषी' (सन् १८६५ ई.) नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया । 'रघुवंश' का अनुवाद भी इन्होंने किया है । ब्रज, संस्कृत, उर्दु तथा अंग्रेज़ी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है ।

रामप्रसाद निरंजनी

हिन्दी का सर्व प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक होने का श्रेय निरंजनी जी को मिलता है । यह ख्याति उनको मिलने का कारण उनका लिखा हुआ 'भाषा योग वाशिष्ठ' ही है । इस रचना में हमें खडीबोली के विशुद्ध रूप का परिचय मिलता है ।

पं. राधाचरण गोस्वामी (सन् १८५९ई. – सन् १९२५ई.)

पं. राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु मंडल के प्रखर लेखक थे । भारतेन्दु जी को आदर्श बनाकर ही उन्होंने हरेक कदम रखा । खडीबोली को गद्य के क्षेत्र में प्रचार करने की कोशिश उन्होंने की । उसने लेखों, नाटकों, निबन्धों के माध्यम से खडीबोली गद्य में प्रखर और उग्र विचारवाली

अनेक रचनायें हिन्दी साहित्य को सौंपी । 'सुदामा नाटक', 'सती चन्द्रावली', 'अमरसिंह राटौर' जैसी चर्चित रचनायें उन्हीं का है । व्यंग्य को एक नया मोड़ देने में वह कामयाब रहे । डॉ. रामविलास शर्मा ने गोस्वामी जी के बारे में यों कहा है – "राधाचरण गोस्वामी अपने युग के सबसे उग्र विचारों के लेखक मालूम पड़ते हैं और अपने उग्र विचारों को प्रकट करने के लिए नए-नए ढंग खोज निकालने की प्रतिभा भी उनमें खूब दिखाई पड़ती है ।" विचारों में उग्रता, प्रहार की शक्ति, नपे-तुले शब्दों का प्रयोग आदि भी गोस्वामी जी के गद्य की खासियत है ।

सदल मिश्र (सन् १७६८ई. – सन् १८४८ई.)

फार्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों में प्रमुख था सदलमिश्र । 'चन्द्रावती', 'रामचरित्र' आदि आपकी प्रमुख रचनायें हैं । 'यजुर्वेद' के आधार पर 'कठोपनिषद' में वर्णित नचिकेत की कहानी का खडीबोली गद्य में रूपान्तर है 'चन्द्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' । बिहारी और बंगला भाषाओं का प्रभाव उनकी रचनाओं पर पड़ा है । भाषा को व्यवहारोपयोगी रूप प्रदान करने के लिए ढेर सारे काम मिश्र जी ने किया । 'रामचरित्र', 'अध्यात्म रामायण' का खडीबोली अनुवाद है । अपनी रचनाओं के ज़रिए खडीबोली के प्रचार करने की कोशिश मिश्र जी ने किया ।

खडीबोली साहित्य को जनम देने का श्रेय इन्हीं चारों को ही मिला है । इन चारों में से गद्य के प्रवर्तन का श्रेय किसको दिया जाय, इसके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यों कहा है – "..... आधुनिक हिन्दी का पूरा आभास मुंशी सदा सुख और सदलमिश्र की भाषा में ही मिलता है । व्यवहार रूपयोगी हिन्दी इन्हीं की भाषा में ठहरती है । इन दोनों में मुंशी सदासुख की साधु भाषा अधिक महत्व की है । अत: गद्य प्रवर्तन करनेवालों में उनका विशेष स्थान समझना चाहिए ।" हिन्दी साहित्य के दूसरा अध्येता डॉ. बच्चनसिंह ने महत्व की दृष्टि से इनका क्रम यों रखा है – सदासुखराय, सदलमिश्र, इंशा अल्ला खाँ और लल्लू लाल ।

Unit - 8

भारतेन्दुयुगीन गद्य विधायें

निबन्ध

निबन्ध रचना और गद्य के विकास का घनिष्ठ संबन्ध है । निबन्ध रचना केवल खडीबोली की विशेषता है । हिन्दी भाषियों की नई शिक्षा, प्रेस और समाचार पत्र के कारण निबन्ध का सूत्रपात हुआ । भारतेन्दु युग की निबन्ध रचनायें समाचार पत्रों की फाइलों में बिखरी पड़ी है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमधन, अम्बिकादत्त व्यास आदि अनेक लेखकों के नाम यहाँ स्मरणीय है । बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' में कई निबन्ध प्रकाशित होने लगे । 'ईश्वर क्या हो ठठोल है', 'पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर है' जैसे निबन्धों में भट्ट जी ने मानव जीवन पर सूक्ष्म दृष्टि डाली है ।

प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट ने निबन्ध-रचना कर हिन्दी गद्य शैली को नवीन रूप दिया । १८८३ में प्रकाशित 'ब्राह्मण' पत्र के ज़रिए मिश्र जी ने हिन्दी के प्रति रुचि उत्पन्न करने की कोशिश की । भारतेन्दु के द्वारा संपादित 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगसिन' आदि पत्रिकाओं में 'हिन्दी भाषा', 'मेला झमेला' जैसे लेख छपे थे । भारतेन्दु युग में सबसे अधिक सफलता निबन्ध लेखन को ही मिला । निबन्धों के सहारे जनता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण पैदा करने में तत्कालीन निबन्धकार सफल रहे ।

पत्र-पत्रिकायें

समाचार पत्रों के प्रकाशन से हिन्दी गद्य को बल प्राप्त हुआ । सन् १८२६ में जुगल किशोर ने कलकत्ता से 'उदंत मार्ताण्ड' नामक हिन्दी का प्रथम पत्र प्रकाशित किया । इसके बाद सन् १८५०ई. - सन् १८५१ई. में उन्होंने 'साम्यदन्त मार्ताण्ड' निकाला । दोनों पत्र आर्थिक पराधीनताओं के कारण जल्दी ही बन्द हो गये । उसके बाद श्यामसुन्दर सेन के संपादकत्व में सन् १८५४ई. में कलकत्ता से हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' प्रकाशित हुआ । सन् १८६८ई. में भारतेन्दु के 'कविवचन सुधा' नामक पत्र का जन्म हुआ । इस पत्र से हिन्दी साहित्य की उन्नती खूब हूई । सन् १८७३ ई. में भारतेन्दु जी ने 'हरिश्चन्द्र मैगसिन' या 'चन्द्रिका' भी निकाली ।

इसके बाद राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनों के करण हिन्दी में समाचार पत्रों का बाढ़ लग गया । समाज सुधारकों, हिन्दी प्रचारकों एवं राजनैतिक नेताओं ने अपने अपने मत का प्रचार और लोकमत को अपने पक्ष में करने के लिए समाचार पत्र निकाले । इनमें 'हिन्दोस्तान' (सन् १८८५ई.), 'हिन्दी पञ्च' आदि राजनैतिक; 'मित्र विलास' (सन् १८७७ ई.), 'धर्म प्रचारक' (सन् १८८५ ई.) आदि धार्मिक; 'क्षत्रिय पत्रिका' (सन् १८८१ ई.), 'अग्रवालोपकारक' (सन् १८८६इ.) आदि सामाजिक; 'कविवचन सुधा' (सन् १८९८ ई.), 'हरिश्चन्द्र मैगसिन' (सन् १८७३ ई.), 'हिन्दी प्रदीप' (सन् १८७३ ई.), 'आनन्द कादम्बिनी' (सन् १८८१ ई.), 'ब्राह्मण' (सन् १८८३ ई.), 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (सन् १८९७ ई.), सरस्वती' (सन् १९०० ई.) आदि साहित्यिक पत्रिकाओं के नाम उल्लेखनीय हैं ।

सन् १८९७ ई. में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन से हिन्दी पत्रिकाओं के इतिहास का स्वर्ण-युग आरम्भ होता है । साहित्य समालोचना, इतिहास, समाजशास्त्र आदि विषयों पर उसमें लेख आते रहे । शुरु में यह पत्र बनारस से निकला था । कार्तिकाप्रसाद, श्याम सुन्दरदास जैसे मनीषियाँ उसके संपादक मंडल में थे । महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके संपादक बनने के बाद प्रकाशन स्थान प्रयाग बन गया ।

इन पत्र पत्रिकाओं ने आधुनिक हिन्दी पत्रकार कला का बीज बोया ।

सरस्वती

खडीबोली हिन्दी को संस्कारी भाषा बनाने, साहित्य भाषा रूप सौष्ठव के प्रति अग्रसर करने में प्रयत्नरत पत्रिकाओं में सरस्वती पत्रिका का नाम सबसे ऊपर है । हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र के मील का पत्थर माननेवाली सरस्वती का जन्म सन् १९००ई. में हुआ । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय जागृति की भूमिका तैयार हो रहा था । राष्ट्रीय जागरण हिन्दी नवजागरण के लिए भी रास्ता तैयार किया । हिन्दी भाषा के उन्नयन की भावना एवं साहित्य विकास की आकांक्षा से ही 'सरस्वती' का जन्म हुआ ।

'सरस्वती' के संस्थापक एवं इंडियन प्रेस इलाहाबाद के संचालक चिंतामणी घोष, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू कार्तिक प्रसाद, जगन्नाथदास रत्नाकर, किशोरिलाल गोस्वामी तथा श्यामसुन्दर दास के संपादकत्व में यह पत्रिका निकली । सन् १९०१ ई. में बाबू श्यामसुनदर दास 'सरस्वती' के एकमात्र संपादक नियुक्त हुए । उनके बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक हुए। सन् १९०३ ई. से सन् १९२० ई. तक वे संपादक के पद में कर्मरत रहे । उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से खडीबोली कविता, आत्मकथा, जीवनी और पुस्तक समीक्षा का स्वरुप विकसित किया ।

विषय वैविद्य और नवीनता 'सरस्वती' का प्रमुख गुण था । लोग इनकी ओर आकृष्ट होते रहे। स्वाधीनता आन्दोलन के यज्ञ में लोगों के दिलों में आत्मगौरव, आत्मविश्वास और आत्मावलंबन की भावना बढ़ाने में सक्रिय योगदान देते रहे । द्विवेदी युग के कतिपय लेखक 'सरस्वती' के कारण ही आगे बढ़े । द्विवेदी जी के बाद पदुमलाल पुन्नालाला बक्शी 'सरस्वती' के मुख्य संपादक बने ।

भाषा के लिए 'सरस्वती' की सहयोग यह था कि वह भावी लेखकों की फौज तैयार की । 'सरस्वती' हिन्दी की पहली ऐसी पत्रिका थी जिसने लेखकों को पारिश्रमिक देना शुरु किया। व्याकरण सम्मत भाषा के प्रचार एवं खडीबोली पद्य के विकास संबन्धी देन के प्रति समस्त हिन्दी जगत में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका का चिर ऋणी रहेगा ।

हिन्दी प्रदीप

भारतेन्दु युग के प्रमुख लेखक पं. बालकृष्ण भट्ट ने सितंबर सन् १८७७ ई. में इलाहाबाद से मासिक पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन प्रारंभ किया । इस पत्रिका के प्रकाशन का प्रारंभिक उद्देश्य हिन्दी का प्रचार प्रसार था । अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी विरोधी संघर्ष की गाथा 'हिन्दी प्रदीप' के पन्नों पर फैलकर पूरी देश में लहर उठाते रहे । भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के दिशादर्शी के रूप में भी वे कार्यरत रहे । लार्ड लिटन का वर्नाकुलर प्रेस आक्ट पास होने के बाद 'हिन्दी प्रदीप' छापने में कई दिक्कतें आने लगी । सरकार की आँखों का काँटा बनने के कारण पत्र छापने वाले मुद्रणालयों

को सरकार आतंकित करती रही । इसी बीच 'हिन्दी प्रदीप' में माधव शुक्ला की 'बम क्या है' शीर्षक कविता आयी । अंग्रेज़ सरकार ने इस कविता को अपने लिए घातक समझा । इस पर सरकार उनको ३,००० रुपये की जमानत माँगी । भट्ट जी जमानत नहीं दी और 'हिन्दी प्रदीप' सदा के लिए बंद हो गया ।

जातीय अस्मिता, समाज सुधार और हिन्दी उद्धार का पत्र था 'हिन्दी प्रदीप'। इसलिए समाज के रईसों के लिए भी वह शत्रु बना । 'हिन्दी प्रदीप' स्वभाषा प्रेम, राष्ट्रीय चेतना का संवाहक आदि बनकर हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास को उज्वल बना दिया । हिन्दी की व्यावहारिक समीक्षा का जन्म 'हिन्दी प्रदीप' से हुआ ।

ब्राह्मण

हिन्दी के प्रचार प्रसार हेतु २५ मार्च सन् १८८३ई. को कानपूर से प्रतापनारायण मिश्र के संपादकत्व में 'ब्राह्मण' का प्रकाशन हुआ । साहित्य और पत्रकारिता के रिश्ते को बढ़ावा देकर हिन्दी पत्रकारिता को सामयिक युग के अनुरूप बनाने की प्रवृत्ति मिश्र जी करते रहे । 'ब्राह्मण' में आये लेख का यह अंश इसका सबूत है – "..... अपने यजमानों का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा, कभी राज्य संबन्धी विषय सुनावेंगे, कभी कभी गद्य-पद्यमय काव्य-नाटक से भी रिझायेंगे ।"

'ब्राह्मण' ने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कूरीतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए । भारतेन्दु, राधाकृष्णदास, श्रीधर पाठक जैसे लेखकों के साथ साथ नवोदित लेखक भी अपनी रचनाओं से 'ब्राह्मण' को समृद्ध किया । आर्थिक अभावों से विमुक्त नहीं हो पाने के कारण मिश्र जी 'ब्राह्मण' से विदा माँग ली । उनके बाद बाबू रामदीन के संरक्षण में 'ब्राह्मण' निकला । इसका अंतिम अंक फरवरी सन् १८९७ई. में प्रकाशित हुआ ।

समालोचना

समालोचना साहित्य में सौन्दर्य के अस्तित्व का खोज निकालनेवाला है । आधुनिक समालोचना का जन्म पत्र-पत्रिकाओं द्वारा ही हुआ । 'कविवचन सुधा' (सन् १८९८ ई.) और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (सन् १८७३ ई.) में समालोचना का प्रारंभिक रूप दृष्टव्य है । भारतेन्दु जी ने 'मुद्राराक्षस' (सन् १८७८ ई.) की भूमिका, 'नाटक' (सन् १८८३ ई.) एवं अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री की परीक्षा करके समालोचना के क्षेत्र में मार्ग प्रदर्शन किया । उस ज़माने की समालोचना मुख्यत: लेखकों की कृतियों की प्रशंसा मात्र ही था ।

समालोचना का थोड़ा और विकसित रूप भारतेन्दु जी के मृत्यु के बाद मिलता है । लाला श्रीनिवास दत्त कृत 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की आलोचना श्री बालकृष्ण भट्ट ने किया । प्रेमघन ने भी उस नाटक की विस्तृत आलोचना किया है । इसके बाद उल्लेखनीय समालोचना महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' (सन् १८६५ ई.) है ।

नागरी प्रचारणी पत्रिका (सन् १८९७ ई.) के प्रकाशन के बाद हिन्दी समालोचना क्षेत्र को एक नया मोड मिला । समालोचना संबन्धी लेख उसमें आने लगे । श्यामसुन्दरदास खत्री द्वारा लिखित 'भारतवर्षीय आर्यदेश भाषाओं का प्रादेशिक विभाग और परस्पर संबन्ध' इस कोटी में आनेवाला लेख

CUP/181/08/500/SDE-5

ही है । साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालनेवाला पहला लेख गंगा प्रसाद अग्निहोत्री कृत 'समालोचना' (सन् १८९७ ई.) था । हिन्दी में समालोचना की प्रथा, समालोचक का ज्ञान, सहृदयता आदि विषयों के बारे में इसमें विचार विमर्श किया गया था । वह आलोचक को हंस की तरह नीरक्षीर-विवेकसंपन्न तथा सत्-असत् पक्ष के अभिज्ञान के परिचित व्यक्ति मानते रहे । उनके अनुसार वह साहित्य का पथ प्रदर्शक था ।

प्रताप नारायण मिश्र नैतिकता के प्रबल पक्षपाती थे । भाषा की दृष्टि से वे कवियों की स्वतंत्रता के समर्थक थे और विवेचनात्मक साहित्य की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए वे गद्य को अधिक उपयुक्त समझते थे । बाल मुकुन्द गुप्त ने भी आलोचना के क्षेत्र में पर्याप्त योगदान दिया था । उनकी आलोचना का श्रीगणेश कतिपय पाश्चात्य एवं पौरस्त्य लेखकों की जीवनी से हुआ ।

इन सभी प्रयत्नों को मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग में आधुनिक हिन्दी आलोचना का सूत्रपात हो चुका था ।

नाटक

भारतेन्दु-काल में नाटकों का भी सर्वतोमुखी विकास हुआ । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, श्री राधाचरण गोस्वामी, पंडित बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास, पंडित प्रतापनारायण मिश्र आदि इस समय के प्रमुख नाटककार माने जाते हैं । डॉ. शिवकरण सिंह जी ने यों कहा है कि इनके प्रयत्न से नाट्य साहित्य के क्षेत्र में निम्नांकित विचारधाराओं का आविर्भाव हुआ :

१. पौराणिक विचारधारा
२. ऐतिहासिक धारा
३. राष्ट्रीय धारा
४. समस्या प्रधान धारा
५. प्रेम प्रधान धारा
६. प्रहसन धारा

मौलिक नाटकों के साथ साथ संस्कृत, बंगला और अंग्रेज़ी से अच्छे नाटकों का अनुवाद भी हुआ। इस काल के पूर्वार्ध में श्रृंगार प्रधान नाटकों का और उत्तरार्ध में देश और जाति की समस्याओं को आधार बनाते रचे गए नाटकों का बाहुल्य रहा ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटककार होने का गौरव प्रप्त है । हिन्दी नाटक साहित्य के उद्भव और विकास में भारतेन्दु का योगदान अमूल्य ही है । वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति (सन् १८७३ ई.), सत्य हरिश्चन्द्र (सन् १८७५ ई.), अंधेर नगरी (सन् १८८१ ई.), नीलदेवी (सन् १८८१ ई.), सती प्रताप (सन् १८८४ ई.), भारत दुर्दशा (सन् १८८० ई.) आदि आपके प्रमुख नाटक हैं । ऊपर सूचित विचारधाराओं का प्रभाव भारतेन्दु के नाटकों में भी शामिल हुआ था।

भारतेन्दु काल में नाटकों की रचना का उद्देश्य मनोरंजन के साथ साथ ही जन-मानस को जागृत करना भी था। पौरस्त्य नाट्यशास्त्र और पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का प्रभाव नाटकों में विद्यमान था। पाश्चात्य पद्धति के अनुसार दुःखान्त नाटक लिखने की प्रथा स्वयं भारतेन्दु जी ने ही किया था ।

भारतेन्दु की प्रेरणा और चमत्कारिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कई नाट्य रचनाकार आये । इस प्रकार नाटक के क्षेत्र में भारतेन्दु मंडल तैयार हो गया । भारतेन्दु मंडल के नाटककारों ने भारतवासियों में उनके प्राचीन तथा सांस्कृतिक गौरव एवं नैतिक चेतना को उद्‌बुद्ध कर उन्हें देश की स्वतंत्रता तथा सांप्रदायिक एकता की ओर अग्रसर किया । भारतेन्दु मंडल के नाटककारों के बारे में अब हम विचार विमर्श करेंगे ।

पं. बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु मंडल के प्रमुख हस्ताक्षर रहे हैं । 'शर्मिष्ठा', 'पद्‌मावती', 'चन्द्रसेन', 'बृहन्नला' आदि आपके प्रमुख नाटक हैं । गुलाम देश की मानसिकता न बदलें यह सोचते हुए विदेशी शासन ने भारत में शिक्षा और ज्ञान के विकास-प्रसार के लिए कई अवरोध खड़े किये । 'राजदूत' नामक नाटक में आपने इस तथ्य का पर्दाफाश किया है । देश की वर्तमान दुरवस्था के कारण के बारे में आपने यों बताया है कि इसका मूल कारण तो अपने विगत, उज्वल गरिमामय रूप को भूलना ही है । अपने नाटकों के ज़रिए अतीत का आश्रय लेकर नाटककार भारतीयों को आत्मगौरव का पाठ सिखाना चाहता है । 'बृहन्नला' नामक नाटक में स्वराज्य प्राप्ति की इच्छा भारतीय मन में जगाने की कोशिश की है ।

भारतेन्दु के रचनात्मक धर्म का पालन करनेवालों में राधाकृष्णदास का नाम उल्लेखनीय है । भारतेन्दु जी के अधूरे नाटक 'सती प्रताप' को इन्होंने ही पूरा किया । 'दुःखिनी बाला', 'महारानी पद्‌मावती', 'धर्मालाप' एवं 'महाराणा प्रताप' इनके मौलिक नाटक है । युग की राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत भारतीय जीवन के गौरवपूर्ण अतीत के चित्रण एवं राष्ट्रीय मुक्ति की तड़प को व्यक्त करनेवाले थे उनके नाटक ।

'श्रीदामा', 'सती चन्द्रावली' एवं 'अमरसिंह राठौर' नाटकों के रचयिता राधाचरण गोस्वामी जी भी युग दशा के प्रति अपना विचार रचनाओं में चित्रित किया है । भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि नाटककार के रूप में जाननेवाले नाटककार है प्रतापनारायण मिश्र । 'संगीत शाकुन्तलम', 'भारत दुर्दशा रूपक' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं । हिन्दी के सर्वप्रथम दुःखान्त नाटक 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' के रचयिता लाला श्रीनिवासदत्त भारतेन्दु मंडल के सबल नाटककार थे । 'तप्ता संवरण', 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'प्रह्लाद चरित' उनके ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटक है ।

राष्ट्रीय जागरण के इस युग में नाटककारों ने देश और समाज के प्रति अपने दायित्वों को पहचानने की कोशिश की है ।

उपन्यास

डॉ. नगेन्द्र जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में यों लिखा है – "भारतेन्दु युग में उपन्यास रचना की प्रेरणा बंगला और अंग्रेज़ी उपन्यासों से हुआ था ।" भारतेन्दु युग में ही हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास परीक्षागुरु (श्रीनिवासदास रचित सन् १८८२ ई.) प्रकाशित हुआ । इस युग में मुख्यतः तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी तथा रोमानी उपन्यासों की रचना हुई । परीक्षागुरु उस समय का उपन्यास है जब खडीबोली का गद्य, साहित्यिक रूप लेने का प्रयत्न कर रहा था ।

हिन्दी में उपन्यास के अभाव अनुभव करने के कारण स्वयं भारतेन्दु जी ने ही उपन्यास लेखन का काम किया था । सन् १८७९ई. के 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित 'एक कहानी कुछ आप बीती

कुछ जग बीती' भारतेन्दु जी का पहला मौलिक उपन्यास था, साथ ही साथ हिन्दी का पहला अधूरा मौलिक उपन्यास होने का श्रेय भी इसी को प्राप्त हुआ है । कुछ आलोचक इसको उपन्यास मानता नहीं है । इसके अलावा 'हमारी हठ', 'एक खेल' आदि उपन्यास भी आपका हैं । डॉ. रामविलास शर्मा ने यों कहा है "उनकी प्रतिभा जिस बुलन्दी पर उपन्यासों में दिखाई देती है उस बुलन्दी पर नाटकों और निबन्धों में भी नहीं दिखाई देती ।"

भारतेन्दु के बाद उपन्यास लेखकों में दूसरा अमर नाम पं. बालकृष्ण भट्ट का है । उनके 'रहस्यकथा' नामक उपन्यास एक साथ ही पारिवारिक, जासूसी और सामाजिक उपन्यास है । मौलिक उपन्यास के साथ साथ अन्य भाषाओं से अनुवाद भी आते रहे । बाबू गदाधर सिंह ने बंकिमचन्द्र की 'दुर्गेशनन्दिनी' और रमेशचन्द्र दत्त के 'बंगविजेता' का अनुवाद किया । स्वयं भारतेन्दु जी ने भी 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश', 'राजसिंह' जैसे उपन्यास बंगला से हिन्दी में अनूदित किया । उन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक उपन्यासों की रचना की ओर ध्यान दिया ।

लाला श्रीनिवासदास के बाद राधाकृष्णदास जी ने सन् १८८१ई. में गोवध की समस्या को लेकर 'नि:सहाय हिन्दु' नामक उपन्यास की रचना की । इसमें लेखक ने हिन्दु-मुसलमान की उस मनोवृत्ति को दिखाने की कोशिश की है, जिससे पाकिस्तान के निर्माण में सहायता मिली । पं. अंबिकादत्त व्यास कृत 'आश्चर्यवृत्तान्त' भारत के वर्तमान और अतीत की झाँकी प्रस्तुत करता है । पं. माधवप्रसादमिश्र जी ने यों कहा है – "भारतेन्दु जी ने हिन्दी भाषा की मनोहर मूर्ती बनायी, मिश्रजी ने उसकी प्रतिष्ठा की और व्यास जी ने पूजा ।"

पं. बालकृष्ण भट्ट भारतीय राष्ट्रीयता और प्रादेशिक उपन्यास के जन्मदाता के रूप में माने जाते हैं । 'गुप्त वैरी', 'उचित दक्षिणा' आदि उनके प्रमुख उपन्यास है । 'नूतन ब्रह्मचारी' (सन् १८८६ ई.) नामक उपन्यास में एक बालक के रूप-गुण से प्रभावित होनेवाले डाकू का परिवर्तन दिखाया गया है। आधुनिक नागरिक सभ्यता के प्रति उनकी घृणा 'सौ अजान एक सुजान' (१८९०-९१) नामक उपन्यास में चित्रित किया है । लघु उपन्यास की परंपरा का सूत्रपात भी आपने ही किया ।

भारतेन्दु युगीन उपन्यासकारों में देवकीनन्दन खत्री के नाम भी उल्लेखनीय है । उनके अलौकिकप्रतिभा के बल पर उन्होंने तिलस्म और ऐयारी को मोहक बनाया । हिन्दी में 'चन्द्रकान्ता' (सन् १८८२ ई.) सर्वाधिक लोकप्रिय और 'चन्द्रकान्तासंतती' (सन् १८९६ ई.) सर्वाधिक विशालाकाय उपन्यास है । प्रेम, संघर्ष, ऐयारी और तिलस्म रूपी चार स्तंभों पर खत्रीजी की रचना का शामियाना खड़ा किया गया । 'नरेन्द्रमोहिनी' (सन् १८९३ ई.), 'वीरेन्द्रवीर '(सन् १८९५ ई.) और 'कुसुमकुमारी' (सन् १८९९ ई.) भी उनके प्रमुख उपन्यास थे । हरेकृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' का नाम भी उल्लेखनीय है । तिलस्मी ऐयारी उपन्यास सामान्य जनता में खूब लोकप्रिय हुए थे ।

इस युग में जासूसी उपन्यासों का भी श्रीगणेश हुआ था । हिन्दी जासूसी उपन्यास के पिता के रूप में गोपालराम गहमरी जाने जाते हैं । उनकी आँखों ने हिन्दी उपन्यास की तीन पीढ़ियाँ देखी । 'अद्‌भुत लाश' (सन् १८९६ ई.), 'गुप्तचर' (सन् १८९९ ई.), 'बेकसूर की फाँसी' (सन् १९०० ई.) आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं ।

हिन्दी उपन्यास के इतिहास में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम भी स्मरणीय है । नाटक के क्षेत्र में जो स्थान भारतेन्दु को मिला था वही स्थान उपन्यास के क्षेत्र में उनको मिला । वे उन थोड़े से उपन्यासकारों में हैं जिनमें आत्मनिष्ठता के साथ-साथ वस्तुनिष्ठता रहती है । उनका पहला उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' (सन् १८९० ई.) रोमानी उपन्यास के अंतर्गत आनेवाला है । गोस्वामी जी ने उपन्यास को मनोरंजन का साधन मानकर ग्रहण किया और उसके समाज सुधार का माध्यम बनाया।

रोमानी उपन्यासकारों में ठाकूर जगनमोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न' (सन् १८८८ ई.) का नाम उल्लेखनीय है । राधाचरण गोस्वामी गीति उपन्यास के जन्मदाता है ।

भारतेन्दुकालीन लेखकों ने मौलिक, अर्ध मौलिक और अनूदित उपन्यास लिखकर आधुनिक युग के लिए उपयुक्त गद्य शैली का विकास किया । उपन्यास जगत के पिता होने के साथ साथ वे स्वयं गंभीर लेखक भी थे । विवेच्य काल के गंभीर लेखकों ने उपन्यास को कविता और नाटक की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया । इस काल के उपन्यासों की भाषा के तीन रूप प्राप्त होते हैं । प्रथम तो संस्कृत निष्ठ हिन्दी है, जिसमें संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है जैसे देवीप्रसाद शर्मा के उपन्यासों में, द्वितीय संस्कृत से प्रभावित हिन्दी जैसे भारतेन्दु जी, पं. बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी आदि की कृतियों में और तीसरे बोलचाल की प्रवाहपूर्ण भाषा जैसे देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में ।

लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय जी ने भारतेन्दुकालीन उपन्यास साहित्य को चार भागों में बाँटा है । पहला सामाजिक उपन्यास, दूसरा नीति और शिक्षा संबन्धी उपन्यास, तीसरा तिलस्मी और जासूसी उपन्यास और चौथा ऐतिहासिक उपन्यास । पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति से समाज को रोकने का काम तत्कालीन लेखकों ने किया ।

कहानी

आलोच्य युग में आधुनिक कलात्मक कहानी का आरंभ नहीं हुआ था । हिन्दी कहानियों का प्रारंभ सभी इतिहासकारों ने 'सरस्वती' के प्रकाशन से माना है । मुंशी नवलकिशोर द्वारा संपादित 'मनोहर कहानी' (सन् १८८० ई.), अंबिकादत्तव्यास कृत कथा 'कुसुम कलिका' (सन् १८८८ ई.), राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कृत 'वामा मनोरंजन' (सन् १८८६ ई.), और चण्डीप्रसाद सिंह कृत 'हास्य रत्न' (सन् १८८६ ई.) आदि तत्कालीन कहानी माने जाते हैं ।

कुछ आलोचकों ने इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की सर्व प्रथम कहानी माना है । किन्तु यह सत्य है कि उसमें आधुनिक कहानी के तत्व नहीं मिलता । लक्षण युक्त कहानियों का वास्तविक प्रारंभ प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' से होता है । शेक्सपियर के कहानियों का अनुवाद इसमें आने लगे । इस प्रकार आधुनिक कहानियों का प्रारंभिक रूप इन अनूदित रचनाओं में स्पष्ट हुआ । जून सन् १९०० ई. में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित हिन्दी की सर्व प्रथम मौलिक कहानी 'इंदुमती' सरस्वती में प्रकाशित हुई । इसमें इतिहास और कल्पना का अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ है ।

आधुनिक युग के प्रवर्तक के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कहानी साहित्य का भी प्रवर्तन किया । 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नामक कहानी में वह सामाजिक जीवन की

पृष्ठभूमि में मानव मनोवृत्ति का विश्लेषण किया है ।

'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' नामक कहानी भी आपकी है, जो कल्पना तत्व प्रधान रचना माना जाता है । भारतेन्दु के पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द भी 'राजा भोज का सपना' नामक कल्पना प्रधान गद्यात्मक रचना प्रस्तुत कर चुके थे । राधाचरण गोस्वामी ने भी 'यमपुर की यात्रा' नामक कल्पना तत्व प्रधान कहानी प्रस्तुत की । किशोरीलाल गोस्वामी जी ने 'इंदुमती' नामक कल्पित कहानी की रचना की । इतिहास और कल्पना का सम्यक सम्मिश्रण भारतेन्दु युगीन कहानी साहित्य की प्रमुख विशेषता है ।

केशव प्रसाद मिश्र का 'आपत्तियों का पहाड', कार्तिकप्रसाद खत्री का 'दामोदर राव की आत्म कहानी', गिरिजादत्त वाजपेयी का 'मैं छोटी बहू', गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का 'सच्चाई का शिखर' आदि कहानियों के नाम भी उल्लेखनीय ही हैं ।

लोक साहित्य, जातक साहित्य आदि की पृष्ठभूमि पर आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य की रचना आरंभ हुई । 'सरस्वती', 'इंदु' आदि पत्र पत्रिकायें हिन्दी कहानी की बढ़ौती में योगदान दिया । समाज में प्रचलित अनाचारों एवं अत्याचारों का जीता जागता चित्रण इन्होंने किया । सामाजिक व्यवस्था में तीव्रगति से आये परिवर्तनों का आभास भी इस युग के कहानियों में ज़रूर मिलेंगे ।

इन प्रमुख गद्य साहित्य विधाओं के साथ साथ जीवनी साहित्य, ज्ञान का साहित्य आदि की भी पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हुई । यात्रावृत्त लेखन की दिशा में भी भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों ने योग दिया ।

भारतेन्दु युग में हिन्दी गद्य का स्वरूप स्थिर हुआ । हिन्दी के प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं का सूत्रपात इस युग में हुआ और खासकर निबन्ध और नाटक लेखकों ने अभूतपूर्व सफलता हासिल की । भाषा और साहित्य एक साथ सो रहे समाज को जगाने की प्रवृत्ति में तल्लीन रहे । राष्ट्र और समाज के प्रति अटूट आस्था रखनेवाले साहित्यकारों का अदम्य उत्साह हिन्दी के विशाल महल के बुनियाद ठीक प्रकार बनवाने में मदद दी । उस बुनियाद के ऊपर पत्थर लगाकर उसको आकर्षक बनाने का काम अपने पीछे आनेवाले पीढ़ियों को सौंपकर वे काल यवनिका के पीछे छिप गए ।

कहानी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	– एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती, एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न
राधाचरण गोस्वामी	– यमपुर की यात्रा
किशोरीलाल गोस्वामी	– इंदुमती
केशवप्रसाद सिंह	– आपत्तियों का पहाड
कार्तिकप्रसाद खत्री	– दामोदर राव की आत्म कहानी
बंग महिला	– कुम्भ में छोटी बहु, दान प्रतिदान

उपन्यास

भारतेन्दु	– एक खेल, हमारी हठ
श्रद्धाराम फुल्लौरी	– धर्म रक्षा, भाग्यवती, तत्व दीपक
श्रीनिवास दास	– परीक्षा गुरु
बालकृष्ण भट्ट	– नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान, रहस्य कथा आदि
जगमोहन सिंह	– श्यामा स्वप्न
राधाकृष्ण दास	– निस्सहाय हिन्दु
राधाचरण गोस्वामी	– विधवा विपत्ति, कल्पलता
अम्बिकादत्त व्यास	– श्यामा स्वप्न, आश्चर्य वृत्तान्त
देवव्रत	– सच्चा मित्र
देवकीनन्दन खत्री	– नरेन्द्र मोहिनी, चन्द्रकांता, चन्द्रकांता संतती
बालमुकुन्द वर्मा	– कामिनी, गुलाब, मालती

कविता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	– प्रेम-मालिका, प्रेम-सरोवर, वर्षा विनोद, प्रेम फुलवारी आदि
बदरीनारायण चौधरी	– जीर्ण जनपद, अनन्द अरुणोदय, मयंक महिमा, अलौकिक लीला, वर्षा बिन्दु, लालित्य लहरी आदि
प्रतापनारायण मिश्र	– प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, श्रृंगार विलास आदि
अम्बिकादत्त व्यास	– पावस पच्चासा, सुकवि सतसई, हो हो होरी आदि
राधाकृष्ण दास	– भारत बारहमासा, देश-दशा
जगमोहन सिंह	– श्यामा सरोजिनी, श्यामलता

नाटक

भारतेन्दु	– पाखण्ड विडंबन, वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, सत्य हरिश्चन्द्र, अन्धेर नगरी, नीलदेवी, भारत दुर्दशा, विषस्य विषमौषधम आदि
पं. बालकृष्ण भट्ट	– शर्मिष्ठा, पद्मावती, चन्द्रसेन, नल दमयंती स्वयंवर, जैसा काम वैसा परिणाम आदि
राधाचरण गोस्वामी	– श्रीदामा, सती चन्द्रावली, अमरसिंह राठौर
प्रतापनारायण मिश्र	– संगीत शाकुन्तलम, भारत दुर्दशा रूपक आदि
लाल श्रीनिवासदत्त	– रणधीर और प्रेम मोहिनी संयोगिता स्वयंवर
राधाकृष्णदास	– महाराणा प्रताप, महारानी पद्मावती
राजा लक्ष्मण सिंह	– शकुन्तला (हिन्दी अनुवाद)

निबन्ध

भारतेन्दु – हरिश्चन्द्र कला, भारतेन्दु के निबन्ध

बालकृष्ण भट्ट – भट्ट निबन्धावली

प्रतापनारायण मिश्र – निबन्ध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा

राधाचरण गोस्वामी – रेलवे स्तोत्र, होली

बदरी नारायण चौधरी – बनारस का बुढ़वा मंगल, समय आदि

अंबिकादत्त व्यास – क्षमा, ग्रामवास

पत्र-पत्रिकायें

उदंत मार्तण्ड - सन् १८२६ ई. - कलकत्ता - संपादक-जुगल किशोर

बंगदूत - सन् १८२९ ई. - कलकत्ता

बनारस अख़बार - सन् १८५४ ई. - काशी - राजा शिव प्रसाद

समाचार-सुधावर्षण - सन् १८५४ ई. - कलकत्ता - श्यामसुन्दर सेन

प्रजा हितैषी - सन् १८५५ ई. - राजा लक्ष्मण सिंह

कविवचन सुधा - सन् १८६७ ई - काशी - भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र मैगसिन - सन् १७७३ ई. - बनारस - भारतेन्दु

हिन्दी प्रदीप - सन् १८७७ ई. - इलाहाबाद - बालकृष्ण भट्ट

आनन्द कादम्बिनी - सन् १८८१ ई. - मिर्जापूर - प्रेमघन

भारतेन्दु - सन् १८८३ ई. - वृन्दावन - राधाचरण गोस्वामी

उपन्यास - किशोरीलाल गोस्वामी

ब्राह्मण - सन् १८८३ ई. - कानपूर - प्रतापनारायण मिश्र

नागरी प्रचारिणी पत्रिका - सन् १८९६ ई. - काशी - श्यामसुन्दर दास, रामनारायण मिश्र, शिवकुमार सिंह

सरस्वती - सन् १९०० ई. - इलाहाबाद - चिंतामणी घोष

हिन्दी गद्य साहित्य के विकास क्रम में भारतेन्दु युग के गद्य साहित्य का महत्व ज़्यादा है । भारतेन्दु जी से प्रेरणा पाकर अनेक साहित्यकार साहित्य के विभिन्न विधाओं में उभर आए । यों कविता, निबन्ध, नाटक, पत्रकारिता आदि सभी क्षेत्रों में प्रगति हुई । मुद्रणालयों के प्रचार के साथ साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग होने लगा । हिन्दी के प्रति, भारत के प्रति, समाज के प्रति अटूट निष्ठावान साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य रूपी महल का निर्माण शुरू कर दिया ।

भक्तिकाल का साहित्य जनता का साहित्य था और रीतिकाल का साहित्य दरबारी था । रीतिकालीन ऐन्द्रियता, रसिकता और श्रृंगारिकता ने जीवन के प्रति एक असन्तुलित दृष्टिकोण पैदा कर दिया था । भारतेन्दु जी का जन्म इसी वक्त हुआ । सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनों

के बादल भारतीय आकाश में घिरने लगे । भारतेन्दुकालीन रचनायें जनवादी प्रवृत्तियों पर ध्यान दिये । नये विषय और जनता की समस्यायें रचनाओं में मुख्य रूप से आने लगे ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

हिन्दी का प्रथम उपन्यास- परीक्षा गुरु

भाग्यवती उपन्यास के रचयिता - श्रद्धाराम फिल्लौरी

नासिकेतोपाख्यान के रचयिता - सदलमिश्र

प्रजाहितैषी नामक पत्र कहाँ से निकला - आग्रा से

भारतेन्दुयुगीन साहित्य को जनवादी साहित्य किसने कहा - रामविलास शर्मा

भारतेन्दु को नए युग के प्रवर्तक किसने कहा - रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी का पहला समाचार पत्र - उदंत मार्तण्ड

नि:सहाय हिन्दु उपन्यास के रचयिता - राधाकृष्ण दास

भारतेन्दु का उपनाम - रसा (उर्दु कविता लिखते वक्त)

हिन्दी प्रदीप के संपादक - बालकृष्ण भट्ट

भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल किसने माना - डॉ. नगेन्द्र

हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र - समाचार सुधावर्षण

मयंक महिमा के रचनाकार - प्रेमधन

भारतेन्दु ने किस समाज की स्थापना की - तदीय समाज

ब्राह्मण पत्रिका के संपादक - प्रतापनारायण मिश्र

नूतन ब्रह्मचारी के रचयिता - बालकृष्ण भट्ट

भारतेन्दु को भारतेन्दु की उपाधि कब मिला - सन् १८८० ई. में

हिन्दी के व्यावहारिक समीक्षा का जन्म किस पत्र से हुआ - हिन्दी प्रदीप

भारतेन्दु के किस नाटक में केवल नारी पात्र है - श्री चंद्रावली

हिन्दी व्यावहारिक आलोचना के सूत्रपात करनेवाले कौन थे - बालकृष्ण भट्ट

हिन्दी की सैद्धान्तिक आलोचना के पिता - भारतेन्दु

आधुनिक काल को नवीनकाल किसने कहा - बाबु गुलाबराय

खडीबोली को साधु भाषा किसने कहा - भारतेन्दु

निज भाषा उन्नति अहै उन्नति कौ मूल

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल - भारतेन्दु

रानी केतकी की कहानी - इंशा अल्ला खाँ

ब्रह्म समाज की स्थापना कब हुई - सन् १८२८ ई.

Unit - 9

द्विवेदी युगीन हिन्दी काव्य

द्विवेदी युग हिन्दी खडीबोली कविता की साधनावस्था से सिद्धि तक का इतिहास है । मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रत्नाकर आदि कवियों के साथ-साथ १२५ 'सरस्वती' से संबन्धित और २५ सरस्वती से दूर कवियों ने अपनी शक्ति और क्षमता से हिन्दी का भंडार भरने की कोशिश की । अब हम द्विवेदी युग के कुछ कवि और उनके रचनाओं के बारे में विचार करेंगे ।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी का जन्म ९-६-१८६४ ई. में हुआ था । आप स्वभाव से निड़र, स्पष्टवक्ता, मितव्ययी, व्यवहार कुशल, क्षमाशील और न्यायप्रिय थे । गाँव की पाठशाला में प्रारंभिक शिक्षा पाने के पश्चात् अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए रायबरेली गए । फिर पिता के साथ मुंबई गए । वहाँ से इन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया । गद्य व पद्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी अपना छाप डाला है । इन्होंने अपनी कविता में दो प्रकर की भाषा का प्रयोग किया है – एक तो तत्सम-प्रधान समस्त भाषा का, दूसरा प्रचलित शब्दावली युक्त सरल भाषा का । द्विवेदी जी की मौलिक खडीबोली की रचनायें हैं – 'नागरी', 'काव्य मंजुषा', 'सुमन और कविता कलाप', 'कान्यकुब्ज - अबला-विलाप', 'गंगालहरी', 'ऋतु-तरंगिणी' (अनूदित) । उन्होंने अपनी सारी शक्ति भाषा सुधार और खडीबोली पद्य की अभिव्यंना शक्ति में व्यतीत किया ।

द्विवेदी जी की खडीबाली की प्रथम रचना 'बली वर्दी' बंबई के वेंकटेश्वर समाचार में प्रकाशित हुई । राजा रविवर्मा के चित्रों के आधार पर कविता रचने का कार्यक्रम काव्य में चित्रमयता और सरसता लाने का नूतन तरीका था । सन् १९०६ ई. में 'वन्देमातरम' का सुन्दर अनुवाद 'ऊषा स्वप्न' और 'कल्लू अल्हइन' के नाम से प्रकाशित हुआ ।

नाथुराम शर्मा शंकर (सन् १८५९ - सन् १९३२ ई.)

हिन्दी, उर्दु, फार्सी तथा संस्कृत भाषाओं के पंडित शंकर जी का जन्म अलीगढ़ में हुआ था । भारतेन्दु मंडल में प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क में आने के बाद 'ब्राह्मण' में इनकी रचनायें आने लगी। 'अनुरागरत्न', 'शंकर सर्वस्व', 'शंकर सरोज' आदि रचनायें उनका है । व्रजभाषा में वे कविता लिखते थे । लेकिन बाद में वह खडीबोली में कवितायें लिखने लगे । समाज में प्रचलित अनाचारों और अत्याचारों के खिलाफ वे आवाज़ उठाते रहे । 'साहित्य सुधाकर', 'कविता कामिनी-कान्त' आदि उपाधियों से वे सम्मानित हुए । शंकर जी छन्दशास्त्र के उद्कट विद्वान थे । उनकी रचनायें इसका सबूत है । केरल के सुप्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा के चित्र के आधार पर 'केरल की तारा' नामक रचना की । यह रचना अक्तूबर सन् १९०६ ई. में सरस्वती में प्रकाशित हुई । 'वसंत सेना' नामक रचना भी वर्मा जी का है ।

पं. रामचन्द्र शुक्ल

पं. रामचन्द्र शुक्लजी का जन्म गर्ग गोत्र के सरयूपारी ब्राह्मण परिवार में आश्विन पूर्णिमा के दिन सं. १९४१ विक्रमी को हुआ । सरकारी नौकरी होने के कारण उनके पिता की तबादला होते रहे । साथ-ही-साथ पारिवारिक समस्यायें भी उनको सताने लगे । माताजी बचपन में ही मर गई और उनकी शादी भी छोटी उम्र में हो गई । विवश होकर उन्हें शिक्षक के रूप में कार्य करना पड़ा ।

इनकी पहली खडीबोली रचना 'मनोहर छटा' है । अनन्तर 'शिशिर पथिक', 'वसन्त पथिक', 'भारत-और वसन्त', 'दुर्गावती' जैसी रचनायें प्रकाशित हुई । शुक्ल जी मूलतः कवि थे, इसलिए ही उनके गद्य पर भी कवि का प्रभाव दर्शनीय है । शुक्ल जी प्रकृति प्रेमी कवि थे । उन्होंने प्रत्येक ऋतु में होनेवाले परिवर्तन को ध्यान से देखा था । प्रकृति के रमणीय रूपों में शुक्ल जी का मन बहुत रमा है । 'बुद्धचरित' उनका काव्यानुवाद है ।

मैथिलीशरण गुप्त

गुप्त जी का जन्म चिरगाँव जिला झांसी में ३.८.१८८६ ई. को हुआ । उनकी प्रारंभिक शिक्षा चिरगांव में हुई । प्राइमरी शिक्षा पूरी करके वे झाँसी गये । लेकिन वहाँ उनका मन रामलीला और रासलीला में ही लगे रहे । इसके बाद उनके पिता उनको घर वापस ले आया और वहाँ से संस्कृत, हिन्दी, उर्दु, बंगला और अंग्रेज़ी भाषाओं में थोड़ा बहुत ज्ञान स्वाध्याय से अपनाया । गुप्त जी की प्रथम कविता 'हेमन्त' सन् १९०५ ई. मं सरस्वती में प्रकाशित हुई । गुप्त जी की कविताओं में भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, राष्ट्र प्रेम, एकता और आधुनिक युग बोध की बातें तक सरलता से चित्रित किया है । प्राचीन और नवीन के समन्वय करने का प्रयत्न भी गुप्त जी ने किया है । द्वारिका प्रसाद मिश्र गुप्त जी के बारे में महत्वपूर्ण मत व्यक्त किया है – "गुप्त जी भारतीय संस्कृति और भारतीय राष्ट्रीय जीवन के एक प्रधान गायक रहे है । उनके कविता ने हिन्दी के आगामी काव्य विकास को नई गति प्रदान की है ।"

गुप्त जी की प्रथम मौलिक पुस्तक 'रंग में भंग' (सन् १९०९ ई.) एक ऐतिहासिक खण्ड काव्य है। उनकी द्वितीय काव्य रचना 'जयद्रथ वध' सन् १९१० ई. में प्रकाशित हुई । महाभारत युद्ध के आधार पर रचे गए यह कविता राष्ट्र कवि की रचनाओं में सर्व श्रेष्ठ है । 'पंचवटी', 'साकेत', 'द्वापर' आदि भी उनकी उल्लेखनीय रचनायें हैं । शाश्वत मूल्यों, वैदिक चिन्तन और वर्तमान आवश्यकताओं को भली-भाँति समझने के कारण उनकी अधिकांश कविताओं में मानव की महत्ता का वर्णन हुआ है । इसलिए ही ये द्विवेदी काल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि माने जाते थे । इनकी ख्याति का मूलाधार 'भारत भारती' (सन् १९१२ ई.) है । मानस के पश्चात् हिन्दी में राम काव्य का दूसरा स्तंभ 'साकेत' ही है । गुप्त जी के प्रमुख काव्य ग्रन्थ है – 'जयद्रध वध' (सन् १९१० ई.), 'भारत भारती' (सन् १९१२ ई.), 'पंचवटी' (सन् १९२५ ई.) , 'झंकार' (सन् १९२९ ई.) , 'साकेत' (सन् १९३१ ई.) , 'यशोधरा' (सन् १९३२ ई.) , 'द्वापर' (सन् १९३६ ई.) , 'जयभारत' (सन् १९५२ ई.) आदि । भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता होने के साथ साथ ये राष्ट्र कवि भी थे ।

राष्ट्रकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए गुप्त जी खडीबोली के विकास, परिष्कार तथा परिमार्जन करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ थे । गुप्त जी द्विवेदी जी का मानसपुत्र माना जाता है ।

पं. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

कविवर सनेही (सन् १८८३ - सन् १९७२ ई.) का जन्म उन्नाव जिले के हडवा गाँव में हुआ था। उर्दु के साथ साथ हिन्दी में भी उन्होंने अच्छी अच्छी कवितायें लिखी हैं । वे हिन्दी के बड़े ही भावुक और सरस हृदय के कवि जाने जाते हैं । प्राचीन और नवीन शैलियों की रचनायें इन्होंने किया है । श्रृंगार आदि परंपरागत विषयों पर 'सनेही' उपनाम से और राष्ट्रीय भावनाओं की कवितायें 'त्रिशूल' उपनाम से लिखा है । 'कृषक क्रन्दन', 'प्रेम पचीसी', 'करुणा कादंबिनी' आदि इनकी प्रमुख रचनायें हैं ।

श्रीधर पाठक

श्रीधर पाठक (सन् १८५९ - १९२८ ई.) का जन्म आगरा जिले के जोन्धरी गाँव में हुआ था । सरकारी नौकरी करने इन्हें कश्मीर और नैनितल जाना पड़ा जहाँ से प्रकृति की ओर इनका ध्यान पड़ा। व्रज और खडीबोली में इन्होंने कवितायें की है । देश प्रेम, समाज सुधार एवं प्रकृति चित्रण इनकी रचनाओं की विशेषता है । 'वनाष्टक', 'बाल विधवा', 'काश्मीर सुषमा', 'देहरादून' आदि उनकी उल्लेखनीय रचनायें हैं । उनके व्यक्तित्व के बारे में रामचन्द्र मिश्र जी ने यों लिखा है – "उनहत्तर वर्ष के जीवन में भारतेन्दु युग में पल्लवित होकर द्विवेदी युग की परंपरा मूलक प्रवृत्तियों को चुनौती तथा छायावादी युग के लिए सुदृढ़ शिलान्यास करते हुए पाठक जी ने अपने स्वच्छन्दतावादी गरिमामयी व्यक्तित्व से हिन्दी काव्य को चिर आभारी किया ।"

कालिदास कृत 'ऋतु संहार' (एकान्तवासी योगी), गोल्ड स्मिथ कृत 'हरमिट' (ऊजड ग्राम) आदि काव्य रचनाओं का अनुवाद भी उल्लेखनीय है ।

सियाराम शरण गुप्त

सियाराम जी का जन्म सन् १८९५ ई. को चिरगाँव में हुआ । ये राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त के छोटे भाई थे । 'मौर्य विजय' (सन् १९१४ ई.) इनकी प्रमुख रचना है । शुद्ध, सहज और परिमार्जित भाषा का प्रयोग इनकी रचनाओं की विशेषता है । उनकी कविताओं में मौर्य विजय, अनाथ, दुर्वादल, विषाद, आर्द्रा आदि भी आती है । करुण भावना के कवि के रूप में वह जाने जाते हैं । विचार तल पर गाँधीवाद, मानववाद और रहस्यवाद का प्रभाव अन्यत्र दर्शनीय है ।

मुकुटधर पाण्डेय

उनका जन्म सन् १९५२ ई. में बालपूर नामक गाँव में हुआ । द्विवेदी युगीन कवियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त कवि है पाण्डेय जी । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इन्हें छायावाद के प्रारंभिक कवि मानते हैं। 'काल की कुटिलता', 'जीवन साफल्य', 'रत्नाकर', 'कैकेयी कापट्य' आदि उनकी प्रमुख रचनायें हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध (सन् १८६५ - १९४७ ई.)

हरिऔध जी का जन्म आजमगढ में हुआ था । प्रारंभिक शिक्षा उन्होंने घर पर ही प्राप्त किया। इनकी प्रारंभिक शिक्षा निज़ामाबाद कस्बे में हुई । सन् १८८४ ई. से उन्होंने अध्यापन कार्य शुरू किया। उन्होंने भारतेन्दु के जीवन काल में ही कविता करने लगे थे, किन्तु वे उस समय व्रज भाषा में लिखते थे । सन् १८८२ ई. में उन्होंने 'श्रीकृष्ण शतक' की रचना की । सन् १९१४ ई. में 'प्रिय प्रवास' के प्रकाशित होने तक वे व्रज भाषा में ही काव्य रचना करते रहे । खडीबोली के प्रभाव में पड़ने के कारण

'प्रिय प्रवास' की रचना के पूर्व भी हिन्दी में कुछ लिखा था । 'प्रिय प्रवास' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है । इसके अलावा 'वैदेही वनवास' (सन् १९४१ ई.) महाकाव्य की रचना भी उन्होंने की । प्रिय प्रवास का दशम सर्ग द्विवेदी युग की श्रेष्ठ कृति है ।

'चौखे चौपदे' (सन् १९२४ ई.), 'पद्यप्रसून' (सन् १९२५ ई.), 'चुभते चौपदे', 'बोलचाल', 'पारिजात' आदि स्फुट काव्य संग्रह भी उन्हीं का है । हरिऔध जी ने हिन्दी को एक नई राधा दी - आधुनिक युग की प्रबुद्ध नारी के रंग में रंगी । हिन्दी साहित्य क्षेत्र में सन् १८८३ ई. में प्रवेश करने के बाद मृत्यु पर्यन्त सन् १९४७ई. तक वे निरंतर लिखते रहे । 'रसकलस' नामक रचना में रस स्वरूप और रस-प्रकारों के सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है । 'रसकलस' की रचना व्रज भाषा में हुई है । इनके अलावा उन्होंने 'पारिजात' नामक महाकाव्य की भी रचना की है ।

इन्होंने दोहा, कविता, सवैया जैसे वृत्तों में काव्य रचना की है । छन्दों और भावों के अनुरूप भाषा के प्रयोग करने में उनको अभूतपूर्वक सफलता मिली है । वे दो बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति चुने गये थे । साहित्य वाचस्पति, कवि सम्राट आदि कई पुरस्कार उन्हें मिला । मंगलाप्रसाद पुरस्कार भी उन्हें मिला जो हिन्दी का सर्वोत्तम पुरस्कर माना जाता है । जिन्दादिली, ईमानदारी, तीव्र साधना एवं अटूट साधना से ओतप्रोत रचनायें होने के कारण ही आप खडीबेली कविता के प्रथम प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं ।

अनुवादक के रूप में आपने साहित्य की आराधना की है । फारसी के ग्रन्थ 'गुलिस्ताँ' के आठवें अध्याय का अनुवाद 'उपदेशकुसुम' नाम से और 'गुलजारदबिस्तँ' के अनुवाद आप ने 'विनोदवाटिका' के रूप में किया है । 'सरस्वती', 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं में उनकी खडीबोली की फुटकर रचनाएँ बराबर आती रही । खडीबोली कविता की रूपरेखा को परिष्कृत,परिवर्द्धित और प्रशस्त करनेवालों में हरिऔध जी का नाम पहले लिखा गया है । हरिऔध जी खडीबोली के प्रथम 'रससिद्ध' कवि थे।

रामनरेश त्रिपाठी

त्रिपाठी जी का जन्म सन् १८८१ ई. में कोइरीपूर गाँव में हुआ । किसान परिवार में पैदा हुए उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई । ९-वीं कक्षा तक अभ्यास करने के बाद पिताजी के अंग्रेज़ी शिक्षा विरोध और अर्थाभाव के कारण त्रिपाठी जी को पढ़ाई छोड़नी पड़ी । २८ वर्ष की अवस्था में वे घर छोड़कर कलकत्ता चले गये । कलकत्ते में उनके जीवन को गति देनेवाला वातावरण मिला । पत्र, पत्रिकाओं के संपर्क में आने के कारण उनको पल्लवित होने का मौका मिला । कविता के प्रति लड़कपन से ही उनको चाव था । कलकत्ता आने के बाद साहित्याभिरुचि और बढ़ गयी ।

'सरस्वती' पत्रिका के प्रभाव स्वरूप ये खडीबोली की ओर उन्मुख हुए । 'मिलन' (सन् १९१४ ई.), 'पथिक' (सन् १९२० ई.), 'मानसी' (सन् १९२७ ई.) और 'स्वप्न' (सन् १९२९ ई.) उनके काव्यग्रन्थ हैं । अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ को त्यागकर देश के लिए तन, मन, धन छोड़ने की प्रेरणा त्रिपाठी जी ने दिया है । 'कविता-कौमुदी' को आठ भागों में त्रिपाठी जी ने संस्कृत, हिन्दी, उर्दु एवं बंगला की कविताओं का संपादन किया है । सन् १९१८ ई. में ये हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के प्रचार मन्त्री नियुक्त हुए । सम्मेलन पत्रिका के संपादन के द्वारा भी इन्होंने हिन्दी की अच्छी सेवा की ।

त्रिपाठी जी स्वच्छन्द विचारों के सत्कवि थे । उनके कविताओं के नायक विख्यात महापुरुष न होकर साधारण व्यक्ति है । उनके काव्यों में सामाजिक प्रेम और देश प्रेम पर्याप्त मात्रा में मिलता है। स्वदेश भक्ति की भावना को रमणीय और आकर्षक रूप त्रिपाठी जी ने ही प्रदान किया ।

पं. माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल जी का जन्म सन् १८८१ ई. में बाबई, मध्यप्रदेश में हुआ । शिक्षा प्राप्ति के बाद खाण्डवा में जाकर उन्होंने प्राइमरी शिक्षक क जीवन शुरू किया । सन् १९१३ ई. में 'प्रभा' नामक पत्रिका खण्डवा से प्रकाशित हुई । भारतीय आत्मा के विकास में 'प्रभा' का हाथ था । गुप्त जी भारतीय संस्कृति के अतीत के स्वर्णिम खण्डहरों में नवीन जीवन प्रदान करनेवाले, उपेक्षित नारी को प्रामुख्य दिलानेवाले खडीबोली के प्रथम कवि थे । 'हिमकिरीटन', 'हिमतरंगिणी' आदि उनकी प्रमुख रचनायें हैं ।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (सन् १८६८ - १९२५ ई.)

पूर्ण जी का जन्म जबलपूर में हुआ था । बी.ए तक शिक्षा प्राप्त कर इन्होंने थोड़े दिन वकालत की । फिर वह कानपूर गए । सरसता एवं भावपूर्णता उनकी रचनाओं की विशेषता माना जाता है। व्रज और खडीबोली भाषाओं में उनका अधिकार था । व्रज और खडीबोली भाषाओं में कई रचनायें भी उन्होंने किया । देशभक्ति जैसे आधुनिक विषयों पर खडीबोली में और परंपरागत विषयों पर व्रजभाषा में उन्होंने रचना की है । 'वसन्त वियोग', 'राम-रावण विरोध', 'स्वदेशी कुण्डल' आदि उनकी प्रमुख रचनायें हैं ।

बालमुकुन्द गुप्त (सन् १८६५ - १९०७ ई.)

बालमुकुन्द गुप्तजी भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग को जोड़नेवाले कड़ी माना जाता है । उनका जन्म हरियाणा के गुडियाना नामक गाँव में हुआ था । सरल एवं सहज भाषा में राष्ट्रीयता और हिन्दी प्रेम विषयक रचनायें उन्होंने किया । कवि के साथ साथ अनुवादक और संपादक के रूप में भी उन्होंने काम किया है । इनकी कवितायें स्फुट कविता में संकलित है ।

पं. रामचरित उपाध्याय

सन् १८६४ ई. में गाजीपूर में उपाध्याय जी का जन्म हुआ । द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से वे बराबर 'सरस्वती' में लिखते रहे । 'राष्ट्र भारती', 'देवदूत', 'देव-सभा', 'देवी द्रौपदी', 'भारत भक्ति' आदि कवितायें उन्होंने खडीबोली में लिखी है । 'रामचरित चिन्तामणी' नामक एक प्रबन्ध काव्य भी इन्होंने लिखा है । 'भारत भक्ति' और 'राष्ट्रभारती' उनकी राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह है । खुसरो के समान पहेलियों की रचना भी उन्होंने की है । द्विवेदीयुगीन काव्यों में उपाध्याय जी की रचनाओं का विशेष महत्व है ।

इनके अलावा कामता प्रसाद गुरु के 'ग्रामीण', 'विलाप', 'ईर्ष्या', 'परशुराम' आदि रचनाएँ और गिरिधर वर्मा नवरत्न का 'मुरली', 'ईश्वर स्तुती' आदि रचनाओं के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

व्रजभाषा काव्य

भारतेन्द काल से खडीबोली और व्रजभाषा का जो विवाद चला आ रहा था वह द्विवेदी युग में

नहीं का सा हो गया । श्रीधर पाठक, हरिऔध तथा नाथुराम शर्मा के नाम द्विवेदी युगीन व्रज भाषी कवियों में प्रमुख है । परंपरागत शैली में ही ये कवि रचना करते रहे । तत्कालीन सामाजिक मामलों पर ये कवि ध्यान दिया ही नहीं । द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ व्रज भाषी कवि के रूप में रत्नाकर माना जाता है । मन चाहे तरीके में अलंकारों का प्रयोग उन्होंने किया है । साहित्य, संस्कृत, धर्म आदि के साथ साथ ज्योतिष, पुरातत्व एवं आयुर्वेद का ज्ञान उनको था । अन्य कवियों से अपने आप को अलग रखने में यह अगाध ज्ञान उनको सहायता दी । 'श्रृंगार लहरी', 'हिंडोला' आदि उनकी प्रमुख रचनायें हैं ।

द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय कविता

द्विवेदी युग राष्ट्रीय जागरण का युग है । काँग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय गौरव के पुनरुत्थान संबन्धी आन्दोलनों का प्रवाह होने लगा । कवियाँ भी इस प्रवाह से मिले तो आन्दोलन को एक नया मोड़ मिल गया ।

भारतीय अपने स्वर्णिम अतीत को भूल गए थे । उनको अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति गौरवमान बनाने की उपलक्ष्य में कवि रचना करने लगे । महावीर प्रसाद की ये पंक्तियाँ देखिए –

"जहाँ हुए व्यासमुनि-प्रधान रामादी राजा अति कीर्तिमान
जो थी जगत्पूजित धन्य भूमि, वही हमारी यह आर्य भूमि"

द्विवेदी जी के अलावा उमाशंकर त्रिवेदी, चंडिकाप्रसाद अवस्थी, मुन्निलाल, कामताप्रसाद गुरु जैसे कवियों ने भी अतीत गौरव की ओर भारतीयों को लाने की कोशिश करते रहे । राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी की पंक्तियाँ देखिए –

"यह भारत स्वर्ग सहोदर है,
जितने गुण सागर नागर है, कहते यह बात उजागर है,
अब यद्यपि दुर्बल भारत है, पर भारत के सम भारत है ।"

इस प्रकार की रचनाओं से लोगों में अतीत के प्रति श्रद्धा बढ़ाने में आलोच्य युगीन कवि सफल रहे ।

विलायती शासन के प्रति लोगों में जो भावना जागृत हुई थी, वह द्विवेदी युग में देशभक्ति में परिवर्तित होने लगा । द्विवेदी युग के कवियों ने ब्रिटीश शासन के निन्दा में ही रचनाएँ करने लगे । द्विवेदी युगीन कवियों ने खुलकर वर्तमान काल की हीनावस्था का चित्रण किया । वर्तमानकाल की हीनावस्था के कारण ही भारत अंग्रेज़ों के कब्जे में आये । जातीयता, शैशव विवाह, बालविधवाओं की पतितावस्था, निर्धनता, दहेज प्रथा आदि सामाजिक समस्याओं पर रचना करने लगे । राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने वर्तमान युग की कष्टपूर्ण हीनावस्था का ज्वलन्त चित्रण किया है ।

सामाजिक सुधार की ओर आलोच्य युगीन कवियों ने ध्यान दिया । देश को दासता के बन्धन से मुक्त करवाने विद्यार्थी, मज़दूर, किसान व नवयुवकों को उन्होंने प्रेरणा दी । जनता के सुख-दुःख एवं जय-पराजय का उद्घोष इसी युग के कवियों ने किया । उनमें आत्मविश्वास भरकर देश के उत्थान में लगे रहने की प्रेरणा देने योग्य थे आलोच्य युगीन रचनायें । स्वराज्य प्राप्ति के मूलमंत्र के रूप में

असहयोग और स्वदेशी आन्दोलन को स्वीकृति मिलने का पूर्ण श्रेय इन्हीं कवियों को ही है । गाँधीजी की अहिंसा की नीति, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा असहयोग आन्दोलन की ओर देश के नवयुवकों को आकृष्ट करते हुए इस युग के कवियों ने समाज के लिए कुछ कर दिखाने की प्रेरणा उनको दिया । अंग्रेज़ों के अमानुषिक अत्याचार उनमें क्रांति की ज्वाला बढ़ायी । त्रिशूल, सनेही, माधव शुक्ल जैसे कवियों की पंक्तियाँ पूरे देश को झकझोर डाला ।

पूरे देश को बाँधने की कड़ी के रूप में हिन्दी को मान्यता मिली । द्विवेदी युग के प्रवर्तक कवि महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने खडीबोली में रचना करके अपने युग के अनेकों कवियों को प्रेरणा दी । उनकी प्रेरणा से अनेक कवि खडीबोली को अपनाये । सरस्वती जैसे पत्र पत्रिकायें भी लोगों के बीच की दूरी कम करने की कोशिश में लगे रहे ।

जनता को जगाने के साथ साथ द्विवेदी युगीन कवियों ने एकता की भावना भी उनमें जगायी । द्विवेदी युगीन कवियों में आशा और विश्वास दिखाई पड़ता है । रूपनारायण पाँडेय जी की पंक्तियाँ देखिए –

"कहते है सब लोग हमें हम दीन हीन है भिक्षुक है
कुछ भी हो हम लोग अभी अच्छे बनने की इच्छुक है"

भारतेन्दु युग के कवियों को शासकों पर भरोसा था, जो कालांतर में निरर्थक सिद्ध हुए । द्विवेदी युग के कवियों को यह सत्य समझ में आया कि अधिकारी लोग कभी भी आँख खोलने के पक्ष में नहीं है । उनसे अधिकार छीन लेने के लिए दृढ़ हाथों की जरूरत है । जनता के हाथों को दृढ़ बनाकर उनको अधिकार प्राप्ति के लिए सक्षम बनाने में कवि लगे रहे । एकता और आशापूर्ण उत्साह देशभक्ति से पूर्ण कविताओं की सबसे महत्वपूर्ण देन है ।

मूल्यांकन

द्विवेदी युग की प्रमुख विशेषता नवीन विषयों पर खडीबोली में काव्यारंभ है । श्रीधर पाठक की अनूदित कृति 'एकान्तवासी योगी' में स्वच्छ खडीबोली के विकास की अमिट छाप विद्यमान रहा। उसी प्रकार श्रीधर पाठक जी ने हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद का प्रथम रूप प्रस्तुत किया । कवि रामनरेश त्रिपाठी जी की 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' – इन तीन रचनाओं में स्वदेश, प्रकृति और प्रेम का बड़ा ही भव्य चित्रण मिलता है । द्विवेदी युग नारी और शूद्रों के प्रति नवीन दृष्टिकोण लाया । 'भारत-भारती', 'प्रिय प्रवास' आदि इसका ज्वलंत उदाहरण हैं ।

भारतेन्दु युग में यथार्थवाद की जो नींव पड़ चुकी थी वह परम्परा द्विवेदी युग में भी दिखाई पड़ती है । द्विवेदी युगीन कवि का ध्यान जितना सामाजिक अधःपतन पर है उतना ही राजनैतिक जागरण पर भी है । राष्ट्रीयता की भावना इस युग में ज़्यादा रहा । पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से भारतीयों में आत्मगौरव जगाने की वे कोशिश करते रहे । गाँधीजी की राष्ट्रीय विचारधारा का प्रभाव भी इनमें दर्शनीय है ।

द्विवेदी युगीन काव्यों में सामान्य जनता को भी स्थान मिलते रहे । वे दहेज प्रथा तथा बाल विवाह के खिलाफ खड़े रहे । समाज के पिछड़े वर्ग, किसान के प्रति भी वे सहानुभूति दिखाये ।

द्विवेदी जी की आदर्शवादिता और नैतिकवादिता के साथ साथ सामाजिक हलचलों ने काव्य को इतिवृत्तात्मक बना दिया । काव्य की दुनिया से श्रृंगार रस दूर रखे गए । इतिवृत्तात्मकता के कारण काव्य शुष्क होने लगे । आगे इसी इतिवृत्तात्मकता एवं आदर्शवादिता के कारण ही द्विवेदी युगीन काव्य का पतन हुआ ।

द्विवेदी युग के काव्य में 'प्रकृत भाष' अतिशयता की सीमा तक पहूँचा हुआ दिखाई पड़ता है । कवियों ने सीधे साधे उद्‌गारों का कथन करना अधिक पसन्द किया । सब कुछ कह लेने की प्रवृत्ति के कारण पाठकों की कल्पना के प्रयोग के लिए कुछ भी शेष न रहा । प्रकृति वर्णन में भी इन कवियों ने ज़्यादा ध्यान दिया था । कहीं कहीं उनका प्रकृति प्रेम देश प्रेम के रूप में भी चित्रित हुआ है । हेमन्त, वसन्त आदि ऋतुओं पर अनेक रचनायें मिलते हैं । राजा रविवर्मा के चित्रों को आधार बनाकर भी कई रचनायें आये । आख्यान, प्रकृति और प्रार्थनाओं के अतिरिक्त नीतिकाव्य की सृष्टि भी की गई है ।

द्विवेदी युग के कवि, 'काव्य मनोरंजन की वस्तु है' – यह तथ्य नहीं भूले । वे समाज की रुचि को परिष्कृत करने के लिए काव्य का प्रचार किया । काव्य, शास्त्र और विनोद एक ही व्यक्तित्व के तीनों पक्षों की तरह अभिन्न रूप में द्विवेदी युगीन काव्य में मिलते हैं । विनोद के द्वारा समाज के असंगतियों को दिखाने का प्रयत्न इन कवियों ने किया है । बाबु बालमुकुन्द गुप्त के 'मिण्डो मार्ली', 'पोलिटिकल होली', 'उर्दु को उत्तर', 'कलियुग के हनुमान' आदि रचनायें इसका उदाहरण है ।

द्विवेदी युग के कवि अपने चारों ओर आँखें खोलकर देखते थे । जीवन की आलोचना ही इस काव्य की मुख्य लक्षण है । चारों ओर आँखें खोलने के कारण विभिन्न पात्रों को पाठकों के सामने लाने में वे सफल बने । स्वदेश प्रेम बढ़ाने में भी इनका सफलता मिली । विदेशी खतरों से अपनी देश को बचाने वे कर्मरत रहे । इसलिए राष्ट्रीय काव्य शाखा का विकास भी हुआ ।

काव्य के क्षेत्र में द्विवेदी युग एक ऐसी काल चेतना है, जिसने हिन्दी काव्य को छायावादी, प्रगतिशील, प्रयोगवादी, अस्तित्ववादी, प्रतीकवादी, अभिव्यंजनावादी और अधुनातन वादों की जीवनदृष्टियाँ प्रदान की । अपने युग की माँग के अनुसार भाषा, विषयवस्तु और शैली में परिवर्तन लाने में ये सफल रहे ।

द्विवेदी युगीन काव्यों की और एक विशेषता मानव मूल्यों का चित्रण है । मानव की मूलभूत व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए द्विवेदी जी, बालमुकुन्द गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने जो क्षमता दिखायी वह सराहनीय ही है । मानवीय मूल्यों पर ध्यान देने के कारण ही खडीबोली काव्य भवन के निर्माण की गति बढ़ने लगी । भाषा का संस्कार भी इसी युग में हुआ । नये दृष्टिकोण, नये विचार, नये विषय और नवीन सुरुचि ने द्विवेदी युग को एक नया मोड़ दे दिया ।

द्विवेदी युगीन काव्य में नारी स्वातंत्र्य संबन्धी भावना का विकास बड़ी तेज़ी से हुआ । द्विवेदी जी का 'कान्यकुब्ज अबला विलाप' इसका उदाहरण है । आदर्शों का पालन द्विवेदी युगीन कवियों की प्रमुख विशेषता रही । द्विवेदी जी का मत है कि "जिस काव्य से समाज को कोई शिक्षा नहीं मिलती वह व्यर्थ है । सबसे अच्छी कविता में जीवन को सार्थक करने का उपाय और उसके उद्देश्य बतलाये जाते है । उससे मनुष्य को अच्छी शिक्षा दी जाती है, उसे उन्नति का मार्ग दिखाया जाता है,

उसके हृदय को उदार और सहानुभूतिपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाता है ।" इसी आदर्श के साथ कवि रचना करने लगे ।

राष्ट्रीय काव्य का सृजन द्विवेदी युगीन काव्य की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति रही । राष्ट्रीय एकता, स्वदेशी की लहर और सर्वतोन्मुखी जागरण का मन्त्र इन कवियों ने फैलाया । भारतेन्दु युग के कवियों ने ब्रिटीश शासन से संघर्ष करते रहने की प्रेरणा दी । देश भक्ति बढ़ाने के साथ साथ राष्ट्रीयता का भी विकास होने लगा । द्विवेदी युग में देशप्रेम को विकसित करने वाली ढेर सारी परिस्थितियाँ थीं । जालियॉवालाबाग का कत्लेआम, शहर शहरों में हुए भीड़ की हिंसा आदि उनमें प्रमुख घटनायें हैं । इन परिस्थितियों ने राष्ट्रीय भावना को नवीन चेतना दी । 'भारत भारती', 'मौर्य विजय' आदि राष्ट्रीय काव्य शाखा की प्रमुख रचनायें हैं । प्रस्तुत युग के सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रगायक मैथिलीशरण गुप्त थे।

द्विवेदी युग में व्यापक रूप में प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण हुआ है । द्विवेदी युगीन काव्य की और एक खसियत है भारतीय समाज को केन्द्र बनाकर रची रचनायें । सनेही जी का 'कृषक क्रन्दन', द्विवेदी जी का 'कर्तव्य पंचदशी' आदि प्रस्तुत धारा की प्रमुख रचनायें हैं ।

अंग्रेज़ी, बंगला और मराठी भाषाओं से कई रचनायें हिन्दी में अनूदित किया । इससे काव्य में नये नये वर्ण्य विषय मिले । यों खडीबोली काव्य को नया ओज मिला । स्वच्छन्दतावाद, छायावाद आदि काव्य-धाराओं का संपर्क भारतीय कवियों को मिला और वे अपने ढंग के रचनाओं से जनता के मन बहलाने लगे ।

द्विवेदी युग में काव्य के महाकाव्य, खण्ड काव्य, लघु प्रबन्ध काव्य, मुक्तकरूपों का प्रयोग हुआ है । फिर भी कथानकों पर आधारित प्रबन्ध काव्यों को ही प्रधानता मिली । प्रबन्ध काव्य के महाकाव्य और खण्ड काव्य रूपों का विकास समान रूप से हुआ । 'साकेत', 'प्रिय प्रवास' आदि महाकाव्य है। 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'किसान' आदि इस युग के प्रमुख खण्ड काव्य हैं । संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के छन्दों का इस्तमाल करने में द्विवेदी युगीन कवि सक्षम थे ।

द्विवेदी युग में मानव धर्म का विकास हुआ । काव्यों में मानवता का निरूपण होने लगा । ईश्वर प्रेम को मानव प्रेम की ओर बदलने में द्विवेदी युगीन कवि तल्लीन रहे ।

द्विवेदी युग में खडीबोली और व्रज भाषा की दूरी कम हो गयी और गद्य की तरह पद्य में भी खडीबोली का इस्तेमाल होने लगा । मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान, स्वार्थ त्याग आदि भावनाओं को जगाने में कवि सफल हुए । राष्ट्रीयता की ओर लोगों को आकृष्ट करके उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनों को नव जीवन प्रदान की । हर विषयों में कवि रचना करने लगे । इस प्रकार एक नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण का उदय हिन्दी साहित्य में हुआ । जन सामान्य की भाषा खडीबोली के स्वरूप निश्चित, सुघड़ और मधुर बनाने में भी द्विवेदी युगीन कवि सक्षम रहे । नये काव्य विषयों के चुनाव और अपरिमार्जित भाषा का इस्तेमाल द्विवेदी युगीन काव्यों को नीरस एवं इतिवृत्तात्मक कहने का कारण बना । यह तो स्वाभाविक बात ही था । धीरे धीरे काव्यों में सरसता, सरलता , मधुरता एवं भावपूर्णता आने लगी । खडीबोली के स्वरूप, निर्माण और संस्कार, जागरण सुधार आदि प्रवृत्तियों के कारण द्विवेदी युग हिन्दी काव्य के इतिहास में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया ।

Unit - 10

द्विवेदी युगीन हिन्दी उपन्यास

भारतेन्दु युग में हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास हुआ था । भारतेन्दु युग की प्रमुख औपन्यासिक प्रवृत्ति तिलस्मी था । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशक को द्विवेदी युग कहा जाता है । सामाजिक, जासूसी, ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रचार और प्रसार इस युग में हुआ । अब हम द्विवेदीयुग के कुछ उपन्यासकारों के बारे में विचार विमर्श करेंगे ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हरिऔध जी का जन्म सन् १९२२ ई. में हुआ था । निजामाबाद के रहनेवाले हरिऔध जी मिडिल कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की थी । कवि के रूप में आप ज़्यादा जाने जाते हैं । मौलिक उपन्यास रचना के क्षेत्र में भी उनका महत्व है । 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक दो उपन्यास इन्होंने हिन्दी में लिखे । दोनों की कथावस्तु सामाजिक गति विगतियाँ ही है । बंगला भाषा से बंकिमचन्द चट्‌टोपाध्याय के एक प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद इन्होंने 'कृष्णकांत का दांपत्य' के नाम से किया था । समाज सुधार और आदर्शवाद का एक नया रूप हरिऔध जी अपने उपन्यासों के माध्यम से किया । 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' उपन्यास डॉ. ग्रियर्सन के अनुरोध पर लिखा गया था । हिन्दी की बोलचाल की भाषा का अथवा ठेठ हिन्दी का नमूना प्रस्तुत करने के लिए ये दोनों उपन्यास पर्याप्त ही है ।

मेहता लज्जाराम शर्मा

मेहता लज्जाराम शर्मा का जन्म सन् १८६३ ई. में बूँदी राज्य में हुआ था । प्रारंभिक शिक्षा घर से ही प्राप्त करने के बाद इन्होंने अंग्रेज़ी, संस्कृत, मराठी और गुजराती भाषाओं का अध्ययन किया। 'धूर्त रसिक' (सन् १८७४ ई.), 'कपटी मित्र', 'हिन्दु गृहस्थ' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं । उनके ज़्यादा उपन्यास सामाजिक कथानक पर लिखित है । आधुनिक सभ्यता और संस्कृति जिस प्रकार भारत के लिए हानिकारक है इसका वर्णन 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' नामक उपन्यास में किया है ।

आधुनिकता के विकास के साथ साथ संयुक्त परिवार का हास हो रहा है । उसी के साथ ही परिवार के विविध व्यक्तियों की असहिष्णुता के कारण पारस्परिक संबन्ध भी गढ़ने पर हाल ओर बुरा हो जाती है । ऐसा न होने के लिए क्या करना है - इसका जवाब है 'हिन्दु गृहस्थ' शीर्षक उपन्यास। पाश्चात्य और भारतीय आचार विचार की तुलना करके उन्हें युक्त स्थान पर रखने में उनको सफलता मिली है । ततकालीन समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था, वर्ण विभाजन आदि को उन्होंने दिखाया है।

गंगाप्रसाद गुप्त

श्री गंगाप्रसाद गुप्त जी का जन्म सन् १७८५ ई. को काशी में हुआ । विद्यालयी शिक्षापूर्ण रूप

से प्राप्त करने में वे असफल रहे । स्वतंत्र रूप से उन्होंने हिन्दी, गुजराती, बंगला तथा मराठी भाषाओं का अध्ययन किया । साहित्य रचना के क्षेत्र में इन्होंने सन् १८०१ ई. से प्रवेश किया । 'नूरजहाँ' नामक मौलिक उपन्यास और 'पूना में हलचल' नामक रचना का अनुवाद उन्होंने अगले साल में ही किया । अंग्रेज़ी भाषा से रेनालड्स के 'द यंग फिशरमेन' नामक उपन्यास का अनुवाद उन्होंने 'किले की रानी ' नाम से किया था । इसके अलावा 'लक्ष्मी देवी', 'वीर पत्नी', 'हवाई नाव' आदि रचनाओं के नाम भी उल्लेखनीय ही है । तत्कालीन समाज का जीता जागता चित्रण गुप्त जी की रचनाओं में मिलते हैं ।

किशोरीलाल गोस्वामी

गोस्वामी का जन्म सन् १८६५ ई. में हुआ था । बचपन आरा में बिताने के बाद वे काशी पहूँचे। साहित्याभिरुचि बढ़ाने में यह सफर सहायक रहा । गोस्वामी जी के मातामह एवं भारतेन्दु जी के साहित्यिक गुरु गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्य जी की प्रेरणा से वे रचनाकार्य शुरू किये । 'उपन्यास' नामक मासिक पत्र का भी प्रकाशन उन्होंने किया । उनकी सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' है । 'प्रेममयी', 'तारा', 'चपला', 'तिलस्मी शीश महल' आदि उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

नारी जीवन और समाज के पुनरुद्धार के लिए वह लेखनी चलायी । कई उपन्यासों के अनुवाद भी उन्होंने किये । उसमें बंकिमचन्द्र चट्टोपध्याय का प्रसिद्ध उपन्यास 'इंदिरा' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी

द्विवेदी युगीन लेखकों में चतुर्वेदी इसलिए माननीय बनते हैं कि आप पौराणिक कथानक को आधार बनाकर उपन्यास लिखे । प्राचीन भारतीय गौरव व्यक्त करते हुए चतुर्वेदी जी 'सावित्री सत्यवान' नामक उपन्यास लिखा है ।

दुर्गाप्रसाद खत्री

भारतेन्दु युग के देवकीनन्दन के सुपुत्र थे दुर्गाप्रसाद । अपने पिता की तरह पुत्र भी जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों की परम्परा का प्रसार किया है । साथ ही साथ क्रांतिकारी उपन्यासों की रचना भी किया है । 'प्रतिशोध', 'लालपंजा', 'रक्तमंडल' आदि उनकी चर्चित उपन्यास है । 'अनंगपाल', 'एकलव्य', 'सागर सम्राट', 'अभाग का भाग्य' आदि उपन्यासों के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी

श्री मन्नन द्विवेदी जी द्वारा लिखित 'रामलाल' तथा 'कल्याणी' शीर्षक उपन्यासों का उल्लेख उपलब्ध है । पहले उपन्यास में ग्रामीण जीवन पर आधारित कथावस्तु का चित्रण उन्होंने किया । दूसरा उपदेशात्मक उपन्यास की कोटी में आनेवाला है ।

मिश्रबन्धु

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिश्रबन्धुओं के नाम न जाननेवाले कोई होगा ही नहीं । 'वीरमणी' नामक मध्यकालीन भारत से संबन्धित उपन्यास, 'पुष्यमित्र', 'विक्रमादित्य' आदि उनकी गणनीय

रचनाएँ हैं । धार्मिक विडंबनाओं का मार्मिक चित्रण उन्होंने किया है । धर्म के उत्थान की प्रेरणा देना उनका मुख्य ध्येय रहा ।

इनके अलावा जालिम सिंह, कृष्णलाल वर्मा, किशोरी लाल गुप्त, गौरचरण, मंगलदत्त शर्मा, बहुगुणा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । मौलिक उपन्यास के साथ साथ अनूदित उपन्यास के क्षेत्र में भी क्रियाशीलता रही । हरिकृष्ण जौहर द्वारा अनूदित 'नर पिशाच', प्रसाद मिश्र द्वारा अनूदित 'देवी', कमलानन्द सिंह द्वारा अनूदित 'आनन्दमठ' आदि उपन्यासों के नाम उललेखनीय हैं । अंग्रेज़ी और बंगाली भाषाओं से उपन्यासों का अनुवाद होते रहे ।

इस युग में कुरीति निवारण, समाज सुधार और भारतीय जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से उपन्यास लिखे गए । घटना वैचित्र्य, कल्पनाशीलता, सुधार भावना अदि के ज़रिए द्विवेदी युगीन उपन्यासकार हिन्दी उपन्यास को एक नया मोड़ देने में सफल रहे । सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को लेकर गंभीर उपन्यासों की रचना इस युग कों कम हुई ।

द्विवेदी युगीन निबन्ध की मुख्य प्रवृत्तियाँ

हिन्दी निबन्ध साहित्य का सुधारा रूप इस युग में सामने आया । सन् १९०० ई. से 'सरस्वती' का संपादन आरंभ होने के बाद निबन्ध को नवोन्मेष मिला । पं. महावीर प्रसाद जी द्वारा निर्धारित निबन्ध की राजमार्ग से अन्य साहित्यकार आने जाने लगे । निबन्ध में साहित्य और जीवन की विवेचना पहले भी हो रही थी, उसे द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल जैसे आचार्यों ने ज्ञान, तर्क व भावना से संपुष्ट कर दिया । अब द्विवेदी युग के प्रमुख निबन्धकारों के बारे में विचार विमर्श करेंगे ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार द्विवेदी जी हिन्दी निबन्ध साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। रेलवे से इस्तफा देने के बाद वह लेखन कार्य में मुग्ध रहे । सन् १९०३ ई. से सन् १९२० ई. तक 'सरस्वती' के संपादक के रूप में वे कर्मरत रहे । 'हिन्दी भाषा उत्पत्ति', 'कालिदास की निरंकुशता', 'आलोचनांजली', 'समालोचना समुच्चय', 'विचार विमर्श' आदि उनकी बहु चर्चित गद्य कृतियाँ हैं । 'भाषा और व्याकरण', 'व्याकरण तथा अपनी भाषा की बात', 'कवि और कविता', 'उत्तरीध्रुव की यात्रा', 'अपनी साहित्य की महत्ता' आदि उनकी प्रमुख निबन्ध रचनायें हैं । अपने निबन्धों से समकालीन लेखकों को प्रेरणा और निर्देशन देने की कोशिश द्विवेदी जी ने किया । इससे उनके युग में निबन्ध साहित्य की विशेष श्री वृद्धि हुई ।

बालमुकुन्द गुप्त

गुप्त जी का जन्म सन् १८९१ ई. में गुडियाना नामक गाँव में हुआ था । प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला से करने के बाद 'मथुरा अख़बार' नामक अख़बार का प्रकाशन आरंभ किया । इसके अलावा उन्होंने 'भारत प्रताप', 'अवध पंच', 'हिन्दी बंगवासी' आदि अख़बारों का भी संपादन किया। देश प्रेम, लोकहित, कर्तव्य भावना आदि विषयों को उन्होंने निबन्ध का विषय बनाया था । भाषा शैली की प्रौढ़ता, मुहासरा और लोकोक्तियों का प्रयोग आदि उनके लेखन की विशेषतायें हैं । 'शिव शंभु के चिट्ठे' और 'गुप्त निबन्धावली' उनके निबन्ध संग्रह हैं ।

माधवप्रसाद मिश्र

द्विवेदी युगीन निबन्धकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है मिश्र जी का नाम । पंजाब के हिसार जिले में सन् १८७१ ई. में उनका जन्म हुआ था । संस्कृत और हिन्दी भाषाओं पर आधिकारिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद दो तीन अखबारों के संपादन के रूप में काम किया । राष्ट्रीय भावना, उत्सव, तीर्थ स्नान जैसे विषयों पर उन्होंने कई निबन्ध लिखे । प्रभावात्मक सहज भाषा उनकी निबन्ध की विशेषता है । मिश्रजी के विख्यात निबन्धों में 'सब मिट्टी हो गया', 'रामलीला' आदि का उल्लेख किया जा सकता है । इनके निबघों का संग्रह 'माधव मिश्र निबन्धमाला' नाम से प्रकाशित हुआ है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरी जी की साहित्य क्षमता अप्रतिम थी । उनका जन्म सन् १८८३ ई. में हुआ था । हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी भाषाओं में उनका सम्यक ज्ञान था । काशी विश्वविद्यालय एवं अजमेर के मेव कॉलेज में अध्यापक थे गुलेरी जी । मार्मिक व्यंग्य, पांडित्य की छाप और सरल भाषा उनकी निबन्धों की खासियत है । 'कछुवा धरम' और 'मरेसि मोही कुठाव' उनके बहुचर्चित निबन्ध हैं ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (सन् १८६५ - १९४१ ई.)

हरिऔध जी निज़ामाबाद के निवासी थे । 'कबीर वचनावली की भूमिका', 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' जैसे रचनाओं में इन्होंने अपना निबन्धकार का रूप दिखाया है । भावात्मक भाषा में अपने विचार प्रकट करने की अद्‌भुत क्षमता उनको मिला था ।

डॉ. श्यामसुन्दर दास

डॉ. श्यामसुन्दर दास का जन्म सन् १८७५ ई. में तथा मृत्यु सन् १९४५ ई. में हुई थी । शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने अध्यापन कार्य आरंभ किया । सन् १९२१ ई. में वह काशी विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बने । हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए उन्होंने ढेर सारे काम किये। सामयिक साहित्यिक समस्याओं के आधार पर उन्होंने कई निबन्ध लिखे । उनमें से 'भारतीय साहित्य की विशेषतायें' नामक निबन्ध विशेषत: उल्लेखनीय है ।

शिवपूजन सहाय (सन् १८९३ - १९६३ ई.)

शिवपूजन सहाय जी का जन्म सन् १८९३ ई. में हुआ था । 'जागरण', 'शिक्षा', 'लक्ष्मी', 'मारवाडी सुधार' जैसे पत्र पत्रिकाओं के संपादन उन्होंने किया । इनके स्फुट निबन्धों का संग्रह 'कुछ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । इनकी भाषा शैली में गंभीरता और प्रौढ़ता मिलती है ।

गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थी का जन्म सन् १८९० ई. में तथा मृत्यु सन् १९३२ ई. में हुई । प्रयाग में भूजात उनकी शिक्षा ग्वालियार में हुआ । 'सरस्वती', 'अभ्युदय' जैसे पत्र पत्रिकाओं के संपादकीय विभाग से वह सम्बद्ध रहे थे । काव्यात्मक शैली से युक्त रचना उनकी खासियत है ।

मिश्रबन्धु

मिश्रबन्धुओं का नाम हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मशहूर है । मिश्रबन्धुओं में गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र और सुखदेवबिहारी मिश्र के नाम लिए जाते हैं । 'हिन्दी नवरत्न' उनके

आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है । 'पुष्पांजली', 'सुमनांजली' तथा 'आत्मशिक्षा' इनके अन्य निबन्ध संग्रह है ।

पूर्णसिंह

सरदार पूर्णसिंह का जन्म सन् १८८१ ई. में तथा मृत्यु सन् १९३१ ई. में हुआ था । आलोच्य युग के श्रेष्ठ निबन्धकार के रूप में आप गिने जाते हैं । नैतिक और सामाजिक विषयों संबन्धित कई निबन्ध उन्होंने लिखा । निबन्ध साहित्य के सीमाओं को पार करके अन्य गद्य साहित्य विधाओं में वह गया ही नहीं । 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मज़दूरी और प्रेम', 'कन्यादान' आदि उनके प्रमुख निबन्ध हैं ।

गोविन्दनारायण मिश्र

पंडित गोविन्द नारायण मिश्रजी का जन्म सन् १८५१ ई. में हुआ था । वह हिन्दी और संस्कृत के विद्वान थे । 'विभक्ति विचार', 'गोविन्द निबन्धावली', 'शिक्षा सोपान' आदि उनके प्रमुख निबन्ध संग्रह है । लंबी वाक्य उनकी रचनाओं की विशेषता है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी निबन्ध साहित्य के नवीन युग के प्रवर्तक के रूप में शुक्लजी माना जाता है । उनके कई विचारोत्तेजक निबन्ध 'नागरी प्रचारणी पत्रिका' में प्रकाशित हुए थे । 'भय और क्रोध', 'ईर्ष्या', 'घृणा' आदि निबन्ध आलोच्य युग में ही प्रकाशित हुए थे ।

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त मन्नन द्विवेदी, किशोरीदास वाजपेयी, शिवपूजन सहाय आदि निबन्धकारों का नाम भी उल्लेखनीय ही है । इन निबन्धकारों ने अनेक विषयों पर निबन्ध रचना करके हिन्दी निबन्ध को समृद्धि प्रदान की है । द्विवेदी युग में समाज की हीनावस्था, धार्मिक पतन, राष्ट्रीय समस्या आदि अनेक विषयों पर निबन्ध लिखे गए ।

द्विवेदीयुगीन कहानी की प्रवृत्तियाँ

गद्य के अन्य विधाओं की तरह कहानी के क्षेत्र में भी यह युग समृद्ध रहा । सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ साथ हिन्दी कहानी का प्रकाशन आरंभ हुआ । हिन्दी की प्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' का प्रकाशन सन् १९०० ई. में हुआ । प्रारंभिक कहानियाँ अंग्रेज़ी, बंगाली, संस्कृत नाटकों के आधार पर या तो जीवन के वास्तविक घटनाओं के आधार पर लिखे गये । आलोच्य युगीन कथा लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी, वृन्दावनलाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

'इंदुमती' कहानी शेक्सपियर के 'टेम्पस्ट' के आधार पर लिखी गयी है । भगवान दीन की 'प्लेग की चुडैल', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और बंगमहिला की 'दुलाईवाली' आदि कहानियों के नाम यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । कहानी के विविध विधाओं पर ध्यान रखते हुए लेखक कर्मरत रहे । इस प्रकार ऐतिहासिक कहानियों का श्रीगणेश 'राखीबन्द भाई' लिखकर वृन्दावनलाल वर्मा ने किया । काशी से प्रकाशित इन्दु' में प्रसाद के भावात्मक कहानी आने लगे ।

उर्दु क्षेत्र में पर्याप्त नाम कमाने के बाद प्रेमचन्द का ध्यान हिन्दी साहित्य की ओर

आया । 'सौत', 'पंचपरमेश्वर' जैसे कहानी 'सरस्वती' में छपे । चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की विख्यात कहानी 'उसने कहा था' भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई ।

द्विवेदी युग में कहानी पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गयी । वर्तमान के वास्तविक घटनाओं को लेकर प्रेमचन्द और कल्पना पर आधारित कहानी लेकर प्रसाद जी इस युग के संचालकों के रूप में कर्मरत रहे । प्रेमचन्द कहानी के क्षेत्र में अद्वितीय बने । उनके नाम से युग जानने भी लगे ।

नाट्य साहित्य

डॉ. नगेन्द्र की नाट्य साहित्य की दृष्टि से द्विवेदी युग को संपन्न नहीं मानते हैं । भारतेन्दु के बाद लगभग तीस साल तक यह शाखा हासोन्मुख रहा । नाटक तो लिखे गये थे, किन्तु महत्व कम ही रहे । वृन्दावनलाल वर्मा का 'सेनापति उदल', बद्रीनाथ भट्ट का 'चन्द्रगुप्त', जयशंकर प्रसाद का 'राज्यश्री', माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' के नाम उल्लेखनीय हैं । अन्य भाषाओं से कुछ नाटकों के अनुवाद भी उपलब्ध है ।

समीक्षा

अन्य गद्य विधाओं के समान समीक्षा के क्षेत्र में भी द्विवेदी युग में परिवर्तन आया । द्विवेदी युगीन समीक्षकों के बारे में आगे विचार करेंगे ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी ने हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किया है । 'आलोचनांजली', 'रसज्ञरंजन', 'हिन्दी नवरत्न', 'हिन्दी साहित्य की समालोचना', 'कालिदास की निरंकुशता' आदि आपकी आलोचना के अंतर्गत आनेवाले रचना है । उन्होंने कवियों को, पुराने विषयों को छोड़कर नये विषयों की ओर जाने की प्रेरणा दी । उन्होंने काव्य में यथार्थ वर्णन पर ज़ोर दिया ।

काव्य में सामान्य भाषा का प्रयोग करने से ही आस्वादक काव्यास्वादन कर पायेंगे । इसलिए उन्होंने सर्वग्राह्य भाषा का प्रयोग करने की सलाह कवियों को दी । खडीबोली को काव्य भाषा बनाने के लिए आप ने ढेर सारे प्रयत्न किए । विषय के अनुरूप छन्दरूप चुनने की मौका उन्होंने कवियों को दिया है । शब्दालंकार से ज़्यादा अर्थालंकार काव्य में लाने के पक्षवाले थे आप ।

नाटककारों को उन्होंने परंपरागत संस्कृत नाट्यरूपों का ज़्यादा उपयोग न करके युगानुरूप रचनायें करने की प्रेरणा दी, इसका कारण यह था कि संस्कृत में नाटक विषयक जो सूक्ष्म वर्गीकरण किया है अब उसकी ज़रूरत नहीं है । नाटककार उसके सैद्धान्तिक भेदाभेदों पर ध्यान देने में व्यस्त रहने से उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास हो पाना मुश्किल हो जायेगा ।

समीक्षा कैसे करना है, इसके बारे में द्विवेदी जी ने यों कहा है – "समीक्षक को यह चाहिए कि वह यह देखने की चेष्टा करें कि कोई कृति किस प्रकार की विषय वस्तु पर आधारित है । फिर उसकी शैली की परीक्षा करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उपयोगिता की दृष्टि से तथा मनोरंजन की दृष्टि से वह पुस्तक किस प्रकार की है ।"

आधुनिक हिन्दी समीक्षा का आरंभ इस प्रकार हुआ । सुधारपरक समीक्षा पद्धति के ज़रिए द्विवेदी जी अपने युग के लेखकों और कवियों को मार्गदर्शन देते रहे । तुलनात्मक समीक्षा को भी

आप प्रमुख स्थान दिया ।

मिश्रबन्धु

परंपरा से मान्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' और 'हिन्दी नवरत्न' नामक रचनायें की । हिन्दी नवरत्न में कवियों का श्रेणीकरण तुलनात्मक दृष्टिकोण से किया है । हिन्दी के नये समीक्षा क्षेत्र में नवीन दिशायें दिखाने में यह रचना सफल रहा ।

पदुमसिंह शर्मा

तुलनात्मक समीक्षा को सुव्यवस्थित रूप देनेवालों में शर्मा जी का नाम सुनहरें लिपि में लिखा है । 'पद्मपुराण', 'सतसई संहार' आदि आपकी समीक्षात्मक रचनायें हैं । 'बिहारी सतसई' की भूमिका में उनकी समीक्षात्मक लेखन है जिसमें आपने समीक्षात्मक दृष्टिकोण से बिहारी को ऊँचा स्थान देने की कोशिश की है ।

कृष्णबिहारी मिश्र

हिन्दी समीक्षा के विकास में कृष्णबिहारी मिश्र जी का नाम भी उल्लेखनीय है । 'देव और बिहारी', 'मतिराम ग्रन्थावली' आदि उनकी प्रमुख आलोचना ग्रन्थ है ।

लाला भगवान दीन, शचीरानी, प्रतापनारायण सिंह, सीताराम शास्त्री आदि लोगों के नाम भी यहाँ उल्लेखनीय हैं । हिन्दी आलोचना के विकास के बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे ।

जीवनी साहित्य का भी इस युग में विकास हुआ । ऐतिहासिक महापुरुषों, विदेशी महापुरुषों एवं महिलाओं से संबन्धित जीवनियाँ निकालने लगे । 'तपोनिष्ठ महात्मा अरविन्द घोष', 'स्वामी दयानन्द', 'छत्रपती शिवजी का जीवनचरित्र', 'जॉन स्टुर्वेट मिल', 'रानी मचानी' आदि जीवनियों के नाम उल्लेखनीय हैं ।

यात्रावृत्त, संस्मरण, ज्ञान का साहित्य आदि विधाओं में भी पर्याप्त विकास द्विवेदी युग में हुआ।

पत्र पत्रिकाओं का प्रचार द्विवेदीयुग में ज़्यादा था । हिन्दी प्रदेश में दो प्रकार की पत्र पत्रिकायें प्रकाशित होती थी, राजनीतिक एवं साहित्यिक । राजनैतिक पत्रिकाओं में कलकत्ता से प्रकाशित 'हितवाणी', प्रयाग से प्रकाशित 'कर्मयोगी', 'मर्यादा' आदि के नाम और साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रिकाओं में इलाहाबाद से प्रकाशित 'सरस्वती', काशी से प्रकाशित 'सुदर्शन', 'इन्दु', जयपूर से प्रकाशित 'समालोचक' आदि के नाम उललेखनीय हैं । आलोच्य युग की भाषा परिष्कार में पत्र पंत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान रहा ।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण से प्रेरणा पाकर आलोच्य युगीन लेखक रचनायें करते रहे । मुद्रणालयों की संख्या बढ़ने के कारण पुस्तकों को छापने की दिक्कत कम हो गयी । खडीबोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गयी । नागरी प्रचारणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी भाषा की कमियों को हटाने की श्रम में तल्लीन रहे । साहित्य का स्वर क्रमशः गंभीर हो गया और साहित्यकार अपने दायित्वों के बारे में समझकर काम करने लगे । इस प्रकार द्विवेदी युग में साहित्य के क्षेत्र में नवजागरण आया जिससे हिन्दी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई ।

द्विवेदी युग को 'जागरण सुधार काल' किसने कहा ? - डॉ. नगेन्द्र

'सरस्वती' का प्रकाशन वर्ष - सन् १९०० ई.

द्विवेदी जी सरस्वती का संपादक कब बना ? - सन् १९०३ ई. में

'काशी नागरी प्रचारणी सभा' की स्थापना - सन् १८९३ ई.

द्विवेदी युग की प्रमुख काव्य भाषा - खडीबोली

'भारतेन्दु प्रज्ञेन्दु' उपाधी से सम्मानित कवि - नाथुराम शर्मा शंकर

'राष्ट्रकवि' के रुप में जाननेवाला कवि - मैथिलीशरण गुप्त

खडीबोली का प्रथम महाकाव्य - प्रिय प्रवास

'साकेत' प्रबन्ध काव्य की नायिका - ऊर्मिला

किस पत्रिका के साथ ही हिन्दी कहानी का जन्म माना जाता है - सरस्वती

'बंग महिला' किसका उपनाम है ? - राजेन्द्र बालाघोष

'हिन्दी उपन्यास कोश' के संपादक - गोपाल राय

'हिन्दी-हिन्दु-हिन्दुस्तान' का नारा किसने दिया ? - प्रतापनारायण मिश्र

'हिन्दी नवरत्न' के लेखक - मिश्रबन्धु

हिन्दी की पहली आत्मकथा - अर्द्धकथा

Unit - 11

द्विवेदी युगीन हिन्दी निबन्ध

हिन्दी निबन्ध साहित्य का सुधारा रूप इस युग में सामने आया । सन् १९०० ई. से 'सरस्वती' का संपादन आरंभ होने के बाद निबन्ध को नवोन्मेष मिला । पं. महावीर प्रसाद जी द्वारा निर्धारित निबन्ध की राजमार्ग से अन्य साहित्यकार आने जाने लगे । निबन्ध में साहित्य और जीवन की विवेचना पहले भी हो रही थी, उसे द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल जैसे आचार्यों ने ज्ञान, तर्क व भावना से संपुष्ट कर दिया । अब द्विवेदी युग के प्रमुख निबन्धकारों के बारे में विचार विमर्श करेंगे ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार द्विवेदी जी हिन्दी निबन्ध साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। रेलवे से इस्तफा देने के बाद वह लेखन कार्य में मुग्ध रहे । सन् १९०३ ई. से सन् १९२० ई. तक 'सरस्वती' के संपादक के रूप में वे कर्मरत रहे । 'हिन्दी भाषा उत्पत्ति', 'कालिदास की निरंकुशता', 'आलोचनांजली', 'समालोचना समुच्चय', 'विचार विमर्श' आदि उनकी बहु चर्चित गद्य कृतियाँ हैं । 'भाषा और व्याकरण', 'व्याकरण तथा अपनी भाषा की बात', 'कवि और कविता', 'उत्तरीध्रुव की यात्रा', 'अपनी साहित्य की महत्ता' आदि उनकी प्रमुख निबन्ध रचनायें हैं । अपने निबन्धों से समकालीन लेखकों को प्रेरणा और निर्देशन देने की कोशिश द्विवेदी जी ने किया । इससे उनके युग में निबन्ध साहित्य की विशेष श्री वृद्धि हुई ।

बालमुकुन्द गुप्त

गुप्त जी का जन्म सन् १८९१ ई. में गुडियाना नामक गाँव में हुआ था । प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला से करने के बाद 'मथुरा अखबार' नामक अखबार का प्रकाशन आरंभ किया । इसके अलावा उन्होंने 'भारत प्रताप', 'अवध पंच', 'हिन्दी बंगवासी' आदि अखबारों का भी संपादन किया। देश प्रेम, लोकहित, कर्तव्य भावना आदि विषयों को उन्होंने निबन्ध का विषय बनाया था । भाषा शैली की प्रौढ़ता, मुहासरा और लोकोक्तियों का प्रयोग आदि उनके लेखन की विशेषतायें हैं । 'शिव शंभु के चिट्ठे' और 'गुप्त निबन्धावली' उनके निबन्ध संग्रह हैं ।

माधवप्रसाद मिश्र

द्विवेदी युगीन निबन्धकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है मिश्र जी का नाम । पंजाब के हिसार जिले में सन् १८७१ ई. में उनका जन्म हुआ था । संस्कृत और हिन्दी भाषाओं पर आधिकारिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद दो तीन अखबारों के संपादन के रूप में काम किया । राष्ट्रीय भावना, उत्सव, तीर्थ स्नान जैसे विषयों पर उन्होंने कई निबन्ध लिखे । प्रभावात्मक सहज भाषा उनकी निबन्ध की विशेषता है । मिश्रजी के विख्यात निबन्धों में 'सब मिट्टी हो गया', 'रामलीला' आदि का उल्लेख किया जा सकता है । इनके निबधों का संग्रह 'माधव मिश्र निबन्धमाला' नाम से प्रकाशित हुआ है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरी जी की साहित्य क्षमता अप्रतिम थी । उनका जन्म सन् १८८३ ई. में हुआ था । हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी भाषाओं में उनका सम्यक ज्ञान था । काशी विश्वविद्यालय एवं अजमेर के मेव कॉलेज में अध्यापक थे गुलेरी जी । मार्मिक व्यंग्य, पांडित्य की छाप और सरल भाषा उनकी निबन्धों की खासियत है । 'कछुवा धरम' और 'मरेसि मोही कुठाव' उनके बहुचर्चित निबन्ध हैं ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (सन् १८६५ - १९४१ ई.)

हरिऔध जी निज़ामाबाद के निवासी थे । 'कबीर वचनावली की भूमिका', 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' जैसे रचनाओं में इन्होंने अपना निबन्धकार का रूप दिखाया है । भावात्मक भाषा में अपने विचार प्रकट करने की अद्भुत क्षमता उनको मिला था ।

डॉ. श्यामसुन्दर दास

डॉ. श्यामसुन्दर दास का जन्म सन् १८७५ ई. में तथा मृत्यु सन् १९४५ ई. में हुई थी । शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने अध्यापन कार्य आरंभ किया । सन् १९२१ ई. में वह काशी विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बने । हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए उन्होंने ढेर सारे काम किये। सामयिक साहित्यिक समस्याओं के आधार पर उन्होंने कई निबन्ध लिखे । उनमें से 'भारतीय साहित्य की विशेषतायें' नामक निबन्ध विशेषत: उल्लेखनीय है ।

शिवपूजन सहाय (सन् १८९३ - १९६३ ई.)

शिवपूजन सहाय जी का जन्म सन् १८९३ ई. में हुआ था । 'जागरण', 'शिक्षा', 'लक्ष्मी', 'मारवाडी सुधार' जैसे पत्र पत्रिकाओं के संपादन उन्होंने किया । इनके स्फुट निबन्धों का संग्रह 'कुछ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । इनकी भाषा शैली में गंभीरता और प्रौढ़ता मिलती है ।

गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थी का जन्म सन् १८९० ई. में तथा मृत्यु सन् १९३२ ई. में हुई । प्रयाग में भूजात उनकी शिक्षा ग्वालियार में हुआ । 'सरस्वती', 'अभ्युदय' जैसे पत्र पत्रिकाओं के संपादकीय विभाग से वह सम्बद्ध रहे थे । काव्यात्मक शैली से युक्त रचना उनकी खासियत है ।

मिश्रबन्धु

मिश्रबन्धुओं का नाम हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मशहूर है । मिश्रबन्धुओं में गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र और सुखदेवबिहारी मिश्र के नाम लिए जाते हैं । 'हिन्दी नवरत्न' उनके आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है । 'पुष्पांजली', 'सुमनांजली' तथा 'आत्मशिक्षा' इनके अन्य निबन्ध संग्रह है ।

पूर्णसिंह

सरदार पूर्णसिंह का जन्म सन् १८८१ ई. में तथा मृत्यु सन् १९३१ ई. में हुआ था । आलोच्य युग के श्रेष्ठ निबन्धकार के रूप में आप गिने जाते हैं । नैतिक और सामाजिक विषयों संबन्धित कई निबन्ध उन्होंने लिखा । निबन्ध साहित्य के सीमाओं को पार करके अन्य गद्य साहित्य विधाओं में वह गया ही नहीं । 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मज़दूरी और प्रेम', 'कन्यादान' आदि उनके प्रमुख निबन्ध हैं ।

गोविन्दनारायण मिश्र

पंडित गोविन्द नारायण मिश्रजी का जन्म सन् १८५१ ई. में हुआ था । वह हिन्दी और संस्कृत के विद्वान थे । 'विभक्ति विचार', 'गोविन्द निबन्धावली', 'शिक्षा सोपान' आदि उनके प्रमुख निबन्ध संग्रह है । लंबी वाक्य उनकी रचनाओं की विशेषता है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी निबन्ध साहित्य के नवीन युग के प्रवर्तक के रूप में शुक्लजी माना जाता है । उनके कई विचारोत्तेजक निबन्ध 'नागरी प्रचारणी पत्रिका' में प्रकाशित हुए थे । 'भय और क्रोध', 'ईर्ष्या', 'घृणा' आदि निबन्ध आलोच्य युग में ही प्रकाशित हुए थे ।

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त मन्नन द्विवेदी, किशोरीदास वाजपेयी, शिवपूजन सहाय आदि निबन्धकारों का नाम भी उल्लेखनीय ही है । इन निबन्धकारों ने अनेक विषयों पर निबन्ध रचना करके हिन्दी निबन्ध को समृद्धि प्रदान की है । द्विवेदी युग में समाज की हीनावस्था, धार्मिक पतन, राष्ट्रीय समस्या आदि अनेक विषयों पर निबन्ध लिखे गए ।

Unit - 12

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी

गद्य के अन्य विधाओं की तरह कहानी के क्षेत्र में भी यह युग समृद्ध रहा । सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ साथ हिन्दी कहानी का प्रकाशन आरंभ हुआ । हिन्दी की प्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' का प्रकाशन सन् १९०० ई. में हुआ । प्रारंभिक कहानियाँ अंग्रेज़ी, बंगाली, संस्कृत नाटकों के आधार पर या तो जीवन के वास्तविक घटनाओं के आधार पर लिखे गये । आलोच्य युगीन कथा लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी, वृन्दावनलाल वर्मा, प्रेमचन्द जयशंकर प्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

'इंदुमती' कहानी शेक्सपियर के 'टेम्पस्ट' के आधार पर लिखी गयी है । भगवान दीन की 'प्लेग की चुडैल', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और बंगमहिला की 'दुलाईवाली' आदि कहानियों के नाम यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । कहानी के विविध विधाओं पर ध्यान रखते हुए लेखक कर्मरत रहे । इस प्रकार ऐतिहासिक कहानियों का श्रीगणेश 'राखीबन्द भाई' लिखकर वृन्दावनलाल वर्मा ने किया । काशी से प्रकाशित 'इन्दु' में प्रसाद के भावात्मक कहानी आने लगे ।

उर्दु क्षेत्र में पर्याप्त नाम कमाने के बाद प्रेमचन्द का ध्यान हिन्दी साहित्य की ओर आया । 'सौत', 'पंचपरमेश्वर' जैसी कहानियाँ 'सरस्वती' में छपे । चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की विख्यात कहानी 'उसने कहा था' भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई ।

द्विवेदी युग में कहानी पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गयी । वर्तमान के वास्तविक घटनाओं को लेकर प्रेमचन्द और कल्पना पर आधारित कहानी लेकर प्रसाद जी इस युग के संचालकों के रूप में कर्मरत रहे । प्रेमचन्द कहानी के क्षेत्र में अद्वितीय बने । उनके नाम से युग जानने भी लगे ।

नाट्य साहित्य

डॉ. नगेन्द्र जी की नाट्य साहित्य की दृष्टि से द्विवेदी युग को संपन्न नहीं मानते हैं । भारतेन्दु के बाद लगभग तीस साल तक यह शाखा ह्रासोन्मुख रहा । नाटक तो लिखे गये थे, किन्तु महत्व कम ही रहे । वृन्दावनलाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल', बद्रीनाथ भट्ट का 'चन्द्रगुप्त', जयशंकर प्रसाद का 'राज्यश्री', माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' के नाम उल्लेखनीय हैं । अन्य भाषाओं से कुछ नाटकों के अनुवाद भी उपलब्ध है ।

समीक्षा

अन्य गद्य विधाओं के समान समीक्षा के क्षेत्र में भी द्विवेदी युग में परिवर्तन आया । द्विवेदी युगीन समीक्षकों के बारे में आगे विचार करेंगे ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी ने हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किया है । 'आलोचनांजली',

'रसज्ञरंजन', 'हिन्दी नवरत्न', 'हिन्दी साहित्य की समालोचना', 'कालिदास की निरंकुशता' आदि आपकी आलोचना के अंतर्गत आनेवाली रचनायें हैं । उन्होंने कवियों को, पुराने विषयों को छोड़कर नये विषयों की ओर जाने की प्रेरणा दी । उन्होंने काव्य में यथार्थ वर्णन पर ज़ोर दिया ।

काव्य में सामान्य भाषा का प्रयोग करने से ही आस्वादक काव्यास्वादन कर पायेंगे । इसलिए उन्होंने सर्वग्राह्य भाषा का प्रयोग करने की सलाह कवियों को दी । खडीबोली को काव्य भाषा बनाने के लिए आप ने ढेर सारे प्रयत्न किए । विषय के अनुरूप छन्दरूप चुनने की मौका उन्होंने कवियों को दिया है । शब्दालंकार से ज़्यादा अर्थालंकार काव्य में लाने के पक्षवाले थे आप ।

नाटककारों को उन्होंने परंपरागत संस्कृत नाट्यरूपों का ज़्यादा उपयोग न करके युगानुरूप रचनायें करने की प्रेरणा दी, इसका कारण यह था कि संस्कृत में नाटक विषयक जो सूक्ष्म वर्गीकरण किया है अब उसकी ज़रूरत नहीं है । अगर नाटककार उसके सैद्धान्तिक भेदाभेदों पर ध्यान देने में व्यस्त रहेंगे तो उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास हो पाना मुश्किल हो जायेगा ।

समीक्षा कैसे करना है, इसके बारे में द्विवेदी जी ने यों कहा है – "समीक्षक को यह चाहिए कि वह यह देखने की चेष्टा करें कि कोई कृति किस प्रकार की विषय वस्तु पर आधारित है । फिर उसकी शैली की परीक्षा करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि उपयोगिता की दृष्टि से तथा मनोरंजन की दृष्टि से वह पुस्तक किस प्रकार की है ।"

आधुनिक हिन्दी समीक्षा का आरंभ इस प्रकार हुआ । सुधारपरक समीक्षा पद्धति के ज़रिए द्विवेदी जी अपने युग के लेखकों और कवियों को मार्गदर्शन देते रहे । तुलनात्मक समीक्षा को भी आप प्रमुख स्थान दिया ।

मिश्रबन्धु

परंपरा से मान्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' और 'हिन्दी नवरत्न' नामक रचनायें की । 'हिन्दी नवरत्न' में कवियों का श्रेणीकरण तुलनात्मक दृष्टिकोण से किया है । इस तरह हिन्दी साहित्य में तुलनात्मक आलोचना का श्रीगणेश मिश्रबंधुओं ने किया । हिन्दी के नये समीक्षा क्षेत्र में नवीन दिशायें दिखाने में यह रचना सफल रहा ।

पदुमसिंह शर्मा

तुलनात्मक समीक्षा को सुव्यवस्थित रूप देनेवालों में शर्मा जी का नाम सुनहरे लिपि में लिखा है । 'पद्मपुराण', 'सतसई संहार' आदि आपकी समीक्षात्मक रचनायें हैं । 'बिहारी सतसई' की भूमिका में उनकी समीक्षात्मक लेखन है जिसमें आपने समीक्षात्मक दृष्टिकोण से बिहारी को ऊँचा स्थान देने की कोशिश की है ।

कृष्णबिहारी मिश्र

हिन्दी समीक्षा के विकास में कृष्णबिहारी मिश्र जी का नाम भी उल्लेखनीय है । 'देव और बिहारी', 'मतिराम ग्रन्थावली' आदि उनकी प्रमुख आलोचना ग्रन्थ है ।

लाला भगवान दीन, शचीरानी, प्रतापनारायण सिंह, सीताराम शास्त्री आदि लोगों के नाम भी यहाँ उल्लेखनीय हैं । हिन्दी आलोचना के विकास के बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे ।

जीवनी साहित्य का भी इस युग में विकास हुआ । ऐतिहासिक महापुरुषों, विदेशी महापुरुषों एवं महिलाओं से संबन्धित जीवनियाँ निकलने लगे । 'तपोनिष्ठ महात्मा अरविन्द घोष', 'स्वामी दयानन्द', 'छत्रपती शिवजी का जीवनचरित्र', 'जॉन स्टुर्वेट मिल', 'रानी भवानी' आदि जीवनियों के नाम उल्लेखनीय हैं ।

यात्रावृत्त, संस्मरण, ज्ञान का साहित्य आदि विधाओं में भी पर्याप्त विकास द्विवेदी युग में हुआ।

पत्र पत्रिकाओं का प्रचार द्विवेदीयुग में ज़्यादा था । हिन्दी प्रदेश में दो प्रकार की पत्र पत्रिकायें प्रकाशित होती थी, राजनीतिक एवं साहित्यिक । राजनैतिक पत्रिकाओं में कलकत्ता से प्रकाशित 'हितवाणी', प्रयाग से प्रकाशित 'कर्मयोगी', 'मर्यादा' आदि के नाम और साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रिकाओं में इलाहाबाद से प्रकाशित 'सरस्वती', काशी से प्रकाशित 'सुदर्शन', 'इन्दु', जयपूर से प्रकाशित 'समालोचक' आदि के नाम उललेखनीय हैं । आलोच्य युग की भाषा परिष्कार में पत्र पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान रहा ।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण से प्रेरणा पाकर आलोच्य युगीन लेखक रचनायें करते रहे । मुद्रणालयों की संख्या बढ़ने के कारण पुस्तकों को छापने की दिक्कत कम हो गयी । खडीबोली पूर्णत: प्रतिष्ठित हो गयी । नागरी प्रचारणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी भाषा की कमियों को हटाने की श्रम में तल्लीन रहे । साहित्य का स्वर क्रमश: गंभीर हो गया और साहित्यकार अपने दायित्वों के बारे में समझकर काम करने लगे । इस प्रकार द्विवेदी युग में साहित्य के क्षेत्र में नवजागरण आया जिससे हिन्दी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई ।

द्विवेदी युग को 'जागरण सुधार काल' किसने कहा ? - डॉ. नगेन्द्र

'सरस्वती' का प्रकाशन वर्ष - सन् १९०० ई.

द्विवेदी जी सरस्वती का संपादक कब बना ? - सन् १९०३ ई. में

'काशी नागरी प्रचारणी सभा' की स्थापना - सन् १८९३ ई.

द्विवेदी युग की प्रमुख काव्य भाषा - खडीबोली

'भारतेन्दु प्रज्ञेन्दु' उपाधी से सम्मानित कवि - नाथुराम शर्मा शंकर

'राष्ट्रकवि' के नाम से जाननेवाला कवि - मैथिलीशरण गुप्त

खडीबोली का प्रथम महाकाव्य - प्रिय प्रवास

'साकेत' प्रबन्ध काव्य की नायिका - ऊर्मिला

किस पत्रिका के साथ ही हिन्दी कहानी का जन्म माना जाता है - सरस्वती

'बंग महिला' किसका उपनाम है ? - राजेन्द्र बालाघोष

'हिन्दी उपन्यास कोश' के संपादक - गोपाल राय

'हिन्दी-हिन्दु-हिन्दुस्तान' का नारा किसने दिया ? - प्रतापनारायण मिश्र

'हिन्दी नवरत्न' के लेखक - मिश्रबन्धु

हिन्दी की पहली आत्मकथा - अर्द्धकथा

Unit - 13

हिन्दी नाटक साहित्य : उद्भव और विकास

स्वरुप, गुण और विस्तार की दृष्टि से काव्य के अनेक भेद हैं । इन्द्रियों के आधार पर इसके दो भाग किये गये हैं - दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य । दृश्य काव्य नाटक कहलाता है ।

अनादिकाल से मानव के सहचर बने नाट्य परम्परा के सूत्र, भारतीय संदर्भ में सबसे पहले वैदिक काल में मिलते हैं । नाटक का पहला सूक्त ऋग्वेद के यम-यमी और पुरुरवा उर्वशी जैसे सूक्तों में प्राप्त हुआ है । इसके अतिरिक्त सामवेद के गीतों में, यजुर्वेद के अभिनय में और अथर्ववेद के रस में भी नाटक के प्रारम्भिक चिह्न मिलते हैं । भरत मुनि के अनुसार देवासुर संग्राम के बाद देवताओं ने नाटक की शुरुआत की थी ।

हिन्दी साहित्य में अठारहवीं सदी तक काव्य का एकाधिकार बना रहा । सामाजिक अवस्था, आध्यात्मिक दृष्टिकोण, दुःखवाद व राष्ट्रीय रंगमंच के अभाव के कारण नाट्य साहित्य उभरकर न आ सका ।

उन्नीसवीं सदी में भारत में जबरदस्त उथल-पुथल हुआ । अंग्रेज़ी साहित्य और पाश्चात्य दर्शन की प्रतिक्रिया में भारत में नव जागरण हुआ और भारतीय संस्कृति तथा विचार को सुदृढ़ करने की कोशिश शुरु हुई । संस्कृत नाट्य की विलुप्त होती हुई परम्परा की ओर भी इसी दौरान ध्यान गया। इसी समय देशी भाषाओं का महत्व बढ़ने लगा और लल्लूलाल जी तथा मुंशी सदासुख लाल आदि ने हिन्दी में रचना का कार्य शुरु किया । इसी काल में नाटकों की रचना का प्रयास शुरु हुआ।

हिन्दी साहित्य में नाटक साहित्य और नाटकों का वास्तविक आरम्भ भारतेन्दु काल से हुआ, क्योंकि भारतेन्दु से पूर्व जो नाटक लिखे गये उनमें नाटकीय शैली, क्रियाशीलता और रंगमंचीयता का अभाव है ।

हिन्दी का प्रथम नाटक कौन सा है? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र गिरिधरदास के 'नहुष' को हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि हिन्दी का पहला नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' है ।

हिन्दी नाटक साहित्य के उद्भव और विकास को विभिन्न नाटककारों के युग और प्रवृत्तियों के आधार पर विभजित किया है ।

१) भारतेन्दु युग २) संक्रान्तिकालीन युग

३) प्रसाद युग ४) आधुनिक युग ।

१) भारतेन्दु युग (१८६८-१९१०)

हिन्दी में नाट्य रचना का प्रयास पाश्चात्य नाटकों व बंगला नाटकों के प्रभाव से हुआ । जिसके सुचारु रुप से प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु बाबू को है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पूर्ववर्ती समय की

CUP/6181/08/500/SDE-7

उपर्युक्त तीनों नाट्य परम्पराओं को अपनाया और उनमें युगानुरूप सुधार एवं परिवर्तन किये । भारतेन्दु की नाट्य-रचना का प्रेरणा- स्रोत तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना है, जिसे एक श्रेष्ठ और सच्चे साहित्यकार होने के नाते उन्होंने उसे प्रमुख स्वर प्रदान करना अपना दातिय्व समझा । उन्होंने कुल अठारह (१८) मैलिक तथा अनूदित नाटकों की रचना की । उनका 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" (सन् १८७३ई.) हिन्दी का पहला मौलिक नाटक है ।

भारतेन्दु के नाटकों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है ।

१. अनूदित, २. रूपान्तरित और ३. मौलिक

१) अनूदित रचनाएँ
- १) रत्नावाली नाटिका
- २) पाखंड विडम्बन
- ३) धनंजय विजय
- ४) कर्पूर मंजरी
- ५) मुद्राराक्षस
- ६) दुर्लभ बन्धु

२. रूपान्तरित
- १) विद्यासुन्दर
- २) सत्य हरिश्चन्द्र

३. मौलिक रचनाएँ -
- १) प्रेमजोगिनी
- २) चन्द्रावली
- ३) भारत - जननी
- ४) भारत दुर्दशा
- ५) नीलदेवी
- ६) सती प्रताप (अपूर्ण)
- ७) विषस्य विषमौषधम
- ८) अन्धेर नगरी
- ९) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

इनमें से तीन प्रहसन है -
- १) वैदिकी हिंसा - हिंसा न भवति (सन् १८७३ई.)
- २) विषस्य विषमौषधम (सन् १८७०ई.)
- ३) अंधेर नगरी (सन् १८८१ई.)

कथावस्तु की दृष्टि से ये नाटक पौराणिक ('सत्य हरिश्चन्द्र', 'सतीप्रताप'), सामाजिक ('वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेम जोगिनी'), राजनैतिक ('भारत दुर्दशा', 'विषस्य विषमौषधम', 'अन्धेर

नगरी'), ऐतिहासिक ('नीलदेवी'), प्रेम सम्बन्धी ('विधासुन्दर' और 'चन्द्रावली') है । इन नाटकों में नाट्य-शास्त्र तथा पश्चिमी नाट्य - कला के तत्व समान रूप से पाये जाते हैं । कविता और गीति - बहुलता, व्यंग्य - विनोद, सामाजिक और राष्ट्रीय स्वर तथा आदर्शवादिता उनके नाटकों के प्रमुख गुण हैं । श्रृंगार, हास्य, करुण और वीर रसों को स्वीकार किया और सुखान्त एवं दुखान्त दोनों प्रकार के नाटक लिखे ।

भारतेन्दु युग की नाट्य-रचना के सम्बन्ध में दो बातें विशेष महत्वपूर्ण है । एक तो, इस युग के नाटकों में समय के साथ देवता, गन्धर्व, राक्षस आदि दैवी एवं पौराणिक पात्रों की कमी होती गई और इनके स्थान पर मनुष्य की बुद्धि और उसके भावों का चमत्कार दिखाया जाने लगा ।

दूसरी उल्लेखनीय बात, पद्य के स्थान पर गद्य के प्रयोग की प्रचुरता एवं व्रजभाषा के स्थान पर गद्य में अंशतः खड़ी बोली की स्थापना है । शैली की दृष्टि से इस युग के नाटकों में संस्कृत की शास्त्रीय - शैली (नांदी पाठ, भरत वाक्य, स्वगत भाषण, अंकावतार, काव्यात्मक वातावरण इत्यादि की योजना) का अनुकरण हुआ है । उसमें कहीं - कहीं पारसी नाटक शैली का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है ।

भारतेन्दु युग में लोगों की रुचि नवीन साहित्य के पठन-पाठन की ओर हो गई थी तथा नए-नए विषयों के प्रवेश से जन जागृति हो चुकी थी । अतः उस समय के नाटककारों ने भी इन नई प्रेरणाओं से नाना प्रकार की भावनाओं, घटनाओं और समस्याओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया और इनके महत्व का सुन्दर प्रतिपादन किया । इन नाटककारों में अधिकांश व्यक्तियों ने केवल एक ही नाटक लिखा है । किन्तु वही उनकी नाटक रचना की प्रतिभा का द्योतक है ।

इस युग में भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य नाटककार भी थे । जैसे -

बालकृष्ण भट्ट :- उनके द्वारा लिखे छः नाटक माने गये हैं । जिनका विवरण निम्न प्रकार है -

१) दमयन्ती स्वयंवर २) वेणु संहार, ३) जैसा काम वैसा परिणाम ४) पद्मावती ५) शर्मिष्ठा ६) चन्द्रसेन ।

लाला श्रीनिवासदास :- १) प्रह्लाद चरित्र

२) रणधीर प्रेम मोहिनी

३) संवरण

४) संयोगिता स्वयंवर

राधाचरण गोस्वामी :- गोस्वामी जी के लिखे तीन नाटक और चार प्रहसन मिलते है ।

नाटक १) सती चन्द्रावती, २) अमरसिंह राठौर, ३) श्रीदामा

प्रहसन - १) बूढ़े मुहं मुहासे २) तन मन धन - गोसाई जी के अर्पन,

३) भंग-तरंग ४) सरोजनी (अनुवाद)

राधाकृष्णदास :- आप भारतेन्दु के फुफेरे भाई थे । इन्होंने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की है। इनकी नाटक रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

१) दुःखनी बाला २) महारानी पद्मावती

३) धर्मालाप ४) महाराणा प्रतापसिंह ५) सतीप्रताप ।

भारतेन्दु काल के नाटककारों में राधाकृष्ण दास का स्थान सबसे श्रेष्ठ है ।

किशोरीलाल गोस्वामी :- गोस्वामी जी की तीन नाटक रचनायें मिलती हैं । जिनमें 'मयंक मञ्जरी' और 'नाट्य सम्भव' दो नाटक हैं तथा 'चौपट चपेट' प्रहसन है ।

२) संक्रान्तिकालीन युग (सन् १९००ई. -सन् १९१०ई.)

भारतेन्दु के बाद और प्रसाद के पहले तक का समय अनुवाद का युग है । इस समय अनेक अंग्रेज़ी और बंगला नाटकों का अनुवाद हुआ । यद्यपि इस बीच उच्च कोटि के मौलिक नाटकों की सृष्टि नहीं के बराबर हुई, तथापि अनुवादों के द्वारा अंग्रेजी और बंगला नाटकों की नई रचना - शैली के सम्पर्क में हिन्दी के नाटककार आए । बंगला से द्विजेन्द्रलाल राय और गिरीशचन्द्र घोष ने अंग्रेजी से शेक्सपियर के और फ्रेंच से मोलियर के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इस समय नाटककारों के दो वर्ग स्पष्ट दिखाई देते हैं । एक तो वे जो साहित्यिक नाटकों की रचना कर रहे थे और दूसरे वे जो नाटक मंडलियों के निर्देश पर केवल रंगमंचीय नाटक ही लिखते थे । इस भेद ने साहित्यिक और रंगमंचीय दोनों दृष्टियों से समन्वित और सामंजस्यपूर्ण कलात्मक तथा यथार्थवादी नाटकों के विकास में बड़ी बाधा पहूँचाई ।

३) 'प्रसाद युग' (सन् १९१०ई. - सन् १९३३ई.)

हिन्दी नाट्य साहित्य का पूर्ण - विकास जयशंकर प्रसाद के इस क्षेत्र में आगमन से हुआ । प्रसाद जी की प्रतिभा ने हिन्दी-नाट्य रचना को अधिक मौलिकता और कलात्मक प्रौढ़ता प्रदान की । उन्होंने एक नवीन नाट्य शैली को जन्म देकर आगे के नाटककारों का मार्ग - दर्शन किया । हिन्दी-साहित्य का यह विकास काल 'प्रसाद युग' के नाम से प्रसिद्ध है ।

प्रसाद जी ने विविध विषयात्मक एवं शैली विधानात्मक नाटकों का सृजन किया । उन्होंने पश्चिम में प्रचलित कई नाट्य शैलियों को अपनाया । उन्होंने हिन्दी नाटक को भारतेन्दु - युगीन धार्मिकता और पौराणिक रूढ़ियों से मुक्त किया । प्रसाद द्वारा लिखित नाटक निम्नलिखित है - १) करुणालय, २) सज्जन, ३) कल्याणी परिणय ४) प्रायश्चित ५) विशाख (६) अजातशत्रु, ७) कामना (८) जनमेजय का नागयज्ञ ९) स्कंदगुप्त (१०) एक घूँट ११) चंद्रगुप्त (१२) ध्रुवस्वामिनी ।

'सज्जन', 'कल्याणी-परिणय', 'करुणालय' और 'प्रायश्चित' एकांकी नाटक है । 'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़कर बाकी सभी नाटकों में प्राचीन इतिहास के (महाभारत से लेकर हर्षवर्धन के समय तक) पृष्ठों से कथावस्तु और पात्रों का चुनाव किया है और भारत की तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को प्राचीन सांस्कृतिक गुरुता से सुसज्जित किया है, फिर भी उनके नाटकों में वर्तमान की अनेक यथार्थ समस्याओं की छाया दिखाई पड़ती है । वर्तमान के प्रतिबिम्ब को अतीत के दर्पण में देखने का प्रयत्न ही - उनके नाटकों की संस्कृतिक चेतना है ।

'अजातशत्रु' में बौद्धकालीन, 'चन्द्रगुप्त' में मौर्यकालीन, 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में गुप्तकालीन और 'राज्यश्री' में हर्षवर्धन कालीन, 'जनमेजय के नागयज्ञ' में महाभारत कालीन

सांस्कृतिक गौरव के विभिन्न मानवीय रूपों को व्यापक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है ।

शिल्प - वैविध्य की दृष्टि से प्रसाद जी ने समस्या नाटक के रूप में 'ध्रुवस्वामिनी', भावात्मक, प्रतीकात्मक अथवा अन्योपदेश (एलीगेरी) के रूप में 'कामना', गीति - नाट्य के रूप में 'करुणालय' तथा एकांकी शैली में (एक घूँट) लिखकर नाट्य - साहित्य को समृद्ध बनाने एवं विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया ।

प्रसाद के नाटकों में भारतीय नाट्य- रचना शैली के अनुसार कथानक, अर्थ-प्रकृति, पताका, सन्धियों, नायक, प्रतिनायक, रस आदि सभी शास्त्रीय तत्व मिलते हैं, साथ ही पश्चिमी नाट्य रचना शैली की अनेक विशेषतायें भी उपलब्ध है । इनमें रस परिपाक के साथ कार्य-व्यापार और अन्तर्द्वन्द्व भी है, व्यक्ति - वैचित्र्य और चरित्र भी है । उनके नाटकों की कतिपय प्रमुख विशेषतायें ये हैं - सांस्कृतिक धारा के अक्षुण्ण प्रवाह की भावना, दार्शनिक चिन्तन, स्वाभाविक चरित्र कल्पना, राष्ट्रीयता का आग्रह, संघर्ष के द्वारा जीवन के मूल तत्व की खोज, नारी में शक्ति और चेतना की प्रतिष्ठा काव्यात्मकता का प्रवाह, प्रोज्वल - सशक्त भाषा - शैली, युगानुरूप नवीन नाट्य शिल्प । इन विशेषताओं ने हिन्दी नाटक को पूर्ण प्रौढ़ता और भव्यता का अधिकारी बनाया और प्रसाद को हिन्दी का श्रेष्ठ नाटककार ।

प्रसाद- युग के अन्य नाटककारों में ऐतिहासिक नाटकों की रचना करनेवाले हरिकृष्ण 'प्रेमी', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गोविन्द बल्लभ पन्त, उदयशंकर भट्ट और सेठ गोविन्ददास, पौराणिक नाट्य रचयिताओं में माखनलात चतुर्वेदी, सुदर्शन और बदरीनाथ भट्ट आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इनमें प्रेमी जी का 'रक्षा बन्धन', उग्र का 'महात्मा ईसा', सेठ गोविन्ददास का 'हर्ष', माखनलात चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध', उदयशंकर भट्ट का 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगन्धा', 'राधा' तथा सुमित्रानन्दन पन्त की 'ज्योत्सना' विशेष उल्लेखनीय है ।

इस काल के संपूर्ण नाट्य-साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक एवं अनूदित नाटकों की रचना के साथ ही प्रसाद जी द्वारा प्रवर्तित गीतिनाट्य, समस्या - नाटक, भावात्मक या प्रतीकात्मक और एकांकी शैली के नाटकों की भी रचना कर नाटककारों ने इन नाट्य विधाओं को विकसित करने में महत्वपूर्ण योग दिया ।

प्रसाद तथा प्रसाद - युग के नाटकों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद जी ने कला और वस्तु की दृष्टि से हिन्दी नाटकों को प्रौढ़ता प्रदान की । भारतेन्दु युगीन नाटकों में, जो धार्मिकता, रंगमंचीय दासता, संस्कृत शैली की रूढ़ि ग्रस्तता और भावुक सतहीपन या उससे मुक्ति पाने का प्रयत्न करते हुए प्रसाद जी ने मौलिक नाटकों की परम्परा को आगे बढ़ाया, नाटकों को अधिकाधिक लोकतांत्रिक रूप दिया । उन्हें राष्ट्रीय और सांस्कृतिक गुरुता प्रदान की और अपनी भाषा - क्लिष्टता, संस्कृत निष्ठता और अतीत प्रियता के बावजूद साहित्य के वर्तमान प्रवाह को आगे बढ़ाया।

जयशंकर प्रसाद

सज्जन - सन् १९१०-११ ई.

कल्याणी परिणय - सन् १९१२ ई

प्रायश्चित - सन् १९१४ई.

राज्यश्री - सन् १९१५ई.

स्कन्दगुप्त - सन् १९१८ई.

विशाख - सन् १९२१ई.

जनमेजय का नागयज्ञ - सन् १९२६ई.

कामना - सन् १९२७ ई

एक घूँट - सन् १९३० ई

चन्द्रगुप्त - सन् १९३१ ई

ध्रुवस्वामिनी - सन् १९३३ई.

हरिकृष्ण प्रेमी

रक्षा बन्धन - सन् १९३४ ई

शिवा साधना - सन् १९३७ ई

प्रतिशोध - सन् १९३७ ई

आहुति - सन् ९९४०ई.

लक्ष्मी नारायण मिश्र

सन्यासी - सन् १९३० ई.

राक्षस का मन्दिर - सन् १९३१ ई.

मुक्ति का रहस्य - सन् १९३२ ई.

राजयोग - सन् १९३३ ई.

सिन्दूर की होली - सन् १९३३ ई.

आधीरात - सन् १९३६ ई.

सेठ गोविन्द दास

विश्व प्रेम - सन् १९२९ ई.

पाकिस्तान

दलित कुसुम

पतित कुसुम

अशोक

विजयबेली

वृन्दावनलाल वर्मा

सेनापति ऊदल - सन् १९०९ ई

हंसमयूर

पूर्व की ओर

देखा देखी

केवट

मंगलसूत्र

प्रसादोत्तरकाल (सन् १९३३ई.-सन् १९४७ई.)

हिन्दी नाटकों का प्रसादोत्तर काल (सन् १९३३ई.-सन् ९४४७ई.) को स्वातंत्र्योतर काल भी कहते हैं । सन् १९४७ ई. से अद्यावधि काल कला की दृष्टि से संस्कृत रचना - शैलियों की रूढ़ियों से और कथावस्तु की दृष्टि से शनैः पुराण इतिहास और अतीतोन्मुखता से मुक्ति का काल है । प्रसादोत्तर काल में सम्पूर्ण नाट्य-लेखन हमारे सामने मुख्यतः दो धाराओं में आता है - एक तो प्रसाद के अनुकरण पर आदर्शोन्मुख स्वच्छन्दतावादी ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों का लेखन तथा दूसरा पाश्चात्य नाट्य-लेखक, इब्सन और शा के यथार्थवादी नाटकों से प्रेरणा लेकर लिखे गये नाटक, जिसके सूत्रधार है-पं लक्ष्मीनारायण मिश्र । सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को आधार बनाकर नाटक लिखने वालों में सेठ गोविन्ददास का नाम सर्वप्रथम आता है । इस काल में रचे गये सभी नाटकों पर चाहे उनकी कथावस्तु समकालीन जीवन के सामाजिक और राजनैतिक परिवेश से ग्रहण की गई हो अथवा इतिहास के पृष्ठों से उन पर यथार्थवाद तथा फ्रायड के मनोविश्लेषण वाद की स्पष्ट छाप दीख पड़ती है । समकालीन जीवन के सामाजिक परिवेश से लिये गये कथानकों पर आधारित जो नाटक लिखे गये उनका मूल स्वर सामाजिक पिछड़ापन, कुरीतियों, रूढ़ मान्यताओं एवं वर्जनाओं, अर्थगत एवं वर्गगत सामाजिक वैषम्यों, अन्याय और शोषण आदि से मुक्ति का स्वर है । इस स्वर और चेतना को उस काल के नाटककारों ने अपने नाटकों में तत्कालीन जीवन की विविध समस्याओं के यथार्थवादी चित्रण के द्वारा मुखरित किया है । इसलिए इस काल के नाटकों की मुख्य धारा को समस्या प्रधान नाटक का नाम दिया गया है । इस काल में प्राचीन साहित्य एवं इतिहास के कथा प्रसंगों का चयन कर उनकी वर्तमान राजनैतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में पुनर्व्याख्या करते हुए भी अनेक नाटक लिखे गये ।

नए नाटक की कड़ी - जगदीशचन्द्र माथुर

स्वतंत्रता के बाद एक नए बौद्धिक वातावरण का प्रारंभ हुआ । इस प्रक्रिया की शुरूआत सन् १९५०ई. के आसपास से होती है । वस्तुतः सन् १९५०ई. के बाद के हिन्दी साहित्य को देखें तो कविता, कहानी और नाटक में अद्‌भुत समानता दिखाई देती है । हिन्दी की इन विधाओं में इस समय जो मोड़ आता है, उसका एक स्रोत समकालीन राजनैतिक सामाजिक परिवेश, इतिहास की बदलती माँगें आदि में तो ढूँढा ही जा सकता है, किन्तु पश्चिमी प्रभाव को विशेष रूप से रेखांकित करने की आवश्यकता है । समस्याओं की जागरूकता को लेकर इब्सेन (सन् १८२८ई.-सन् १९०६ई.) ने यथार्थवाद के प्रवर्तन में नाटक के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उससे स्वच्छन्दतावादी नाटक का ह्रास ही नहीं हुआ, वह जीवंत समस्याओं से भी जुड़ गया और अनेक उपेक्षित भाषिक आयाम भी उभरे । हिन्दी का

यथार्थवादी नाट्य लेखन एक तरह से व्यर्थ नहीं गया । उसने स्वातंत्र्योत्तर नाट्य साहित्य को वह आधार बिन्दु प्रदान किया जिसकी परम्परा और प्रतिक्रिया को लेकर नये हिन्दी नाटक के विकास में नए मोड संभव हुए ।

पूर्ववर्ती नाट्य प्रवृत्तियों का पिष्टपेषण पुराने नाटककारों के द्वारा बहुत देर तक होते रहे, किन्तु सन् १९५०ई. के बाद हिन्दी नाटक के क्षेत्र में कुछ ऐसी कृतियाँ सामने आई जो एक नई दिशा का संकेत स्पष्ट करती है । इनमें जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोणार्क' (सन् १९५१ई.) का विशेष महत्व है । उसकी रचना आधुनिक नाटक के ऐसे प्रस्थान-बिन्दु पर हुई जब हिन्दी नाटक अपनी अपूर्णता के बोध के साथ प्रयोग केलिए आकुल हो रहा था । 'शारदीया', 'पहला राजा' आदि उनका प्रसिद्ध नाटक है ।

यथार्थवाद का उदय

यद्यपि यथार्थवाद की पंरपरा भारतेन्दु से ही प्रारम्भ हो जाती है और लक्ष्मीनारायण मिश्र से होती हुई आगे बढ़ती है, किन्तु यथार्थवाद का वास्तविक उदय एक विशिष्ट सामाजिक चेतना की देन कही जाती है । पश्चिम में इसका प्रादुर्भाव विज्ञान के विकास, औद्योगिक क्रान्ति तथा डार्विन, मार्क्स और फ्रायड के विचारों से सन् १८७५ई. - सन् १८९०ई. के बीच हुआ । हिन्दी में यथार्थवाद, प्रगतिवाद के साथ-पनपा । भारतेन्दु के निधन (सन् १८८५ई.) के बाद, हिन्दी में यथार्थवाद का एक और चरण सन् १९२९ई. में लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'सन्यासी' से प्रारंभ होता है । सन् १९३०ई. के बाद सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, गोविंद वल्लभ पंत, पृथ्वीनाथ शर्मा, वृंदावनलाल वर्मा, विनोद रस्तोगी, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि कई नाटककार इस क्षेत्र में आए ।

सेठ गोविंददास के अधिकांश नाटक राजनीति पर आधारित है । पर कुछ नाटकों में आधुनिक सामाजिक समस्याएँ भी हैं । उदयशंकर भट्ट ने पौराणिक नाटक और भाव नाट्यों की विशेष रचना की है । इसके बावजूद उनके 'विद्रोहिणी अंबा' तथा 'साग विजय' में नारी की मानापमान और पारिवारिक विद्वेष का यथार्थ चित्रण मिलता है । 'नया समाज' तथा 'कमला' जैसे नाटकों में भी यथार्थ जीवन समस्याओं के दर्शन होते हैं । यहीं नहीं मैथिलीशरण गुप्त के 'अनघ', घनानंद बहुगुणा के 'समाज', लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'मुक्ति का रहस्य', प्रेमचन्द के 'संग्राम' और 'प्रेम की बेदी', वृदांवन लाल वर्मा के 'बाँस की फांस' तथा 'खिलौने की खोज', पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा', भगवती बाबू का 'रूपया तुम्हें खा गया' आदि यथार्थवादी नाटक है ।

नाटक में यथार्थवाद मध्यवर्ग को लेकर आया। लक्ष्मीनारायण मिश्र, भुवनेश्वर, अश्क आदि उसके प्रतिनिधि नाटककार के रूप में उभरे । वस्तुतः यथार्थवाद के नाम पर इस समय कई धाराएँ दिखाई देती है । एक धारा जिसमें सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट आदि दिखाई देते हैं; दूसरे में लक्ष्मीनारायण मिश्र समस्या नाटक के कर्णधार के रूप में आते हैं । इन दोनों धाराओं में यथार्थवाद का प्रभाव मिलता है किन्तु आदर्श भी हावी लगता है । यथार्थवादी के उदय के साथ एक नाम जो विशेष रूप से उभरकर आता है; वह भुवनेश्वर का है । भुवनेश्वर को न शुद्ध यथार्थवादी कहा जा सकता है, न समस्या नाटककार और न एकदम विसंगत नाटककार ही । उनके प्रारंभिक नाटक यथार्थाद या समस्या से जुडे हैं, जबकि लक्ष्मीनारायण मिश्र, अश्क आदि यथार्थवादी नाटककार इस क्षेत्र में बाद में आये ।

समस्या नाटककार - लक्ष्मीनारायण मिश्र

एक भिन्न दिशा की ओर उन्मुख होने से पूर्व लक्ष्मीनारायण मिश्र छायावाद के प्रभाव में लिखते रहे । ऐतिहासिक नाटक 'अशोक' (सन् ९३२०ई.) लिखने के साथ ही अपने नाटकों की भूमिका में वे अपने सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए छायावाद और प्रसाद के घोर विरोध में उठ खड़े हुए ।

मिश्र जी के नाटकों को सामान्यतः समस्या नाटक' कहने की प्रथा - सी बन गई है; किन्तु उनको और उनके साथ उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट आदि को भी समस्या नाटककार की संज्ञा दी गई है । पर इब्सेन, शां और गार्ल्सवदी के नाटकों का संदर्भ लेकर कह सकता है कि 'प्रोब्लम प्ले' की संज्ञा जो मिश्र जी आदि पर थोप दिया गया है, वह बहुत दूर की कौड़ी जैसा है । आलोचकों ने समस्या नाटक की जो परिभाषाएँ दी हैं, समस्या नाटक केलिए यथार्थवादी जीवनदृष्टि आवश्यक है । जिसके साथ समसामयिक जीवन के प्रश्न उठाए जाए । पर समस्या नाटक के लिए समस्या ही काफी नहीं, समस्या सुंचितित भी होनी चाहिए, समसामयिक भी और उसके द्विपक्षीय बौद्धिक विश्लेषण भी । समस्या नाटक बौद्धिक, यथार्थवादी, रुढ़ि विध्वंसक और जीवन मूल्यों का निरूपक होने को बाध्य है। इस दृष्टि से मिश्रजी का नाटक 'संन्यासी' (सन् १९२७ई.) में विवाह और प्रेम को दो भिन्न तत्त्व माना है ।

'राक्षस का मंदिर' (सन् १९३२ई.) की समस्या आचरण से संबंधित है । मनुषय की सोच और कार्य में व्यक्त होनेवाला अंतर मुख्य विषय है । अन्य नाटकों में 'मुक्ति का रहस्य' (सन् १९३२ई.), 'सिन्दूर की होली' (सन् १९३४ई.), 'राजयोग' (सन् १९३४ई.) आदि उल्लेखनीय हैं ।

अधिकांश नाटकों की समस्या काम, प्रेम, विवाह आदि पर आधारित है । प्रायः सभी नाटक सामाजिक रुढ़ियों और विकृत परंपराओं पर आधारित हैं । उनके नाटकों के केन्द्र में नारी है ।

धर्मवीर भारती तथा काव्य नाटक की परंपरा

आधुनिक हिन्दी नाटक की वास्तविक यात्रा का संकेत् धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' (सन् १९५६ई.) से शुरु होता है । वस्तुतः एक नई दिशा का संकेत देने वाला नाटक 'अंधायुग' ही है, जिसने यथार्थवादी नाटक की सतही भाषाभूमि और सतही कथ्य की पद्धतियों को तोड़कर एक नई चिन्तन दृष्टि और भाषा दी । 'अंधायुग' से पहले कई गीति नाट्य लिखे गए । इनमें प्रसाद का 'करुणालय', गुप्त जी का 'अनघ', भगवती बाबू का 'तारा', उदयशंकर भट्ट का 'भावनाट्य' आदि उल्लेखनीय है।

आधुनिक हिन्दी नाटक का नया मोड़ - मोहन राकेश

'अंधायुग' अपनी विषयवस्तु की आधुनिकता, कथ्य की तीखी प्रक्रिया और भाषिक उपलब्धि की दृष्टि से नई संभावनाओं को लेकर आया; किन्तु गद्य नाटक के क्षेत्र में जो चुनौतियाँ उभरकर आई उनको पहले-पहल मोहन राकेश ने अपने 'आषाढ़ का एक दिन' में स्वीकार किया । सन् १९५०ई. के बाद नाटक के कथ्य, शिल्प और भाषा में जो परिवर्तन हुआ उस के लिए हिन्दी नाटक को कई परिवर्तनों से गुज़रना पड़ा ।

हिन्दी नाटक और रंगमंच के इस समकालीन विकास में हिन्दीतर लेखक-लेखन और रंगकर्म का बहुत बड़ा हाथ रहा है । स्वतंत्रता के बाद हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं और पश्चिम के नाटकों में एक

सामान्य स्तर नज़र आता है । हिन्दी में राकेश पहले नाटककार है जिन्होंने नाटक को एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य देने का पहला प्रयास किया ।

'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' आदि उनके द्वारा लिखित नाटक हैं। मोहन राकेश के नाटक आधुनिक भावबोध को व्यक्त करते हैं । उनके नाटकों में स्त्री-पुरुष संबंध नियति की त्रासदी और जीवन में स्थिति की प्रधानता के जीवन्त चित्र मिलते हैं ।

समकालीन दायित्व बोधः लक्ष्मीनारायण लाल

हिन्दी नाटक की सर्जनात्मक क्षमता में दो संरचनात्मक उपलब्धि दृष्टिगत होती है, उसका एक स्वरूप राकेश में मिलता है और दूसरा लाल में । वस्तुतः ये दोनों नाटककार प्रयोग के दो आयामों को उजागर करते हैं । लक्ष्मीनारायण लाल की विशेषता यह है कि वे जगदीशचंद्र माथुर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि के यथार्थवादी नाट्य चेतना को लेकर शुरुआत करते हैं, किन्तु प्रयोग करते करते लोक-तत्व, मिथक और 'ऐब्सर्ड' तक की यात्रा करते हुए कई रचनात्मक स्तरों तक पहुँचने का प्रयास करते दिखाई देते हैं । उनकी नाट्य रचना में कई मोड़ आते हैं और वे कहीं अपने को दुहराते नहीं मिलते।

'अंधा कुआँ (सन् १९५५ ई.)' ग्रामीण पृष्ठभूमि का ठोस यथार्थवादी नाटक है । 'रक्तकमल' (सन् १९६२ ई.) में लाल, शहरी यथार्थ की ओर उन्मुख हुए और यहीं से, कालांतर में एक भिन्न रूप में, स्वतंत्रता के बाद के जीवन की विसंगतियों का चित्रण उनका प्रमुख विषय बना ।

'मादा कैक्टस' (सन् १९५९ई.), 'दर्पण' (सन् १९६४ ई.), 'रात की रानी' (सन् १९६२ई.), 'अब्दुल्ला दीवाना' (सन् १९७३ई.), 'सूर्यमुख' (सन् १९६८ई.), 'कर्फ्यू' (सन् १९७२ई.), 'सगुन पंछी' (सन् १९७७ई.), 'सूखा सरोवर' (सन् १९६०ई.),एक सत्य हरिश्चन्द्र (सन् १९७६ई.), गंगामाटी (सन् १९७७ई.), 'मिस्टर अभिमन्यु (सन् १९७१ई.), 'कलंकी', आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं ।

'जन और मन का थेटर' उभारने और 'लीला नाटक' की अपनी परिकल्पना को साकार करने केलिए लाल ने 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' में लोक-तत्व का और भी विकसित प्रयोग कर दिखाया । मिथकीय नाटकों में उन्होंने युगीन समस्याओं को मिथकों के माध्यम से व्यंजित करने का प्रयास किया हैं ।

लाल ने भाषा के क्षेत्र में भी नए प्रयोग किए हैं। अपने नाटकों में कथ्य को दुहरा आयाम प्रदान करने वाले लाल समकालीन शब्दावली को पुरातन संदर्भ में प्रयुक्त कर अतीत और वर्तमान को जोड़ने का प्रयास करते हैं ।

स्त्री-पुरुष संबंध का नाटककार :- सुरेन्द्र वर्मा

मोहन राकेश के बाद एक नया नाम जो तेज़ी से उभर कर आया, वह सुरेन्द्र वर्मा का है । वस्तुतः सुरेन्द्र वर्मा अपने कथ्य, शिल्प, भाषिक प्रयोग और संवादीय, संरचना में कई स्तरों पर राकेश की वापसी की याद दिलाते हैं । समकालीन जीवन और आधुनिक बोध को लेकर जिस प्रकार की नाट्य सृष्टि राकेश ने 'आधे-अधुरे' में की, उसी के सूत्रों में से कुछ को रंगीनियों के साथ सुरेन्द्र वर्मा ने 'द्रौपदी' (सन् १९७२ई.) में प्रस्तुत करने का प्रयास किया । मिथक के माध्यम से समकालीन जीवन को अभिव्यक्त करने के बजाय समकालीन जीवन को मिथक के आधार पर रेखांकित करना 'द्रौ .दी'

को एक अलग से पहचान देता है ।

राकेश - 'आधे - अधूरे' तक आते-आते इतिहास विमुख होने लगे थे । किन्तु सुरेन्द्र वर्मा ने 'सेतुबंध', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' और 'आठवाँ सर्ग' में इतिहास का सहारा लेने की ज़रूरत महसूस की । 'छोटे सैयद बड़े सैयद' मुगलकालीन इतिहास की पृष्ठभूमि में तत्कालीन षडयंत्रों, हिंसा और कूटनीति पर आधारित है ।

सुरेन्द्र वर्मा के पात्र तनाव के बीच जीते और बोलते हैं । इसलिए उनके बोलने में आवेश, त्वरा, मौन, संकोचन, विस्तारण, प्रशासन आदि की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है । सुरेन्द्र वर्मा ने संवादों के बीच विराम की स्थिती का बहुलता से प्रयोग किया है । कथ्य के प्रति साहस और गर्मजोशी तथा भाषिक क्षमता की दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा के नाटक विशिष्ट हैं ।

ऐब्सर्ड के प्रभाव में रचित नाटक

ऐब्सर्ड के प्रभाव में आकर हिन्दी - नाटक में भद्दी, बेतुकी, भोंडी और अनर्गल स्थितियों का संयोजन एक सामान्य प्रवृत्ति बनी । मानव जीवन की विसंगतियों का दर्शन कराने केलिए नाटककारों ने अतिकल्पना, अतिरंजनापूर्ण कथावस्तु, सनसनीखेज, दृश्य योजना और विक्षोभ की भावना से परिपूर्ण कर विचित्र, हास्यास्पद, किन्तु कारूणिक चरित्रों का आश्रय लिया । इसके साथ उन्होंने विकृति, फैण्टसी और फार्स का प्रयोग कर अद्‌भुत प्रभाव पैदा करने की कोशिश की । मणिमधुकर, मुद्राराक्षस, लक्ष्मीकांत वर्मा, हमीदुल्ला, बृजमोहन शाह आदि के नाटकों में इसका सामान्य प्रयोग हुआ है । ऐब्सर्ड नाटक में शिल्प पर ज़रूरत से ज़्यादा बल दिखाई देता था ।

मणि मधुकर - रसगंधर्व (सन् १९७५ई.),

बोलो बोधिवृक्ष (सन् १९८०ई.), बुलबुल सराय (सन् १९७८ई.)

'खेला पोलमपुर' (सन् १९७९ई.)

'मुद्राराक्षस - तिलचट्टा' (सन् १९७३ई.), 'गुफाएँ' (सन् १९७९ई.)

'मरजीवा' (सन् १९७४ई.), 'योर्स फैथफुली' (सन् १९७४ई.)

लक्ष्मीकान्त वर्मा - 'रोशनी एक नदी है'

स्वतंत्रता के पश्चात् जो एकांकी साहित्य प्रकाशित हुआ, उसका वर्गीकरण अध्ययन की सुविधा केलिए निम्नांकित दो आधारों पर किया जा सकता है :-

रंगमंचीय और रंगमंचेतर ।

रंगमंचीय एकांकी - इस काल में एकांकी नाट्यकारों के दो वर्ग मिलते हैं - एक तो वे नाटककार हैं जिन्होंने रंगमंच से जुड़कर और रंगमंच केलिए एकांकियों की रचना की है । इनमें डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, राजेन्द्र शर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, विनोद रस्तोगी, लक्ष्मीकान्त वर्मा और शान्ति मेहरोत्रा के नाम उल्लेखनीय हैं ।

सन् १९५४ई. में प्रकाशित 'नदी प्यासी थी' में डॉ. धर्मवीर भारती के पाँच एकांकी संग्रहीत हैं। हिन्दी रंगमच के नये स्वरूप से जुड़कर लिखनेवाले एकांकीकारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाम

विशेष उल्लेखनीय है । 'मड़वे का भोर', 'ताजमहल के आँसू', 'तीन आँखों वाली मछली', 'पर्वत के पीछे', 'नाटक बहुरंगी', 'नाटक - बहुरुपी', 'सात रंग एकांकी', और 'दूसरा दरवाज़ा' में डॉ. लाल के एकांकी संग्रहीत है । मोहन राकेश की मृत्यु के पश्चात् उनके 'अंडे के छिलके' तथा अन्य एकांकी, 'बीज नाटक और रात बीतने' तक अन्य ध्वनि नाटक-ये दो एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए हैं । इनमें 'अंड के छिलके', 'प्यालियाँ टुटती हैं, 'शायद छः और छतरियाँ' प्रमुख हैं । स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर श्रेष्ठ रंग एकांकी लिखनेवालों में सुरेन्द्र वर्मा का नाम सर्वोपरि है । अब तक उनके 'शनिवार को दो बजे', 'वे नाक से बोलते हैं', 'हरी घास पर', 'घंटे भर मरणोपरान्त', 'नीन्द क्यों रात भर नहीं आती' आदि एकांकी प्रकाशित हो चुके हैं ।

'बहू की विदा', पुरुष का पाप', 'कसम कुरान की' 'निर्माण का देवता', 'काले कौए गोरे हंस', 'स्वर्ग के खण्डहर', 'गूँगी मछलियाँ' और 'जनतंत्र जिन्दाबाद' विनोद रस्तोगी की एकांकियों के संग्रह हैं ।

राजेन्द्र शर्मा के 'अटैची केस' में छः रंगमंचीय एकांकी तथा 'ग्राम पंचायत' में सात और 'किसान का धन' में पाँच एकांकी संग्रहीत है । 'आदमी का जहर' लक्ष्मीकान्त वर्मा के चार एकांकियों का संग्रह है । जिसमें 'आदमी का जहर' बहुत सशक्त रचना है । 'ओ मेरे सपने' जगदीश चन्द्र माथुर के पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह है ।

हिन्दी में एकांकी का उद्भव और विकास

गद्य की अन्य विधाओं के समान एकांकी-लेखन की शुरुआत भारतेन्दु युग से मानी जाती है । लेकिन एकांकी नाटक के संवाद-तत्व को तुलसी के 'रामचरितमानस' में 'अंगद-रावण संवाद' केशव की रामचन्द्रिका के 'रावण - बाणासुर संवाद' और नरोत्तमदास के सुदामाचरित् के पति-पत्नी संवाद आदि में देखा जा सकता है । सन् १८५०ई. के आस-पास लिखे गये 'इन्द्रसभा', 'बन्दर सभा', 'मुछन्दर सभा' आदि को हिन्दी के प्रारम्भिक एकांकियों में सम्मिलित किया जा सकता है ।

भारतेन्दु युग :- भारतेन्दु ने संस्कृत की एकांकी परंपरा की शैली पर अनेक समसामयिक एकांकी लिखे जिनमें 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौधम', 'अंधेर नगरी', 'धनंजय-विजय' आदि प्रमुख हैं । इन सभी में एक अंक का विधान किया गया है । और सभी में भारतेन्दु का दृष्टिकोण समसामायिक समस्याओं को अभिव्यक्ति देता रहा है । उन्होंने तत्कालीन रीति-रिवाज़ों, रूढ़ियों, सामाजिक बुराइयों आदि विषयों पर एकांकी लिखा । उनके एकांकी - लेखन पर फारसी रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट नज़र आता है । अंग्रेज़ी और बंगला साहित्य से भी वे बहुत प्रभावित रहे ।

भारतेन्दु युग के एकांकी साहित्य में श्रीनिवास दास का 'प्रह्लादचरित्', राधाचरण गोस्वामी का 'श्रीदामा नाटक', प्रतापनारायण मिश्र का 'कलि कौतुक', राधाकृष्णदास का 'दुःखिनी बाला', बालकृष्ण भट्ट का 'शिक्षा - दान', किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट - चपेट' आदि उल्लेखनीय हैं । भारतेन्दु युग के एकांकी लेखन में तत्कालीन जीवन का यथार्थ चित्रण, उद्देश्य में सांकेतिकता, संवादों में चुत्सी, राष्ट्र के प्रति अनुराग, प्राचीन भारत का गौरव- गान आदि विशेषताएँ मिलती हैं । इन्होंने भाषा के गद्य और पद्य दोनों ही रूप अपनाये गये हैं ।

द्विवेदी युग : द्विवेदी युग में हिन्दी एकांकी पाश्चात्य एकांकी- लेखन से प्रभावित रहा । इस युग में एकांकी का कला-पक्ष पाश्चात्य शैली के अनुरूप था, परन्तु वर्ण्य विषय प्रायः वे ही रहे जो भारतेन्दु युग में थे । समाज सुधार, राष्ट्र की उन्नति केलिए प्राचीन गौरव-गान, इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिकाओं के जीवन पर आधारित एकांकी द्विवेदी युग में लिखे गये । इस युग के प्रमुख एकांकियों में सियारामशरण गुप्त का 'कृष्ण', ब्रजलाल शास्त्री का 'नीला', 'दुर्गावती', 'पन्ना', रामसिंह वर्मा का 'रेशमी रुमाल', मंगला प्रसाद विश्वकर्म का 'शेरसिंह', बद्रीनाथ भट्ट का 'चुंगी की उम्मीद्वारी', उग्र का 'चार बेचारे' सुदर्शन का 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' आदि के नाम लिये जा सकते हैं । द्विवेदी युग में चार प्रकार के एकांकी लिखे गये :- सामाजिक, राष्ट्रीय-ऐतिहासिक, धार्मिक -पौराणिक और अनूदित । परिष्कृत भाषा, पद्य का पूर्ण बहिष्कार, कथानक की तीव्रता आदि को इस युग में विशेष महत्व दिया गया था ।

प्रसाद युग :- हिन्दी नाटक की भाँति एकांकी का वास्तविक आरम्भ प्रासदजी के 'एक घूँट' (सन् १९३०ई.) से माना जाता है । 'एक घूँट' में आधुनिक एकांकी - कला का परिष्कृत रूप सामने आया । प्रसाद की नाट्य - कला पर भारतीय और पाश्चात्य दोनों नाट्य - कलाओं का प्रभाव रहा है । 'एक घूँट' के पश्चात् भुवनेश्वर प्रसाद का 'कारवां' नामक एकांकी - संग्रह निकला । इस पर भी पाश्चात्य नाट्यकला का काफी प्रभाव है । डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम आधुनिक एकांकी के जन्मदाताओं में एक है । इन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के एकांकी लिखे । इनके 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई','चारुमित्रा','सप्त-किरण','चार ऐतिहासिक एकांकी','बदल की मृत्यु' 'इन्द्रधनुष', 'काम कंदला' आदि एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए । प्रसाद के 'एक घूँट' के बाद 'बादल की मृत्यु एकांकी', बहु चर्चित रहा । डॉ. वर्मा के एकांकियों की विशेषताओं के बारे में डॉ. बलवंत लक्ष्मण का कथन है - "डॉ. वर्मा ने सामाजिक तथा ऐतिहासिक एकांकी नाटकों द्वारा मनुष्य की करुणा, दया, त्याग आदि सात्विक वृत्तियों का चित्रण सुन्दर ढंग से किया है । उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों में नवजीवन तथा जीवन की व्यवहारिकता का आदर्श दिखाया है । सामाजिक एकांकी नाटकों में मध्यवर्गीय नागरिकों का जो जीवन चित्रित किया है, उसमें अधिकतर आधुनिक समाज की विशेषताओं के साथ उसकी कमज़ोरियों पर भी व्यंग्यात्मक आघात किया है । प्रसाद के समकालीन एकांकीकारों में जैनेन्द्र कुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकर, सूर्य किरण पारीख आदि उल्लेखनीय हैं । इनमें से कुछ लेखक प्रसाद के बाद प्रसादोत्तर युग में भी एकांकी - लेखन में रत रहे ।

प्रसादोत्तर युग :- प्रसादोत्तर युग में भवानी प्रसाद मिश्र, उपेन्द्र नाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट् आदि अनेक लेखकों ने इस विधा को अपनी लेखनी से समृद्ध किया । भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र ने पाश्चात्य एकांकी कला को आत्मसात करके हिन्दी एकांकी को विकसित किया । इनका पहला एकांकी संग्रह 'कारवाँ' सन् १९३५ई. में प्रकाशित हुआ । भुवनेश्वरजी की महत्वपूर्ण रचनाओं में 'श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना'. 'पतिता', 'एक साम्यहीन साम्यवादी', 'प्रतिभा का विवाह', 'रहस्य रोमांच', 'लाटरी', 'मृत्यु', 'सवा आठ बजे' 'इन्सपेक्टर जनरल सिकन्दर', 'अकबर और चंगेज खाँ' आदि प्रसिद्ध हैं । भुवनेश्वरजी ने सामाजिक, साम्यवादी, व्यंग्यात्मक, ऐतिहासिक सभी प्रकार के एकांकी

लिखे । इन पर बर्नाड शा और इब्सन का बहुत प्रभाव रहा । इन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है । 'शा' की छाया तनिक मुखर हो गई है, मैं इसे निर्विकार स्वीकार करता हूँ ।

उपेन्द्रनाथ अश्क: उपेन्द्रनाथ अश्क प्रतिभाशाली एकांकीकार हैं । इन्होंने मुख्यतः तीन प्रकार के एकांकी लिखे-

१. सामाजिक व्यंग्य - 'पापी', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'जोंक' आदि ।

२. सांकेतिक और प्रतीकात्मक -'चरवाहे', 'चिलमन', 'खिड़की चुम्बक', 'चमत्कार', 'सूखी डाली' आदि ।

३. मनोवैज्ञानिक एकांकी/प्रहसन - 'आदि मार्ग', 'बतसिया', 'जीवन साथी' आदि । आलोचकों ने अश्कजी के विषय में कहा है कि अश्क का एकांकी साहित्य परिमाण की दृष्टि से विशाल है । रूप और शैलियों की दृष्टि से विविधतापूर्ण है और कला की दृष्टि से अत्यंत प्रौढ़ है ।

उदयशंकर भट्ट ने अनेक एकांकी लिखे । 'एक ही कब्र में', 'दस हजार', 'दुर्गा'. 'नेता', 'सेठ लाभचन्द्र', 'मनु और मानव', 'बीमार का इलाज', 'नया नाटक', 'नये मेहमान' आदि बहुत से एकांकी लिखे । डॉ. नगेन्द्र ने भट्टजी की एकांकी कला के विषय में कहा है- ''भट्टजी की एकांकियों का संविधान रंगमंचीय है तथा उन्हें सरलता से अभिनीत किया जा सकता है ।"

इसी समय सेठ गोविन्ददास ने ऐतिहासिक एकांकी जैसे 'तेज बहादुर की भविष्य वाणी', सामाजिक समस्या प्रधान - 'मानव-मन', 'मंत्री', राजनैतिक - 'सच्चा कांग्रेस कौन' और पौराणिक - 'कृषि यज्ञ' आदि एकांकी लिखे । सेठजी का दृष्टिकोण आदर्शवादी रहा ।

जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी रचना में सामाजिक समस्याओं की प्रस्तुति, उनका समाधान और हास्य तथा व्यंग्य का मिश्रण आदि विशेषताएँ मिलती हैं । 'मेरी बांसुरी', 'भोर का तारा', 'कलिंग विजय', 'रीढ़ की हड्डी', 'कबूतरखाना', 'ओ मेरे सपने', 'शारदीय बंदी' आदि एकांकियों को बहुत प्रसिद्धि मिली।

समस्या नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने हिन्दी एकांकी की प्रगति में पर्याप्त योगदान दिया । उनके प्रमुख एकांकी संग्रहों में 'अशोक वन', 'एक दिन', 'कावेरी के कमल', 'स्वर्ग में विप्लव', 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी' आदि प्रमुख हैं । मिश्र ने अनेक सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं को बड़े आकर्षक रूप से प्रस्तुत किया है ।

विष्णु प्रभाकर ने अपने एकांकी में सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को उठाया है तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से चरित्रों का रेखांकन किया है । 'साँप और सीढ़ी', 'संस्कार और भावना' तथा 'मीना कहाँ है' आदि उनके प्रसिद्ध एकांकी हैं । एकांकी नाटक को एक विधा के रूप में अपनाने और विकसित करनेवालों में लक्ष्मीनारायण लाल का नाम प्रमुख है ।

लक्ष्मीनारायण लाल एकांकी रचनावली के माध्यम से उनके ९४ एकांकी समग्र रूप में सामने आए हैं । 'ताजमहल के आँसू' उनका पहला एकांकी था । अन्य प्रसिद्ध एकांकियों में 'दूसरा दरवाजा', 'खेल नहीं नाटक', 'एक घंटा' तथा 'बसन्त ऋतु' का नाटक आदि का नाम महत्वपूर्ण है।

६० के बाद के एकांकीकारों में मोहन राकेश का नाम नाट्य - शिल्प के प्रति उनकी सजगता के कारण उल्लेखनीय है । 'अण्डे के छिलके', 'शायद' और 'बहुत बडा सवाल' उनके प्रमुख एकांकी हैं । मोहन राकेश के बाद एकांकी का स्वरूप काफी बदला है । अवधारणा के स्तर पर ७० और ९० के बीच उभरे नाट्यलेखक एकांकी की जगह लघु नाटक या छोटा नाटक कहना पसन्द करते हैं । नाटक होना पहली अनिवार्यता है, शेष आकार और वस्तु के ट्रीटमेंट से तय होता है । इसीलिए रमेश बक्शी अपने एकांकी नाटकों को छोटे नाटक कहना ठीक समझते हैं । कुसुमकुमार के संपादन में सात नाटककारों के छपे 'सात छोटे नाटक' इसी बात की पुष्टि करते हैं कि एकांकी का ढाँचा टूट चुका है और अब नाटक अपने स्वरूप में खुलकर सामने आ रहा है ।

रमेश बक्षी का 'पिन कुशन', 'विनय का स्वयं साक्षी' रामेश्वर प्रेम का 'रात देर तक' असगर वजाहत का 'सबसे सस्ता गोश्त', प्रताप सहगल का 'कुण्डली', 'समान्तर रेखाएँ' तथा कुसुम कुमार का 'चूहे' समकालीन एकांकी लेखन की समर्थ तस्वीर पेश करते हैं ।

सुरेन्द्र वर्मा, रमेश उपाध्याय, कणाद् ऋषि, भटनागर, रेवतीशरण शर्मा, चिरंजीत, मुद्राराक्षस, सिद्धनाथ कुमार आदि अनेक नाट्य लेखकों ने एकांकी - साहित्य को समृद्ध किया है और कर रहे हैं। रेडियो एवं दूरदर्शन पर छोटे नाटकों की माँग अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण भी छोटे नाटक अधिक लिखे जा रहे हैं । इसी बीच 'समकालीन लघु नाटक' (संपादक विष्णु प्रभाकर : सुरेन्द्र तिवारी) तथा नाटकों की विषय - वस्तु को आधारित कर गिरिराज शरण द्वारा संपादित एकांकी संग्रहों के सामने आने से पता चलता है कि एकांकी लेखन समकालीन दौर में भी अपनी पूरी ऊर्जा के साथ हो रहा है । यहाँ कुछ एकांकियों का जिक्र करना समीचीन होगा । प्रताप सहगल का 'शुरुआत से पहले' मणि मधुकर का 'जैसे जुगलबंदी', सुरेन्द्र तिवारी का 'दीवारें', रामेश्वर प्रेम का 'राजा नंगा है', बसन्त कुमार परिहार का 'इण्डिया गेट का मुकदमा' विनय का 'टुकडों में बंटा सुख', चिरंजीत का 'खजाने का साँप', कुसुम कुमार का 'विधिवत् प्रजा' आदि एकांकी नाट्य - लेखन के सशक्त नाटक कहे जा सकते हैं । परिमाण एवं गुण की दृष्टि से इतने नाटकों को पढ़कर यह एहसास होता है कि आने वाले समय में एकांकी नाटक या लघु नाटक और भी विकसित और समृद्ध होंगे ।

एकांकी और नाटक का अंतर

एकांकी	नाटक
एक अंक होता है	अनेक अंक होते हैं ।
एकांकी अपनी संक्षिप्तता	नाटक अपने विस्तार
के साथ अपने आप में पूर्ण होता है	के साथ अपने आप में पूर्ण होता है ।
सीमित पात्र होता है ।	अनेक पात्र होता है ।
एकांकी जीवन का एक पहलू, जीवन की	नाटक में जीवन का विस्तृत
एक भाग, घटना को लेकर घटित होती है ।	चित्रण होता है ।
संवाद बडे होते हैं ।	संवाद छोटे होते हैं ।

एकांकी १५ मिनट से एक घंटे की अवधि में नाटक के अभिनय में कई घंटे लग सकते हैं । समाप्त किया जा सकता है ।

रेडियो नाटक

विज्ञान के इस युग में रेडियो की लोक प्रियता बढ़ रही है । सन् १९३७ ई. में प्रसारित 'राधाकृष्ण' नामक नाटक सर्वप्रथम रेडियो नाटक माना जाता है । रेडियो नाटक में ध्वनि का उपयोग शब्द ध्वनि, वाद्य ध्वनि और प्रभाव ध्वनि के रूपों में होता है । रेडियो नाटक में पात्रों की संख्या कम होती है । रेडियो नाटक निम्न लिखित रूपों में प्रचलित हुआ है - रेडियो नाटक, रेडियो रूपक, रेडियो रूपान्तर, रेडियो फैंन्टसी, संगीत रूपक आदि । अनेक विख्यात नाटकों का रेडियो नाटक में रूपांतरण हो चुका है ।

प्रमुख नाटककार

हरिकृष्ण प्रेमी	- स्वर्ण विहान सन् १९३० ई
	रक्षा बन्धन सन् १९३४ ई
	शिवसाधना सन् १९३७ ई
	प्रतिशोध सन् १९३७ ई
	आहुति सन् १९४० ई
उपेन्द्रनाथ अश्क -	जय पराजय सन् १९३१ ई
	स्वर्ग की झलक सन् १९३८ ई
	छठा बेटा सन् १९४०
	कैद, सन् १९४३ई.
	उडान, सन् १९४५ई.
	अलग अलग रास्ते - सन् १९५३ई.
पंत	ज्योत्सना
जगदीश चन्द्र माथुर	कुंवर सिंह
	शारदीया
	बन्दिया
	कोणार्क
विष्णु प्रभाकर	स्वाधीनता संग्राम
डॉ. धर्मवीर भारती	अंधायुग
नरेश मेहता	सुबह के घंटे सन् १९५६ई.

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल	अन्धा कुआँ
	सुन्दर दास
	मादा
	रक्त कमल
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	पाखंड विडंबन
	धनंजय विजय
	कर्पूर मंजरी
	वैदिक हिंसा हिंसा न भवति
	सत्य हरिश्चन्द्र
	विषस्य विषमौषधं
	भारत दुर्दशा
	नीलदेवी
	अंधेर नगरी
प्रताप नारायण मिश्र	कलि कौतुक
	भारत दुर्दशा
	गोसंकट
	हठी हमीर
	संगीत शाकुंतल
राधाकृष्ण दास	दुक्खिनी बाला
	महारानी पद्मावती
	धर्मालाप
	महाराणा प्रताप सिंह
बालकृष्ण भट्ट	पद्मावती
	चन्द्रसेन
	किरातार्जुनीय
	शिशुपालवध
	सीता वनवास
राधाचरणा गोस्वामी	सुदामा नाटक
	सतीचन्द्रावली
	अमरसिंह राठौर

CUP/618/08/500/SDE-8

एकांकीकार

डॉ. रामकुमार वर्मा

पृथ्वीराज की आँखें	सन् १९३७ ई
रेश्मी टाई	सन् १९४१ ई
चारुमित्रा	सन् १९४३ ई
विभूति	सन् १९४३ ई
सप्त किरण	सन् १९४७ ई

डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा

पीले हाथ, बास की फ्रांस, कश्मीर का काँटा

उपेन्द्रनाथ अश्क

पापी, लक्ष्मी का स्वागत, अधिकार का रक्षक, स्वर्ग की झलक, अन्धी गली, सयाना मालिक।

जगदीश चन्द्र माथुर

मेरी बाँसुरी, भोर का तारा, रीढ़ की हड्डी, कलिंग विजय, खंडहर, मकडी का जाल, बन्दी

जयशंकर प्रसाद	एक घूँट
कामताप्रसाद गुरु	चन्द्रकला
रामनरेश त्रिपाठी	बा और बापु
	समानाधिकार
	कुणाल
	मंगल मन्दिर
	मौत के सिपाही
	एकलव्य
विष्णु प्रभाकर	ममता का विष
	पाप
	वीर पूजा
	माँ
	किरण और कुहासा
	रात दस बजे
प्रभाकर माचवे	पंचकन्या
	राम भरोसे
	पुराने चावल
	सलीम मेहरुन्नीसा

भरतभूषण अग्रवाल	भाग्यतारा
	तत्पश्चात
	जीवन की ओर
	परछाई
	लज्जा
धर्मवीर भारती	संगमरमर पर एक रात
	नीली झील
	आवाज का नीलाम
	सृष्टि का आखिरी आदमी

Unit - 14

गद्य की अन्य विधाएँ

जीवन और साहित्य का घनिष्ठ संबन्ध है । जीवन का जटिल इतिहास ही साहित्य का मुख्य विषय होता है। जीवनीपरक साहित्य में किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का कुछ वास्तविक घटनाओं के आधार पर वर्णन होता है। जीवनी परक साहित्य के जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, पत्र एवं डायरी आदि भेद हैं । विषय एवं शैली की दृष्टि से इनका अपना अपना महत्व है ।

जीवनी

'जीवनी' केलिए सामान्य मानव समाज में से किसी विशिष्ट व्यक्ति को चुन लिया जाता है और अधिक वास्तविकता तथा गहराई से उसके जीवन की समस्त पहलुओं को उजागर करता है । जीवनी वास्तव में एक मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है । लियोन एडेल ने लिखा है - 'A biography is a record in words of some thing that is as mercurial and as flowing as compact of temperament and emotion as a human spirit itself.'

इससे यह सुविदित होता है कि जीवनी में मनुष्य जीवन के उत्थान, पतन, सभी पक्षों का धारावाहिक रूप से वर्णन होता है ।

भारतेन्दु युग से पहले ही रासो शैली का जीवनी साहित्य, भक्तों की जीवनियाँ एवं बनारसीदास का 'अर्धकथानक' आत्मचरित उपलब्ध है। 'भक्तमाल', 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता, 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'अर्ध कथानक', 'पृथ्विराज रासो' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

भारतेन्दु युग के सर्वप्रथम जीवनी लेखक स्वयं भारतेन्दु ही हैं । 'चरितावली' में उन्होंने सोलह जीवन चरित लिखा है । 'बादशाह दर्पण' 'पंचपवित्रात्मा' आदि भी उनकी जीवनीपरक रचनाएँ हैं। इनमें साहित्यिक भाषा का रोचक प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु जी के अलावा, रमाशंकर व्यास, काशीनाथ खत्री, कार्तिक प्रसाद खत्री, देवी प्रसाद, मुंसिफ आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं । कार्तिक प्रसाद खत्री द्वारा लिखित 'मीराबाई का जीवन चरित्र' को साहित्यिक व्यक्तित्व पर लिखी हुई सर्वप्रथम जीवनी होने का श्रेय मिला है ।

बीसवीं सदी के साथ हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का प्रादुर्भाव हुआ । जीवनी साहित्य के विषय में जो कुछ भी उन्होंने लिखा वह 'सरस्वती' पत्रिका में प्रायः प्रकाशित हुआ। जीवनी चरित्र संबन्धी इनकी पाँच पुस्तकें हैं, इनमें से 'प्राचीन पंडित और कवि' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखे गए १७ जीवन चरित्र संबन्धी लेख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं । शिवनन्दन सहाय जी हिन्दी जीवनी साहित्य के मार्ग दर्शक के रूप

में विख्यात है । 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'गोस्वामी तुलसीदास' आदि की जीवनियाँ इनकी अमर देन है।

द्विवेदी युग में सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक पुरुषों की जीवनियाँ ही ज्यादा लिखे गए । वृन्दावनलाल वर्मा, बलदेव प्रसाद मिश्र, सूर्यकुमार, देवी प्रसाद आदि के नाम यहाँ स्मरणीय है। ये लेखक भारतीय जीवनी साहित्य की प्रगति के लिए सराहनीय प्रयास किया ।

वर्तमान काल में सन् १९३० ई. के पश्चात् कई जीवनियाँ प्रकाशित हुई । देवव्रत, संतोष सिंह, गोपिनाथ दीक्षित जैसे कई रचनाकारों ने जीवनियों की रचना की । हिन्दी साहित्य में प्राप्त साहित्यिक जीवनियों में व्रजरत्नदास कृत 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । सन् १९४४ ई में शिवरानी देवी द्वारा लिखित 'प्रेमचन्द घर में' प्रकाशित हुई । संस्मरणों में लिखा हुआ यह जीवन चरित्र अत्यन्त रोचक एवं मार्मिक है । उच्चकोटी की भाषा में प्रेमचन्द जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में शिवरानी देवी जी को सफलता मिली है । आलोच्य युग में राष्ट्रीय जीवन चरित्र एवं ऐतिहासिक जीवनचरित्र का प्रकाशन ज्यादा हुआ है। गोपिनाथ दीक्षित कृत 'जवाहरलाल नेहरू' गदाधर प्रसाद की 'देश पूज्य श्री राजेन्द्र प्रसाद' आदि राष्ट्रीय जीवनियों के साथ साथ सूर्यकुमार वर्मा कृत 'महारानी वायजा बाई सिन्धिया', नारायण चतुर्वेदी कृत 'राष्ट्र निर्माता मुसोलिनी' जैसे ऐतिहासिक जीवनियों के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

राहुल सांकृत्यायन द्वारा विरचित 'लेनिन', 'कॉर्लमार्क्स' इलाचन्द्र जोशी द्वारा लिखी हुई' विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर; रांगेयराघव कृत 'रत्ना की बात' जैसी रचनायें भी उपलब्ध है । ये सभी लेखक हिन्दी जीवनी साहित्य के विकास में विशेष योग देते रहे ।

जीवनी का विभाजन

१. वर्ण्य चरित्र के आधार पर

१. साहित्यिक पुरुषों की जीवनियाँ

२. राजनैतिक पुरुषों की जीवनियाँ

३. ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियाँ

४. धार्मिक पुरुषों की जीवनियाँ

शैली के आधार पर

१. संस्मरणात्मक शैली में लिखी हुई जीवनियाँ

२. निबन्धात्मक शैली में लिखी हुई जीवनियाँ

३. औपन्यासिक शैली में लिखी हुई जीवनियाँ

'प्रेमचन्द; कलम का सिपाही' अमृतराय

आत्मकथा

जीवनी किसी दूसरे व्यक्ति की लिखी जाती है, जबकि आत्मकथा अपने ही जीवन की लिखी

जाती है। आत्मकथा लिखने में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखक के पास ऐसा उन्मुक्त अन्तःकरण हो कि वह अपने दोषों और दुर्बलताओं को निःसंकोच स्वीकार कर सके। आत्मकथा में लेखक के बाह्य विश्व से संबन्धित मानसिक क्रियाओं - प्रतिक्रियाओं का विवेचन कलात्मक रूप से होता है । आत्मकथा में सत्यवादिता व यथार्थता का होना परम आवश्यक बात है। रोचकता, स्पष्टता, सत्यवादिता, ईमान्दारी एवं' संक्षिप्तता भी आत्मकथा में होना चाहिए । इन गुणों के संपन्न होने पर ही सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा बन सकती है।

हिन्दी साहित्य में सर्व प्रथम आत्मकथा सन् १९४१ ई में 'अर्द्धकथानक' नाम से बनारसीदास जीनै ने लिखा है । यह आत्मकथा हमें मध्यकालीन उत्तरी भारत की सामाजिक अवस्था तथा धनी और निर्धन लोगों के जीवन का असली रूप दे रहे हैं ।

भारतेन्दु युग में भारतेन्दु जी ने 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में अपने विषय में लिखने का प्रयास किया था । 'राधाचरण गोस्वामी का जीवन चरित्र', अंबिका दत्त व्यास का 'निजवृत्तान्त', श्रीधर पाठक का 'स्व जीवनी' आदि के नाम यहाँ स्मरणीय हैं ।

द्विवेदी युग में महावीरप्रसाद द्विवेदी जी 'मेरी जीवन रेखा' नामक लेख लिखकर आत्मकथा साहित्य को अग्रसर किया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने जीवन के कुछ पहलुओं को 'आत्मसंस्मरण' नाम से लिखा है । सन् १९३२ में 'हंस', आत्मकथा विशेषांक में पं विनोदशंकर व्यास, श्रीहरी, प्रेमचन्द्र जैसे लेखक अपने अपने जीवन के विषय में लिखा है ।

डॉ. श्यामसुन्दरदास की 'मेरी आत्म कहानी', प्रेमचन्द्र की 'मेरा जीवन सार', हीरानन्द शास्त्री की 'आत्मकथा के कुछ पन्ने', हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भीष्म पितामह के रूप में विख्यात अंबिका प्रसाद वाजपेयी की आत्मकहानी, पद्मलाल पुन्नलाल बख्शी की 'अपनी बात', बाबु गुलाबराय की 'मैं और मेरी कृतियाँ', राहुल सांस्कृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

वर्तमान काल में 'आत्मकथा' विधा प्रमुख विधा के रूप में आए । सुमित्रानंदन पंत का 'मेरा रचनाकाल', महादेवी वर्मा की 'अपने संबन्ध में', डॉ. रामकुमार वर्मा का 'मेरे जीवन के कुछ चित्र', शान्तिप्रिय द्विवेदी जी की 'परिवाजक की प्रजा', आचार्य चतुरसेन की 'मेरी आत्मकहानी', वृन्दावन लाल वर्मा की 'अपनी कहानी', बच्चन का 'नीड का निर्माण फिर' आदि के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं । हिन्दी आत्मकथा साहित्य निबन्धात्मक शैली में, संस्मरणात्मक शैली में और डायरी शैली में लिखी हुई है।

रेखाचित्र

रेखाचित्र साहित्य का वह गद्यात्मक रूप है जिसमें एकात्मक विषय विशेष का शब्द रेखाओं से संवेदनशील चित्र प्रस्तुत किया जाता है । महादेवी वर्मा ने रेखाचित्र की व्याख्या यों की है - "रेखाचित्र शब्द का जन्म और अर्थ विस्तार चित्रकला के क्षेत्र में हुआ है, जहाँ कुछ रेखाओं में अंकित

चित्र द्वारा हमें रंग और छायालोक से रहित किसी वस्तु या व्यक्ति की, उसे दूसरों से भिन्न करनेवाली विशेषताओं का प्रत्यभिज्ञान प्राप्त होता है।"

हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र का प्रारंभ भारेतन्दु युग से हुआ । इस युग में लिखे गए निबन्धों में रेखाचित्र की झलक मिल जाती है ।

हिन्दी साहित्य के प्रथम रेखाचित्र आचार्य पद्मसिंह शर्मा का है, जो 'पद्मपराग' में संग्रहीत है। उसके बाद श्रीराम शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। 'बोलती प्रतिमा' नाम से इनके रेखाचित्र प्रकाशित हुए । प्रकाशचन्द्र गुप्त की 'रेखाचित्र', 'पुरानी स्मृतियाँ' आदि के नाम भी यहाँ उल्लेखनीय हैं ।

रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें', 'लालतारा', 'गेहूँ और गुलाब', देवेन्द्र सत्यार्थी के 'एक युग एक प्रतीक' 'रेखाएँ बोल उठी', 'प्रेमचन्द्र; एक चित्र', 'अज्ञेय से मिलिए', महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएँ' (सन् १९४३ ई), 'अतीत के चलचित्र' (सन् १९४१ई), श्रृंखला की कडियाँ'(सन् १९५० ई), अज्ञेय की 'अरे यायावर रहेगा याद', (सन् १९५३ ई) आदि हिन्दी के प्रमुख रेखाचित्र है । शैली के आधार पर रेखाचित्रों के भेद ।

१. कथात्मक शैली में लिखे हुए रेखाचित्र
२. संस्मरणात्मक शैली में लिखे हुए रेखाचित्र
३. प्रतीकात्मक शैली में लिखे हुए रेखाचित्र

निराला के 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर', 'बकरिहा', देवेन्द्र सत्यार्थी के 'रेखायें बोल उठी', डॉ..रामविलास शर्मा के 'विराम चिह्न', जगदीशचन्द्र माथुर की 'दस तस्वीरें' आदि रेखाचित्र विधा के महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं ।

संस्मरण

संस्मरण में संस्मरणकार अपने व्यक्तिगत जीवन तथा अपने संपर्क में आए हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के किसी पहलू पर स्मृति के आधार पर प्रकाश डालता है । संस्मरण में संपूर्ण जीवन के कुछ विशिष्ट अंगों का प्रकाशन किया जाता है । संस्मरण दो प्रकार के होते हैं - अपने विषय में लिखे गए और अन्य लोगों के संबन्ध में लिखे गए ।

बालमुकुन्द गुप्त जी ने सन् १९०७ ई में 'प्रतापनारायण मिश्र' संबन्धी संस्मरण लिखा । कुछ आलोचक इसी रचना को सर्वप्रथम संस्मरण मानते है । डॉ. श्याम सुन्दरदास कृत 'लाला भगवान दीन'; इलाचन्द्र जोशी की 'मेरी प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ'; श्रीनिवास शास्त्री के 'मेरी जीवन स्मृतियाँ'; बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'मीर साहब संस्मरण'; राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह कृत 'टूटा तारा', 'सूरदास', सावनीसमां'; शान्तिप्रिय द्विवेदी जी के 'परिव्राजक की प्रजा', 'पथ चिह्न'; राहुल सांकृत्यायन के 'यात्रा के पत्रे'; जैनेन्द्र की 'ये और वे'; यशपाल के 'सिंहावलोकन'; उपेन्द्रनाथ अश्क की 'रेखाएँ और चित्र' आदि हिन्दी साहित्य के विख्यात संस्मरण हैं ।

शैली के आधार पर संस्मरण के भेद

१. आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए संस्मरण
२. निबन्धात्मक शैली में लिखे गए संस्मरण
३. डायरी शैली में लिखे गए संस्मरण
४. पत्रात्मक शैली में लिखे गए संस्मरण

स्वतंत्रता के पश्चात् पत्र पत्रिकाओं में कई संस्मरण प्रकाशित हुए ।

पत्र एवं डायरी

पत्र वह लेख है जो किसी दूर रहनेवाले व्यक्ति विशेष को प्रेषित किया जाता है और जिसमें उस दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावनाओं का उसकी रुचि, समझ एवं योग्यता के अनुसार कलात्मक ढंग से प्रकाशन किया जाता है ।

हिन्दी साहित्य में सर्व प्रथम पत्र लेखक होने का श्रेय भारतेन्दु जी को मिला है । इनके कुछ पत्रों का संग्रह 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' (तीसरा भाग) में दिया है । श्रीधर पाठक, बालकृष्ण भट्ट आदि के नाम भी यहाँ उल्लेखनीय हैं ।

द्विवेदी युग के पत्र लेखकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी का नाम आता है । इनके समस्त पत्रों का संकलन 'द्विवेदी पत्रावली' नाम से प्रकाशित किया है । अगला नाम पद्मसिंह शर्मा का है, इनके पत्रों का संग्रह 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' नाम से प्रकाशित किया है ।

प्रेमचन्द के पत्रों का संग्रह 'प्रेमचन्द चिट्ठीपत्र' नाम से अमृतराय ने सन् १९६१ई. में प्रकाशित किया । रामचन्द्र शुक्ल के कुछ पत्र 'द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र' में प्रकाशित किया है । आधुनिक काल में पत्र विधा का महत्व और बढ़ गया है । पत्र साहित्य के विकास में हिन्दी पत्र पत्रिकायें भी सहयोग दे रहा है ।

पत्र साहित्य को निम्नलिखित ढंग से विभाजित किया जा सकता है ।

१. साहित्यिक पत्र
२. आत्मकथात्मक पत्र
३. अन्य चरित्रमूलक पत्र
४. विचार प्रधान पत्र

डायरी

हिन्दी साहित्य की एक नवीनतम विधा है डायरी । हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम डायरी लेखक बालमुकुन्द गुप्त है । सत्यदेव अमेरिका के 'मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ'; राबी जी के 'बुकसेलर की डायरी'; भगवतीचरण वर्मा के 'डायरी का एक पृष्ठ'; गाँधीजी की दिल्ली डायरी; इलाचन्द्र जोशी के

डायरी के नीरस पृष्ठ; धर्मवीर भारती की 'ढेले पर हिमालय'; अश्क की 'ज्यादा अपनी कम परायी'; गुलाबराय जी की 'मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ'; रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'वाराणसी की डायरी'; मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' आदि हिन्दी डायरी साहित्य की उपलब्धियाँ हैं ।

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज फ्रान्सीसी शब्द है और अंग्रेज़ी शब्द रिपोर्ट से निकट संबन्ध रखनेवाला है । रिपोर्ट का आशय किसी घटना का यथा तथ्य वर्णन होता है । रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं । रिपोर्ताज की गणना स्थायी साहित्य में की जाती है । बाबु गुलाब राय ने रिपोर्ताज की परिभाषा इस प्रकार दिया है, ''रिपोर्ट की भाँति रिपोर्ताज घटना या घटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है, किन्तु उसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह बना रहता है, जो वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार का आवरण डाले उसको प्रभावमय बना देता है ।''

रिपोर्ताज का विकास यूरोप में हुआ । हिन्दी रिपोर्ताज के विकास में 'हंस' पत्रिका का योगदान उल्लेखनीय है । शिवदास सिंह चौहान के 'मौत के खिलाफ़ जिन्दगी की लडाई', रांगेय राघव के 'अदम्य जीवन' आदि उल्लेखनीय रिपोर्ताज है ।

यात्रा साहित्य

मनुष्यों ने पर्यटन के सुन्दर अनुभव शब्दों में उतारने का प्रयास किया । इसके कारण यात्रा साहित्य का विकास हुआ । यात्रा साहित्य की परिभाषा सुश्री महादेवी वर्मा जी ने इस प्रकार दिया है - 'संगीत थम जाने पर गायक जैसे भैरों के बाह्य और अपने गीत के संगीत पर विचार करने लगता है वैसे ही यात्री अपने यात्रा के संस्मरण दुहराता है । स्मृति के प्रकाश में अतीत कालीन यात्रा को सजीव कर देने का तत्व इस वर्णन को साहित्य का स्वरूप प्रदान करता है । पर्यटन के साथ पाठक भी अतीत में जी उठता है ।''

यात्रा साहित्य का विकास निबन्ध शैली में ही हुआ । शैली की दृष्टि से यात्रा साहित्य की निम्नलिखित भेद है -

१. आत्मपरक यात्रा साहित्य
२. विचारात्मक यात्रा साहित्य
३. संस्मरणात्मक यात्रा साहित्य
४. विवरणात्मक यात्रा साहित्य

सन् १८८३ई. में महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'लंदन यात्रा' यात्रा साहित्य का प्रथम ग्रंथ है । भारतेन्दु युग में भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखकों ने सुन्दर यात्रा वृत्तों की रचना की है । द्विवेदी युग में मुद्रणालयों की संख्या बढ़ने के साथ साथ पत्र पत्रिकायें निकलते रहे । उनमें यात्रा साहित्य को प्रमुख रूप से छापने लगे । शिवप्रसाद गुप्त कृत 'मेरी कैलाश यात्रा', 'कैलाश पथ पर' (राहुल),

'चीडों पर चाँदनी' (निर्मल वर्मा), 'अरे यायावर रहेगा याद' (अज्ञेय), 'राहुल यात्रावली' (राहुल) आदि हिन्दी के विख्यात यात्रावृत्त है।

यात्रावृत के प्रकार

१. सूचना और विवरण प्रधान यात्रावृत्त

'किन्नर देश में' - राहुल सांकृत्यायन

२. प्रकृति के संसर्ग से उद्भूत यात्रावृत्त

'पैरों में बाधकर' - रामवृक्ष बेनीपुरी

३. संस्मरणात्मक यात्रावृत्त

४. व्यक्तिगत पत्रों के रूप में लिखे गए यात्रावृत्त

साहित्यिक विधा के रूप में यात्र वृत्तान्त लिखनेवाले साहित्यकारों में राहुल सांकृत्यायन, काका कालेलकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ. नगेन्द्र, दिनकर, राजेन्द्र अवस्थी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

Unit - 15

हिन्दी आलोचना : उद्‌भव और विकास

आलोचना शब्द 'लोच' धातु से बना है । जिसका अर्थ है देखना । किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या या उसका मूल्यांकन ही आलोचना है । आलोचना के पूर्व 'सम' उपसर्ग जोडने से समालोचना शब्द बनते हैं जिसका अर्थ है संतुलित दृष्टि से किसी रचना के गुण दोषों का विवेचन ।

परिभाषा

कार्लाइन - आलोचना, पुस्तक के प्रति उद्‌भूत आलोचक की मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम है ।

डॉ. श्यामसुन्दर दास - साहित्य क्षेत्र में ग्रन्थ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबन्ध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है ।

आधुनिक हिन्दी समीक्षा की पृष्ठभूमि के रूप में हिन्दी रीति साहित्य शास्त्र को मान सकते है। हिन्दी के अधिकांश रीतिकालीन साहित्य आचार्य संस्कृत की वैचारिक उपलब्धियों से सुपरिचित थे और उससे व्यापक रूप से प्रभावित भी थे । हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग सर्व प्रमुख है । उस युग में कई साहित्यिक विधाओं का नवीनीकरण हुआ । इनमें से एक आलोचना भी है । "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के घटे न हिय को शूल" के उद्‌घोष के द्वारा वे साहित्य के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये ।

आलोचना पद्धतियाँ

ऐतिहासिक आलोचना

हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में यह सर्व प्रथम प्रणाली है । इसमें साहित्यकार के युग, उसकी परिस्थितियाँ और परिवेश को देखकर प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है । ऐतिहासिक आलोचना पद्धति के द्वारा अतीत साहित्य की उपलब्धियों का सुरक्षीकरण होता है ।

हिन्दी में ऐतिहासिक आलोचना के विकास में योग देनेवाले समीक्षकों में गार्सा द तासि, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । गार्सा द तासि ने हिन्दी साहित्य का इतिहास 'इस्तवार द ला लितेरात्यूर एन्दुई ऐन्दुस्तानी' शीर्षक से सन् १८३९ई. में प्रकाशित किया था । इसके बाद शिवसिंह सेंगर के द्वारा 'शिवसिंह सरोज' का प्रकाशन हुआ । इसके बाद सन् १८८१ में ग्रियर्सन का 'माडर्न वरनाक्युलर लिटरेचर आफ मार्डन हिन्दुस्तान' का प्रकाश हुआ । इसके बाद काशी नागरी प्रचारणी सभा द्वारा खोज रिपोर्ट का प्रकाशन

हुआ । मिश्रबन्धुओं (पं. गणेश बिहारी मिश्र, पं. श्यामबिहारी मिश्र, पं. शुकदेव बिहारी मिश्र) ने 'मिश्रबन्धु विनोद', के नाम में चार भागों में हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया । हिन्दी साहित्य के विकास का लेखा जोखा प्रस्तुत करनेवाला पहला ग्रंथ यही माना जाता है ।

ऐतिहासिक आलोचना के क्षेत्र में पं. रामचन्द्र शुक्ल का नाम सर्व प्रमुख है । 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक रचना में उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास का व्यवस्थित काल विभाजन किया है ।

सुधारपरक आलोचना

सुधारपरक आलोचना में समीक्षा साहित्य के गुण और दोष की विवेचना करने के साथ ही साथ समीक्षक रचनाकार को रचना के विषय में कुछ सुझाव भी देता है । हिन्दी में सुधारपरक आलोचना आरंभ करने का श्रेय पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को मिलता है । उन्होंने नवीन विषयों के आधार पर कविता लिखने की प्रेरणा कवियों को दिया । उन्होंने विविध लेखकों और कवियों को सुझाव देकर उनका मार्गदर्शन किया ।

तुलनात्मक आलोचना

तुलनात्मक आलोचना या कम्पारिटिव क्रिटिसिज्म में विषय में निहित तत्वों की तुलना उन्हीं के समान अन्य विषयों में निहित तत्वों से करके निष्कर्ष पर पहुँचता है । आधुनिक युग में तुलनात्मक आलोचना का प्रचार बहुत अधिक है । 'आलोचनांजली' नामक रचना में उन्होंने अश्वघोष कृत 'सौन्दरनन्द' काव्य की तुलना कालिदास से की है ।

मिश्रबन्धुओं की समीक्षा पद्धतियों में तुलनात्मक आलोचना का प्रमुख स्थान था । उन्होंने तुलनात्मक दृष्टिकोण से कवियों का श्रेणीकरण करके 'हिन्दी नवरत्न' नामक रचना की । इसमें उन्होंने विविध युगों की, विविध भाषाओं की, विविध लेखकों की तुलना की है । तुलनात्मक आलोचना प्रणाली को सुव्यवस्थित रूप में स्थापित करने का श्रेय पद्मसिंह शर्मा जी को है । 'सतसई संहार', 'बिहारी की सतसई' आदि में उन्होंने अपनी क्षमता दिखायी है । 'बिहारी की सतसई' में बिहारी की तुलना सतवाहन कृत 'गाथा सप्तशती' तथा गोवर्धनाचार्य कृत 'आर्या सप्तशती' से किया गया है । हिन्दी तुलनात्मक आलोचना क्षेत्र में उल्लेखनीय अगला नाम 'देव और बिहारी' के रचयिता कृष्णबिहारी मिश्रजी का है । इस रचना में उन्होंने काव्य के विविध पक्षों के आधार पर इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । इसके अलावा 'मतिराम ग्रन्थावली' की रचना भी उन्होंने की।

तुलनात्मक आलोचना के क्षेत्र में आनेवाला अगला नाम लाला भगवान दीन का है । 'बिहारी और देव', 'ठाकुर ठसक', 'राजविलास' आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ है । 'साहित्य दर्शन' नामक रचना के रचयिता शचीरानी गुर्ट, की नाम भी यहाँ उल्लेखनीय है ।

शास्त्रीय समीक्षा

शास्त्रीय समीक्षा में प्राचीन साहित्यशास्त्रीय और परंपरागत सिद्धान्तों के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है । आलोचना पद्धतियों में सबसे प्राचीन पद्धति यही है । आधुनिक हिन्दी में शास्त्रीय समीक्षा का आरंभ कविराजा मुरारीदान द्वारा लिखित 'जस्वन्तभूषण' नामक ग्रन्थ से माने जाते है । इसी परंपरा में आनेवाली कृतियों में प्रतापनारायण सिंह कृत, 'रस कुसुमाकर', कन्हैयालाल पोद्धार कृत 'काव्य कल्पद्रुम', 'रसमंजरी', भगवान दीन कृत 'अलंकार मंजुषा', रसाल कृत 'अलंकार पीयूष', हरिऔध कृत 'रस कलस', मिश्रबन्धुओं की 'मिश्रबन्धु विनोद', डा० श्यामसुन्दर दास कृत 'साहित्य लोचन', पं रामचन्द्र शुक्ल कृत 'चिन्तामणी' (दो भाग), 'रस मीमांसा' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'आशोक के फूल', पं विश्वनाथ प्रसाद जी की 'समसामयिक साहित्य' आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

प्रगतिवादी आलोचना

प्रगतिवादी आलोचना केलिए सामाजिक यथार्थवादी आलोचना, समाजवादी आलोचना आदि नाम भी प्रचलित है । इसमें साहित्य को वर्ग की उपज मानकर समाज की आवश्यकताओं के सहारे उसका मूल्यांकन किया जाता है । इसकी सबसे बडी कमी यह है कि इसमें प्रायः राजनीति के दर्पण में ही कृति को देखा जाता है, अतः साहित्य की उपेक्षा हो जाती है । प्रगतिवादी आन्दोलन मुख्यतः विदेशी साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी में आया ।

प्रगतिवादी आलोचकों में राहुल सांकृत्यायन का प्रमुख स्थान है । प्रगतिवाद को उन्होंने उच्च साहित्य के निर्माण में बाधक रुढ़ियों को हटानेवाले माध्यम के रूप में माना है । प्रगतिवादी आलोचकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय नाम डॉ. रामविलास शर्मा का है । प्रकाशचन्द्र गुप्त, मन्मथनाथ गुप्त, शिवदान सिंह चौहान, डॉ..रांगेय राघव आदि ने भी प्रगतिवादी आलोचना को महत्वपूर्ण योगदान दिया । प्रगतिवादी आलोचना में रचना के उद्देश्य का प्रमुख स्थान है । इसी कारण से वे अपनी वैयक्तिकता के कारा से बाहर निकालकर सामाजिक परिवेश से जूझते हैं ।

प्रयोगवादी आलोचना

हिन्दी में प्रयोगवादी आलोचना का आरंभ सन् १९२० ई के लगभग से माने जाते हैं । अज्ञेय प्रयोगवादी आलोचना के प्रमुख वक्ता थे । उनके विचार से प्रयोग एक साधन मात्र है । प्रयोग साहित्य की रचनात्मक प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग है । अज्ञेय के अलावा डॉ. धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर आदि प्रयोगवादी आलोचना के अग्रदूत है ।

मनोविश्लेषणात्मक आलोचना

मनोवैज्ञानिक आलोचना हिन्दी साहित्य क्षेत्र केलिए अपेक्षाकृत नवीन है । युरोप में एड्लर, फ्रॉयड, युंग जैसे मनोवैज्ञानिकों ने 'मनोविश्लेषण शास्त्र ' की नवीन व्याख्या करने के साथ साथ उस

पर आधारित नवीनतम सिद्धान्तों का प्रवर्तन भी किया । मनोवैज्ञानिक आलोचना में कवि के वैयक्तिक स्वभाव, परिस्थितियों एवं प्रभाव को उसकी कृति के आधार पर परखा जाता है । हिन्दी समीक्षकों में पं. रामचन्द्र शुक्ल, जैनेन्द्र कुमार, डॉ. नगेन्द्र, अज्ञेय, डॉ. देवराज, इलाचन्द्र जोशी आदि ने इसके विकास में विशेष रूप से योग दिया ।

व्याख्यात्मक आलोचना

व्याख्यात्मक आलोचना को इंटरप्रिटेटिव क्रिटिसिज्म भी कहते हैं । इसका आधार तो शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त ही है, साथ ही साथ नवीन तत्वों का समावेश भी इसमें दिखाई देता है । भारतेन्दु युग से ही व्याख्यात्मक प्रवृत्ति की शुरुआत हुई थी । ललिता प्रसाद सुकुल, परशुराम चतुर्वेदी आदि इसके वक्ता थे ।

नयी आलोचना

साहित्य के अन्य विधाओं के साथ साथ आलोचना के क्षेत्र में भी नयेपन का आविर्भाव हुआ। नये समीक्षक, समीक्षा को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा की स्थिति, विसंगति, विडंबना आदि को गणितीय पद्धति से आँका जाता है । नयी आलोचना के क्षेत्र में नेमिचन्द्र जैन, डॉ. नामवर सिंह, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, नलिन विलोचन शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । आज की नई समीक्षा पद्धति पर रेनसम, राबर्ट पेन, वारेन जैसे पाश्चात्य आलोचकों का प्रभाव देखा जा सकता है । डॉ. बच्चन सिंह की 'आलोचक और आलोचना', डॉ. नेमिचन्द्र जैन की 'अधूरे साक्षात्कार', डॉ. इन्द्रनाथ मदान की 'आज का हिन्दी उपन्यास' आदि नयी आलोचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय रचनायें है । नयी आलोचना में आलोचक रचना की आन्तरिक स्थान पर विशेष ध्यान देता है, अर्थात् यह देखा जाता है कि कृति का एक अंग दूसरे से, दूसरा तीसरे से किस प्रकार पिरोया गया है ।

हिन्दी आलोचना का इतिहास

आलोचना का विकास भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ होता है । इस युग के प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखक किसी न किसी पत्रिका के संपादक थे । उन पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यिक चर्चाओं में आलोचना के बीज विद्यमान थे । भारतेन्दु जी के 'नाटक' नामक निबन्ध में नाट्यालोचन की महत्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रस्तुति है । रीतिकालीन परंपरा के अनुसरण करते हुए लिखे गये सैद्धांतिक आलोचनाएँ भी इस युग में अन्यत्र मिलते हैं । जानकी प्रसाद, कृष्णलाल, प्रतापनारायण सिंह, शिवसिंह सेंगर आदि के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं ।

द्विवेदी युग में 'सरस्वती' के प्रकाशन आलोचना के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया । महावीर प्रसाद द्विवेदी पूरे युग को मार्गदर्शन करते हुए खडे रहे । समय समय पर उनके द्वारा लिखित आलोचनात्मक निबन्ध 'सरस्वती' में छापते रहे । अनेक आलोचनात्मक पद्धतियों का सूत्रपात भी इस

युग में हुआ । शास्त्रीय आलोचना पद्धति, तुलनात्मक आलोचना पद्धति, अनुसंधानपरक आलोचना पद्धति, परिचयात्मक आलोचना पद्धति, व्याख्यात्मक आलोचना पद्धति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आलोचना के क्षेत्र में क्रमशः पाश्चात्य प्रभाव बढ़ रहे थे ।

शुक्ल युग में आलोचकों के अगुआ रामचन्द्र शुक्ल थे । आलोचना को व्यवस्थित रूप प्रदान करने का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है । आलोचना के क्षेत्र में युग की माँग के अनुसार परिवर्तन आने लगे । आलोच्य युग में भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य शास्त्रों पर विवेचनात्मक ग्रन्थों की रचना हुई। गुलाबराय कृत 'नवरस', श्यामसुन्दरदास कृत 'रूपक रहस्य', विनोद शंकर व्यास कृत 'कहानीकला' आदि के नाम भारतीय काव्यशास्त्र ग्रन्थों में उल्लेखनीय हैं । सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में रामकुमार वर्मा कृत 'साहित्य समालोचना', रामचन्द्र शुक्ल कृत 'काव्य में रहस्यवाद' आदि प्रमुख हैं।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने यों लिखा है - "आचार्य शुक्ल ने आलोचना के निश्चित मानदंडों को स्थापित कर समीक्षा को व्यवस्थित रूप दिया था । इससे पहले आलोचना में गुण-दोष शैली के आधार पर वैयक्तिक रुचि का प्राधान्य था । आलोचना के सिद्धान्तों के निरूपण करने केलिए प्रधानतः उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र और गौणतः पाश्चात्य काव्यशास्त्र को आधार बनाया ।" शुक्ल जी ने हिन्दी आलोचना को व्यवस्थित रूप देकर काव्य की सत्ता को सामाजिक पृष्ठभूमि पर स्थापित किया और स्थाई प्रतिमानों की उद्‌भावना की । सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक आलोचना का प्रचार शुक्ल युग में हुआ ।

शुक्लोत्तर युग में हिन्दी आलोचना क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है - ''शुक्लोत्तर हिन्दी समीक्षा का विकास प्रमुख रूप से तीन धाराओं में हुआ । पहली धारा तो उन आलोचकों की थी जो शुक्लजी की समीक्षा पद्धति का अनुगमन करके प्राचीन, नवीन कवियों के काव्यकृतियों की व्याख्यात्मक आलोचना लिखने में प्रवृत्त हुए । इनमें विश्वनाथ मिश्र, सुधांशु, पंकज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इन आलोचकों को शुक्ल संप्रदाय के आलोचक कह सकते हैं । दूसरी धारा में हम उन छायावादी आलोचकों को रखते हैं जिन्होंने आत्मपरक शैली के काव्य मीमांसा का बीडा उठाया और आलोचना को प्रभाववादी ढंग से प्रचलित किया । शान्तिप्रिय द्विवेदी, मोहनलाल मेहतो, 'वियोगी' आदि इस कोटी के हैं । तीसरी धारा में वे प्रगतिशील आलोचक है, जो मार्क्सवाद के आधार पर सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यों की तुला पर साहित्य को तोलने में समीक्षा की उपादेयता स्वीकार करते हैं । रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहान प्रभृति लेखकों को उनका उन्नायक कहा जा सकता है ।"

शुक्ल जी के अनुगमन करनेवाले आलोचकों में से कुछ आलोचक उनके आलोचना सिद्धान्त में निहित श्रेष्ठता को स्वीकार करके उनकी त्रुटियों का निराकरण करते हुए नवीन आलोचना पद्धति को अपनाया । इस वर्ग में नन्ददुलारे वाजपेयी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

दार्शनिक आलोचना के क्षेत्र में विख्यात नाम डॉ. देवराज का है । इसके साथ साथ मनोविश्लेषणवादी आलोचना का भी विकास हुआ । प्रस्तुत शाखा के उन्नायकों में डॉ. देवराज उपाध्याय, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि प्रमुख हैं ।

आधुनिक युग में एक नवीन भाषा परक वस्तुनिष्ठ आलोचना पद्धति का विकास हुआ जो शैलीवैज्ञानिक आलोचना के नाम से जाना जाता है । इस विधा के आलोचकों में डॉ. सुरेशकुमार, डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. लक्ष्मीलाल वैरागी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । नयी समीक्षा तथा पुस्तक समीक्षा का प्रचार भी इस युग में हुआ । नयी समीक्षा में पूर्व प्रचलित सिद्धान्तों को स्वीकार किए बिना कृति की आलोचना की जाती है । डॉ. बच्चन सिंह, नेमिचन्द्र जैन जैसे आलोचक इस श्रेणी के हैं । पत्र पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षा के रूप में एक आलोचना पद्धति का विकास हो रहा है । सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना का विकास इस प्रकार हो रहा है ।

लिखा है, " रचनाकार जब समीक्षा का दायित्व लेता है तो निष्पक्ष नहीं रह पाता, उसकी सारी दलीलें और विवेचना कहीं अपनी रचनाओं केलिए जस्टिफिकेशन ही होने के बाध्य है ।" नई कहानी के सफल आलोचक थे यादव जी । कहानियाँ ज्यादा और आलोचना कम पढ़ने के कारण उन्हें नई कहानी के विभिन्न पहलुओं पर व्याख्या देने में कोई दिक्कत नहीं हुई ।

Unit - 16

हिन्दी के प्रमुख आलोचक

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का एक आलोचक के रूप में मूल्यांकन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया । द्विवेदी जी ने कवियों की भाषा आदि की कड़ी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बडा उपकार किया । द्विवेदी जी संस्कृत भाषा के पंडित थे । इसलिए उनकी आलोचना पद्धति में निम्न लिखित पद्धतियाँ दिखाई देते हैं -

क. आचार्य पद्धति
ख. टीका पद्धति
ग. शास्त्रार्थ पद्धति
घ. सूक्ति पद्धति
ङ. खंडन पद्धति
च. लोचन पद्धति

'रसज्ञरंजन', 'नाट्यशास्त्र' आदि की रचना आचार्य पद्धति या सैद्धान्तिक आलोचना पद्धति के आधार पर किया है । टीका पद्धति का प्रयोग उन्होंने कम ही किया है । 'भाषा और व्याकरण', 'नैषधचरित चर्चा' आदि समीक्षायें शास्त्रार्थ पद्धति, खंडन पद्धति की समीक्षा है । द्विवेदी जी की आदर्श आलोचन पद्धति लोचन पद्धति ही थे ।

कविता और पद्य के अन्तर बताते हुए उन्होंने लिखा है - आजकल लोगों ने कविता और पद्य को एक ही चीज़ समझ रखा है । यह भ्रम है । कविता और पद्य में वही अंतर है जो अंग्रेज़ी Poetry और Verse में हैं । किसी प्रभावोत्पादक और मनोरंजक लेख, बात या वक्तव्य का नाम कविता है, नियमानुसार तुली हुई स्तरों का नाम पद्य है ।

द्विवेदी जी ने विषयानुकूल भाषा के प्रयोग की सलाह दी । उनके विचार में एक कवि का काम यह है कि वह किसी वस्तु का वर्णन करने के पूर्व अपने हृदय में जो रसानुभूति अनुभव करे, उसको कुछ इस प्रकार से अभिव्यक्त करे कि पाठक के हृदय में वैसी ही अनूभूति हो । काव्य में छन्द विधान के विषय में एक ओर शास्त्रीय अनुगमन का समर्थन किया है तो दूसरी ओर उन्होंने छन्द की नई संभावनाओं के क्षेत्र में भी कवियों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है । आलोचकों से यह देखने की चेष्टा करने की प्रार्थना की कि कृति किस प्रकार की विषय वस्तु पर आधारित है । फिर उसकी शैली की परीक्षा करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि उपयोगिता की दृष्टि से तथा मनोरंजन की दृष्टि से वह पुस्तक किस प्रकार की है । और अंत में यह देखना है कि लेखक ने जिस उद्देश्य से पुस्तक लिखा है, वह पूर्ण होता है कि नहीं । निर्भीक होकर, तटस्थ रूप में समीक्षा करने की सलाह भी उन्होंने दिया है । यों

समीक्षा करने से पाठक को कृति के यथार्थ स्वरूप से परिचित कराने में दिक्कत नहीं होगी ।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

अज्ञेय स्वयं व्यक्ति के अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए रखने में आस्था रखनेवाले कलाकार है । उन्होंने लिखा है – "वास्तव में काव्य में कवि का व्यक्तित्व नहीं, वह माध्यम प्रकाशित होता है, जिसमें विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनाएं चमत्कारिक योग से युक्त होती है । काव्य एक व्यक्तित्व की नहीं एक माध्यम की अभिव्यक्ति है । उनका दृढ़ विश्वास है कि किसी भी कला सृष्टि का आरंभ तभी होता है जब व्यकित्व का संपूर्ण विलय हो जाय ।"

हिन्दी साहित्य में अज्ञेय आधुनिकता के जनक माने जाते हैं । अज्ञेय के व्यक्तित्व में रचनाकार, समीक्षक तथा व्यवस्थापक के गुण एक साथ मिलते हैं । उनके समीक्षात्मक स्वरूप के दर्शन हमें 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद' और 'हिन्दी साहित्य; एक आधुनिक परिदृश्य' में मिलेंगे । साहित्य की विभिन्न धाराओं, जीवन मूल्यों और रचनात्मक परिस्थितियों से संबद्ध निबन्ध 'त्रिशंकु', नामक संग्रह में उपलब्ध होते हैं । 'आत्मनेपद' में अज्ञेय ने अपनी रचना प्रक्रिया का विश्लेषण किया है । प्रयोगवाद की एक वैचारिक आधार भूमि तैयार करने हेतु उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनात्मक टिप्पणियाँ लिखी हैं ।

अज्ञेय हिन्दी मनोविश्लेषणात्मक आलोचना पद्धति के प्रमुख समीक्षक है । उनकी प्रारंभिक रचनाएँ मुख्यतः एडलर से प्रभावित थे । फ्रॉयड का प्रभाव भी उनमें है । उनके अनुसार किसी प्राणी के, जो अपने युग में जी रहा हो, उसके किसी महत्वपूर्ण अंश की खोज, उसके प्रेरक रूप में निरूपण, उस अंश का विश्लेषण एवं मूल्यांकन ही समीक्षा है । पॉल बैलरी, टी-एस. इलियट, एक.आर-लिविस आदि के प्रभाव भी उनमें पडा है । फ्रॉयड और एडलर के मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण ही उन्होंने यों लिखा - "आज का हिन्दी साहित्य अधिकांश में अतृप्ति का या कह लीजिए - लालसा का इच्छित विश्वास (विशफुल तिंकिंड़) का साहित्य है । व्यावहारिक और सैद्धान्तिक समीक्षाओं का सम्मिश्रण करनेवाले अधुनातन शैली को उन्होंने अपनाया था । स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी समीक्षा को विकसित करने में दिए योगदान को मानते हुए, स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी समीक्षा के नव-विकास को इनकी देन कहा गया है, अज्ञेय लेखक के निरन्तर प्रयोगशील बने रहने की माँग भी करते हैं ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उच्चकोटि के साहित्य - मर्मज्ञ तथा सृजनात्मक क्षमता संपन्न समीक्षक थे । इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान तथा साहित्य शास्त्र का गंभीर अध्ययन उन्होंने किया था । उन्होंने आलोचना के सिद्धान्तों को युगानुरूप नई व्याख्या दी । आचार्य शुक्ल की समीक्षा को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं ।

१. कवियों का विवेचन

२. साहित्यिक प्रवृत्तियों और धाराओं का विश्लेषण

'रस मीमांसा' उनके आलोचना सिद्धान्तों का संग्रह है । आप कवि कर्म को 'भावयोग' के रूप

में मानते हैं । भावयोग को काव्य की साधना मानते हुए उन्होंने कहा - ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की साधना केलिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते है और ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का समकक्ष मानते हैं ।''

शुक्ल जी रस-सिद्धान्त को एक व्यापक तथा सार्वकालिक सिद्धान्त के रूप में मानते हैं। उन्होंने रस की परिभाषा इस प्रकार दी है । ''लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है ।'' उनकी 'रस - मीमांसा', में रस का विस्तृत विवेचन किया है । शुक्ल जी, अनुभूति और उसके मार्मिक पक्ष की सफल अभिव्यक्ति को कवि की सफलता मानते हैं । रस को हृदय की मुक्तावस्था माननेवाले आप, रसानुभूति को केवल काव्य तक ही सीमित करना अनुचित मानते हैं । भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि का भी विस्तृत वर्णन उन्होंने किया है ।

हिन्दी समीक्षा को उनकी जो योगदान है, उसे नितान्त मौलिक बताते हुए जयचन्द्र राय ने लिखा है "वस्तुतः आचार्य शुक्ल में ही सर्व प्रथम उस संगति के दर्शन हुए जो हिन्दी आलोचना सिद्धान्तों को किसी प्राच्य अथवा पाश्चात्य सिद्धान्त से नहीं, अपने लक्ष्य ग्रन्थों और सृजनशील चेतना से जोडती है । इसलिए उन्हें मौलिक और उद्भावक आचार्य ही नहीं, बल्कि हिन्दी आलोचना का जन्मदाता कहना सर्वथा युक्तिसंगत है ।"

रामचन्द्र शुक्ल जी को हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में असाधारण महत्व मिलने का कारण यह है कि उन्होंने प्राचीन समीक्षात्मक सिद्धान्तों को आधुनिक चिन्तन से मिलाकर, उसका निरूपण करके समीक्षा के क्षेत्र में उनका प्रयोग किया ।

डॉ. गुलाबराय

डॉ. गुलाब राय आधुनिक हिन्दी समीक्षा की शास्त्रीय प्रवृत्ति के अंतर्गत उल्लेखनीय आलोचक है । काव्य और कला के संबन्ध विचार करते हुए डॉ. गुलाबराय ने भारतीय और पाशाच्त्य धारणाओं का परीक्षण किया है । उनकी कृतियों में 'नवरस', 'सिद्दान्त और अध्ययन', काव्य के रूप', 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

गजानन माधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध रचनाकार के साथ साथ प्रौढ़ चिन्तक भी थे । 'मुक्तिबोध के आलोचना सिद्धान्त' में पुष्पलता राठौर ने आलोचक के लिए उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतिमान प्रस्तुत किया है । यथार्थ से हटकर बनाई गई सृष्टि की ओर उन्होंने शंका के नज़र से देखा । उन्होंने लिखा है – ''पाठक का यह आदि कर्तव्य और प्रथम धर्म है कि वह कलात्मक सौन्दर्य को आत्मसात करते हुए कृति के मर्म में प्रवेश करें। कलात्मक सौन्दर्य तो वह सिंहद्वार है जिसमें से गुज़र कर ही कृति के मर्म क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।'' मुक्तिबोध जी ने ऐतिहासिक - समाजशास्त्रीय समीक्षा पद्धति का भी विश्लेषण किया है । 'कामायनी एक पुनर्विचार' में उन्होंने इसी पद्धति को अपनाया है । मुक्तिबोध के अनुसार समीक्षक या रचनाकार में भोक्ता एवं दर्शक के दो व्यक्तित्व अन्तर्भूत रहते हैं । 'एक साहित्यिक की डायरी', 'नये साहित्य का सौन्दर्य बोध', 'कामायनी : एक पुनर्विचार' जैसी रचनाओं

में उनके आलोचक व्यक्तित्व दर्शनीय है । आलोचना के बारे में उन्होंने लिखा है – ''रचना प्रक्रिया का जो सर्वाधिक मूल-स्थित, सर्वाधिक प्रच्छन्न किन्तु क्रमशः प्रकट होनेवाला जो अंश है, वह आलोचक के लिए सर्व प्रथम है । कथ्य का सार्थक विश्लेषण कर लेने के पश्चात् ही समीक्षा कृति के रूप में आता है ।'' मुक्तिबोध हिन्दी के अत्यन्त जागरूक सर्जक समीक्षक हैं ।

धर्मवीर भारती

'मानव मूल्य और साहित्य', 'दूसरा सप्तक' आदि रचनाओं ने भारती जी को आलोचना के क्षेत्र में मशहूर बनाया । उनके राय में साहित्य समीक्षा के लिए मूल्यों की परख करना समीक्षक का दायित्व है । एक समीक्षक की दृष्टि से भारती का समीक्षात्मक दृष्टिकोण अत्यन्त उदार, सर्वांगीण और वैज्ञानिक है । कथा साहित्य की समीक्षा केलिए भी उन्होंने एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान किया ।

डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी हिन्दी के प्रौढ़ शास्त्रीय समीक्षकों में शीर्षस्थ है । आप पं. रामचन्द्र शुक्ल के शिष्य थे । 'सूर साहित्य', 'सूर और उनका काव्य', 'साहित्य का मर्म', 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' आदि उनकी समीक्षात्मक रचनायें हैं । कुछ रचनाओं में उन्होंने साहित्य शस्त्र का सैद्धांतिक विवेचन भी किया है ।

हिन्दी समालोचना क्षेत्र में ऐतिहासिक आलोचना पद्धति को नई दिशा देने का श्रेय द्विवेदी जी को ही है । 'साहित्य का मर्म', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'विचार प्रवाह', 'अशोक के फूल' आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ है । आप साहित्य को साधन और मानव और उनके विकास को साध्य मानते हैं । उन्होंने लिखा है - "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ, जो वाग्जाल मनुष्य की दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है ।" अपनी व्यापक मानवतावादी ऐतिहासिक दृष्टि से द्विवेदी जी व्यक्ति एवं समाज, कल्पना एवं यथार्थ के बीच सामंजस्य लाने की कोशिश किया है । नितान्त कल्पना प्रसूत सौन्दर्य को सौन्दर्य मानने केलिए वे तैयार नहीं थे । इसे व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है, 'साहित्य के उपासक्त अपने पैर के नीचे की मिट्टी की उपेक्षा नहीं कर सकते । हम सारे बाह्य जगत को असुन्दर छोड़कर सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकते। सुन्दरता सामंजस्य का नाम है ..... साहित्य सुन्दर का उपासक है । इसलिए साहित्य को असामंजस्य को दूर करने का प्रयत्न पहले करना होगा ।" मनुष्यता को उन्होंने साहित्य और रस का पर्याय माना है ।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक के रूप में हिन्दी साहित्य क्षेत्र में विख्यात है । उनकी समीक्षा के स्वरूप की परिचायक रचना 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' है । प्रसाद जी ने काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति माना है । रस तत्व को उन्होंने काव्य का आभ्यन्तरिक तत्व माना है ।

सुमित्रानंदन पंत

'वीणा, 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगान्त', 'युगवाणी' जैसी रचनाओं में उनकी वैचारिक मान्यताओं

के स्पष्टीकरण मिलते हैं । काव्य को उन्होंने सत्यं-शिवं-सुन्दरं की अभिव्यक्ति माना है । छायावादी समीक्षा के अंतर्गत पंत जी के साथ-साथ महादेवी वर्मा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, गंगाप्रसाद पांडेय आदि के नाम भी स्मरणीय हैं ।

राहुल सांकृत्यायन

राहुल जी के समीक्षात्मक विचारों का परिचय 'हिन्दी काव्यधारा', 'साहित्य निबन्धावली' जैसे कृतियों में दर्शनीय है । प्रगतिवादी आलोचकों में राहुल जी का प्रमुख स्थान है ।

डॉ. रामविलास शर्मा

डॉ. रामविलास शर्मा का नाम प्रगतिवादी आलोचक के रूप में उल्लेखनीय है । शर्माजी के अनुसार साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है । हिन्दी के सर्वाधिक विवादास्पद समीक्षक के रूप में भी आप जाने जाते हैं । शर्माजी ने साहित्य में कथ्य को महत्व दिया है । 'नयी कविता और अस्तित्ववाद, 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य', 'आस्था और सौन्दर्य' आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ हैं ।

डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी चिन्तक और समीक्षक है । वे साहित्य एवं समीक्षा को मार्क्सवादी दृष्टि से देखते और व्याख्यायित करते रहे । व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । निराला की साहित्यिक साधना', 'नयी कविता और अस्तित्ववाद', 'मुक्तिबोध पुनर्मूल्यांकन', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें', 'प्रगति और कल्पना', 'आस्था और सौन्दर्य' आदि उनकी प्रमुख आलोचनात्मक रचनायें हैं । वे साहित्य में कथ्य को महत्व देने के पक्ष में थे । इसलिए ही काव्य एवं कला की अभिन्नता को नहीं स्वीकार पाते । शर्मा जी नवीनता की अपेक्षा साहित्य की प्रगतिशील सार्थकता को अधिक महत्व दिया है ।

डॉ. नामवर सिंह

हिन्दी समीक्षा में नवलेखन के आचार्य के रूप में आप विख्यात है । छायावादी लेखक के रूप में समीक्षा की दुनिया में आये आप फिर प्रगतिशील चेतना के वाहक बन गए । कविता एवं कहानी के नये प्रतिमानों की खोज उनकी सबसे बडी उपलब्धी है । उन्होंने कहा है - ''आलोचक की वस्तुनिष्ठता इस बात में है कि वह किसी कृति के मूल्यांकन की प्रक्रिया में उसके रूप की जो पुनः सृष्टि अपने लिए करता है, वह यथा संभव अधिक से अधिक मूल कृति के निकट हो ।" 'कविता के नए प्रतिमान', 'छायावाद' आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ हैं ।

डॉ. नगेन्द्र

आधुनिक हिन्दी समीक्षा में आप को प्रमुख स्थान मिला है । उन्होंने हिन्दी समीक्षा को एक व्यापक आधार देकर नये आयामों को उद्घाटित किया । आप प्रारंभिक काल में व्यावहारिक आलोचना की ओर अग्रसर हुए । नगेन्द्र जी ने आलोचना में आधुनिकता को लाकर उसके तत्वों का प्रासंगिक विश्लेषण किया है । 'भारतीय काव्य शास्त्र की परंपरा', 'आस्था के चरण', 'नई समीक्षा; नये संदर्भ', 'साधना के नये आयाम', रस सिद्धान्त' आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ हैं । आधुनिक आलोचना में चर्चित तत्व बिंब रहा है । नगेन्द्र जी ने बिंब पर गहराई से विचार करते हुए उनकी रचना प्रक्रिया का व्याख्यान किया है । सर्वप्रथम छायावादी आलोचक होने की ख्याति

CUP/618/08/500/SDE-10

उनको प्राप्त है । व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक आलोचना को एकसूत्र में बाँधने में उनको सफलता मिली।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी

स्वच्छन्दतावादी आलोचकों में वाजपेयी जी का अन्यतम स्थान है । पाश्चात्य व भारतीय समीक्षा दृष्टियों के समन्वय करके उन्होंने एक नयी आलोचना पद्धति का सूत्रपात किया । वाजपेयी छायावाद की आत्मानुभूति से प्रभावित रहे । नई समीक्षा के समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा - ''नई समीक्षा में साहित्य के ऐतिहासिक विकास और सामाजिक प्रेरणा शक्तियों, शैली भेदों और कला स्वरूपों की परख अधिक व्यापक और मार्मिक है, इसमें संदेह नहीं ।" वाजपेयी जी के समीक्षा के अधिकांश भाग व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत आते हैं । वाजपेयी जी ने समीक्षा के व्यावहारिक पक्ष को प्रधानता दिया है । 'हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी', 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य; नये प्रश्न' आदि आपकी आलोचनात्मक रचनायें हैं । काव्यालोचक के रूप में आपको अधिक सफलता मिली है । भारतीय समीक्षा आत्मवाद पर बल देनेवाला है, इसका कारण उन्होंने यों बताया है, ''काव्य की रचना प्रक्रिया और उनकी प्रेषणीयता अंततः साहित्य के साधन ही है, साध्य तो है साहित्य का सामूहिक आस्वाद ।" वाजपेयी जी अनुभूति को महत्व देते थे । काव्य के बारे में उन्होंने लिखा है - 'काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों के नैसर्गिक कल्पना के सहारे, ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न करना होता है ।"

आप स्वच्छन्दतावादी होते हुए भी समन्वय तथा सौन्दर्य को साहित्य में महत्वपूर्ण मानते थे । काव्य, नाटक, उपन्यास आदि साहित्यिक विधाओं पर उन्होंने आलोचना किया है । लेकिन सफलता उन्हें काव्यालोचक के रूप में ही मिली । अपनी युगीन भावना को अभिव्यक्त करने में सफलता मिलने के कारण वाजपेयी जी प्रगतिवाद को प्रगोयवाद की अपेक्षा अधिक उपयुक्त मानते हैं । समीक्षा सिद्धान्तों के संबन्ध में उनका मत है - "मेरी दृष्टि में समीक्षा का व्यावहारिक पक्ष ही प्रधान है तथा इस पक्ष की पुष्टि केलिए ही सिद्धान्तों की स्थापना और उनका उपयोग किया जा सकता है । " इससे यह स्पष्ट होता है कि वाजपेयी जी व्यावहारिक आलोचना पर बल देते थे ।

काव्यालोचना के मान के रूप में उन्होंने भावात्मक निष्पत्ति और रूपात्मक सौन्दर्य को माना है।

राजेन्द्र यादव

'कहानी स्वरूप और संवेदना', 'एक दुनिया समानान्तर' शीर्षक कहानी संग्रह की लंबी भूमिका आदि से राजेन्द्र यादव जी के समीक्षा संसार का परिचय हमें मिलेंगे । 'कहानी : स्वरूप और संवेदना' में उन्होंने लिखा है, " रचनाकार जब समीक्षा का दायित्व लेता है तो निष्पक्ष नहीं रह पाता, उसकी सारी दलीलें और विवेचना कहीं अपनी रचनाओं केलिए जस्टिफिकेशन ही है ।" नई कहानी के सफल आलोचक थे यादव जी । कहानियाँ ज्यादा और आलोचना कम पढ़ने के कारण उन्हें नई कहानी के विभिन्न पहलुओं पर व्याख्या देने में कोई दिक्कत नहीं हुई ।

Unit - 17

हिन्दी पत्रकारिता

समाचार पत्र दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग है । यह प्रबुद्ध पाठकों के लिए ऐसा दर्पण है जिसकी सहायता से वे विश्व की गतिविधि, स्वराष्ट्र के उत्थान - पतन तथा क्षेत्र विशेष की ज्वलंत समस्याओं से सुपरिचित होते हैं । स्वतंत्रता, स्वराष्ट्रोन्नति व सर्वजनहिताय भावना हिन्दी पत्रकारिता की विशेषता है । महात्मा गाँधीजी के अनुसार समाचार पत्रों का मुख्य उद्देश्य जनता की इच्छाओं, विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है । दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना है । तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को निर्भयता पूर्वक प्रकट करना है । हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं में ये तीन गुण विद्यमान है।

'आधुनिक पत्रकार कला' में पं विष्णुदत्त शुक्ल ने यों लिखा है - ''पहिले पहल समाचार पत्रों का जन्म विशेष कर्मचारियों या संवाददाताओं द्वारा अधिकारियों के पास भेजी जानेवाली चिट्ठियों से हुआ । ये चिट्ठियाँ एक साथ जिल्द बाँधकर सार्वजनिक मिसिल (Public record) की भाँति रखी जाती थीं । इसलिए पहिले इसका नाम न्यूज़ बुक या समाचार ग्रन्थ रखा गया । फिर जब एक संवाददाता अनेक आधिकारियों के पास समाचार चिट्ठियाँ भेजने लगा, तब इसका नाम न्यूज़लेटर (समाचार चिट्ठी) तथा कुछ आगे चलकर न्यूज शीट (समाचार कागज़) पडा । इसके बाद 'न्यूज़ पेपर' (समाचार पत्र) नाम पड़ा, हिन्दी ने इसी नाम को अपना लिया ।''

काल-विभाजन

विभिन्न आचार्यों ने हिन्दी पत्रकारिता का काल विभाजन प्रस्तुत किया है ।

डॉ. रमेशकुमार जैन

प्रारंभिक युग (सन् १८२६ई. - सन् १८६७ ई)
भारतेन्दु युग (सन् १८६७ई. - सन् १९००ई)
द्विवेदी युग (सन् १९००ई. - सन् १९२०ई)
गाँधी युग (सन् १९२०ई. - सन् १९४७ ई)
स्वातंत्र्योत्तर युग (सन् १९४७ई. -)

युगल किशोर शुक्ल द्वारा ३०.०८.१९२६ को कलकत्ता से निकले गये 'उदन्त मार्ताण्ड' से हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव हुआ । राजाराम मोहनराय अंग्रेज़ी 'हिन्दु हेराल्ड' की देशी रूप 'बंगदूत' निकाला । इसके बाद हिन्दी प्रदेश से निकलनेवाला प्रथम पत्र 'बनारस अखबार' का प्रकाशन हुआ। इसके बाद 'ज्ञानदीपक' (सन् १८४८ ई), 'जगदीपक भास्कर' (सन् १८४९ ई), राजा लक्ष्मण सिंह के 'प्रजाहितैषी' (सन् १८५३ ई), श्याम सुन्दर सेन के 'समाचार सुधा वर्षण' (सन् १८५४), अजीमुल्ला खां के 'पयामे आज़ादी' (सन् १८५७ ई) जैसे कई पत्रों का प्रकाशन प्रारंभिक युग में हुआ । लेकिन

हिन्दी गद्य उस वक्त पत्रकारिता के लिए योग्य भाषा के रूप में विकास हासिल नहीं किया था । यह हिन्दी पत्रकारिता के विकास में रुकावट ही था ।

भारतेन्दु युग में इस कमी को सुधारने की कोशिश भारतेन्दु, पं. प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन, जगनमोहन सिंह, पं. बालकृष्ण भट्ट आदि ने किया । सन् १८६८ ई में भारतेन्दु जी ने काशी से 'कविवचन सुधा' निकाला । इसके बाद 'वृत्तान्त दर्पण' (सन् १८६८ ई), कार्तिकप्रसाद के 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' (सन् १८७२ ई), भारतेन्दु जी के 'हरिश्चन्द्र मैगसिन', (सन् १८७३ई.), 'कवि वचन सुधा', (सन् १८७४ ई), 'बाल बोधिनी', (सन् १८७४ई), सदासुखलाल के 'नागरी पत्रिका', 'धर्मपत्र', 'धर्मप्रकाश' (सन् १८७७ई.), बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप', दुर्गाप्रसाद मिश्र के 'सारसुधानिधि', 'ब्राह्मण' (सन् १८८३ ई), पं अंबिकादत्त व्यास के 'वैष्णव पत्रिका' (सन् १८८४ ई), अमृतलाल चर्कवर्ती के 'हिन्दी बंगवासी' (सन् १८९० ई) 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (सन् १८९६ ई), बाबू श्याम सुन्दर दास, पं. सुधाकर द्विवेदी, राधाकृष्ण दास, कालिदास आदि के संपादकत्व में जैसे कई पत्र पत्रिकायें निकले, इनमें से कुछ दो या तीन साल के बाद प्रकाशन समाप्त कर दिया । फिर भी हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में ये सब मील के पत्थर ही रहे ।

द्विवेदी युग में हिन्दी पत्रकारिता को नवोन्मेष मिला । चिंतामणी घोष ने सन् १९०० ई में 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ किया । इसके संपादक मंडल में किशोरीलाल गोस्वामी, श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास जैसे मनीषी शामिल थे । सन् १९०३ ई में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी 'सरस्वती' के संपादन का भार स्वीकार किया । उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता के स्तर को उन्नत किया । चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के 'समालोचक' (सन् १९०१ ई), मदनमोहन मालवीय के 'अभ्युदय' (सन् १९०४ ई), लोकमान्य तिलक के 'हिन्दी केसरी' (सन् १९०७ ई), अरविन्दघोष के 'कर्मयोगी' (सन् १९०९ई), जयशंकर प्रसाद के 'इंदू' (सन् १९०९ ई), गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' (सन् १९१३ ई) आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ । यह युग हिन्दी पत्रकारिता के विकास में महत्वपूर्ण ही रहे ।

समाचार पत्रों के इतिहास पर देश की राजनीति और सामाजिक स्थिति का असर पडना तो मामूली सी बात है । भारतीय राजनीति में गाँधीजी का प्रवेश देश के इतिहास को एक नई दिशा प्रदान की । देश में आज़ादी का लहर उठने लगा । चंपारन सत्याग्रह से शुरु हुई सत्याग्रह की श्रृंखला देश में विलायती लोगों के शासन के प्रति विरोध और विक्षोभ की लहर उठाई । आज़ादी का सन्देश आम लोगों में फैलाने के लिए अनेक मासिक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन देवनागरी लिपि में आरंभ हुआ।

शिव प्रसाद गुप्त का 'आज' (सन् १९१० ई), अंबिका प्रसाद वाजपेयी का 'स्वतंत्र' (सन् १९२० ई), रमाशंकर आवस्थी का 'वर्तमान' (सन् १९२० ई), गणेश शंकर विद्यार्थी का 'प्रताप' (सन् १९२३ ई), माखनलाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर' (सन् १९२० ई), डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी का 'देश' (सन् १९२० ई), कृष्णदत्त पालिवाल का 'सैनिक' (सन् १९२५ ई), मध्य भारत हिन्दी समिति का 'वीणा' (सन् १९२८ ई), प्रेमचन्द्र जी का 'हंस' (सन् १९३०-३१ई), विनोद शंकर व्यास का 'जागरण' (सन् १९३२ई), सत्यदेव विद्यालंकार का 'नवभारत टाइम्स' (सन् १९३६ई), इलाचन्द्र जोशी का 'धर्मयुग' (सन् १९५० ई), बालकृष्ण राव का 'कादंबिनी' (सन् १९६०ई.), अरुणपुरी का 'इंडिया टुडे' (सन् १९८६ई.)

आदि पत्र पत्रिकाओं के नाम आलोच्य काल में उल्लेखनीय हैं।

आज हिन्दी पत्रकारिता पूर्णता हासिल कर चुकी है । उसका निम्नांकित स्वरूप आज दिखाई दे रहा है,

१. अनुसन्धानात्मक पत्रकारिता (Investigative Journalism)

२. आर्थिक पत्रकारिता (Economic Journalism)

३. ग्रामीण पत्रकारिता (Rural Journalism)

४. काव्यात्मक पत्रकारिता (Interpretative Journalism)

५. विकास पत्रकारिता (Development Journalism)

६. संसदीय पत्रकारिता (Parliamentary Journalism)

७. खेल पत्रकारिता (Sports Journalism)

८. वृत्तान्त पत्रकारिता

९. रेडियो पत्रकारिता (Radio Journalism)

१०. टेलिविज़न पत्रकारिता (Television Journalism)

११. फोटो पत्रकारिता (Photo Journalism)

'अशोक के फूल' आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ है । आप साहित्य को साधन और मानव और उनके विकास को साध्य माना है । उन्होंने लिखा है - "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखना का पक्षपाती हूँ, जो वाग्जाल मनुष्य की दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है ।" अपनी व्यापक मानवतावादी ऐतिहासिक दृष्टि से द्विवेदी जी व्यक्ति एवं समाज, कल्पना एवं यथार्थ के बीच सामंजस्य लाने की कोशिश किया है । नितान्त कल्पना प्रसूत सौन्दर्य को सौन्दर्य मानने केलिए वे तैयार नहीं थे । इसे व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है । 'साहित्य के उपासक्त अपने पैर के नीचे की मिट्टी की उपेक्षा नहीं कर सकते । हम सारे बाह्य जगत को असुन्दर छोडकर सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकते । सुन्दरता सामंजस्य का नाम है ..... साहित्य सुन्दर का उपासक है । इसलिए साहित्य को असामंजस्य को दूर करने का प्रयत्न पहले करना होगा ।" मनुष्यता को उन्होंने साहित्य और रस का पर्याय माना है ।

राजेन्द्र यादव

'कहानी', स्वरूप और 'संवेदना', 'एक दुनिया', समानान्तर शीर्षक कहानी संग्रह की लंबी भूमिका आदि से राजेन्द्र यादव जी के समीक्षा संसार का परिचय हमें मिलेंगे । 'कहानी : स्वरूप और संवेदना' में उन्होंने लिखा है । " रचनाकार जब समीक्षा का दायित्व लेता है तो निष्पक्ष नहीं ही रह पाता, उसकी सारी दलीलें और विवेचना कहीं अपनी रचनाओं केलिए जस्टिफिकेशन ही सफल आलोचक थे यादव जी । कहावियाँ ज्यादा और आलोचना कम पढ़ने के कारण उन्हें नई कहानी के विभिन्न पहलुओं पर व्याख्या देने में कोई दिक्कत नहीं हुई ।

Unit - 18

हिन्दी के प्रमुख पत्र एवं संपादक

	नाम	साल	प्रकाशन स्थान	संपादक
१.	उदंत मार्ताण्ड	सन् १८२६ई	कलकत्ता	जुगल किशोर
२.	बंगदूत	सन् १८३२ ई	कलकत्ता	नीलरतन हालदार
३.	बनारस अख़बार	सन् १८४५ ई	काशी	गोविन्द रघुनाद दत्त
४.	मार्ताण्ड	सन् १८४६ ई	कलकत्ता	मौलाना नासिरुद्धीन
५.	जगदीपक भास्कर	सन् १८४९ ई	कलकत्ता	
६.	सामदण्ड मार्ताण्ड	सन् १८५० ई		युगल किशोर
७.	सुधाकर	सन् १८५० ई	काशी	तारा मोहन मित्र
८.	बुद्धि प्रकाश	सन् १८५२ ई	आग्रा	सदासुख़लाल
९.	मजहरुल जरुर	सन् १८५२ ई	भरतपूर	
१०.	ग्वालियर गजट	सन् १८५३ ई	ग्वालियर	बालमुकुन्द गुप्त
११.	सर्वहितकारक	सन् १८५५ ई	आगरा	
१२.	प्रजा हितैषी	सन् १८५५ ई		राजा लक्ष्मण सिंह
१३.	पयामें आज़ादी	सन् १८५७ ई	दिल्ली	अजीमुल्ला खाँ
१४.	धर्म प्रकाश	सन् १८५९ ई	अहम्मदाबाद	मनसख़ाराम
१५.	तत्वबोधिनी	सन् १८६० ई	बरेली	गुलाबशंकर
१६.	ज्ञानप्रदायिनी	सन् १८६६ ई	लाहौर	बाबु नवीनचन्द्र राय
१७.	कवि वचन सुधा	सन् १८६७ ई	बनारस	भारतेन्दु
१८.	वृत्तान्त दर्पण	सन् १८६८ ई	प्रयाग	सदासुख़लाल
१९.	हिन्दी दीप्ति प्रकाश	सन् १८७२ ई	कलकत्ता	कार्तिकाप्रसाद खत्री
२०.	हरिश्चन्द्र मैगसिन	सन् १७७३ ई		भारतेन्दु
२१.	हरिश्चन्द्र चन्द्रिका	सन् १८७४ ई		
२२.	बाल बोधिनी पत्रिका	सन् १८७४ ई		
२३.	काशी पत्रिका	सन् १८७६ ई		
२४.	आनन्द कादंबिनी	सन् १८८१ ई	मिर्जापूर	देवकीनन्दन तिवारी
२५.	हिन्दुस्तान	सन् १८८९ ई		

२६.	हिन्दी बंगवासी	सन् १८९० ई		अमृतलाल चर्कवर्ती
२७.	नागरी प्रचारिणी पत्रिका	सन् १८९६ ई	काशी	श्याम सुन्दर दास महामहोपाध्याय, सुधाकर द्विवेदी, कालिदास, राधाकृष्ण
२८.	सरस्वती	सन् १९००ई	प्रयाग	राधाकृष्ण दास, कार्तिकाप्रसाद खत्री आदि
२९.	समालोचक	सन् १९०१ ई	प्रयाग	चन्द्रधर शर्मा गुलेरी
३०.	अभ्युदय	सन् १९०७ ई	प्रयाग	मदनमोहन मालवीय
३१.	कर्मयोगी	सन् १९०९ ई	प्रयाग	सुन्दरलाल
३२.	इंदू	सन् १९०९ ई	काशी	जयशंकर प्रसाद
३३.	प्रताप	सन् १९१३ ई	कानपूर	गणेश शंकर विद्यार्थी
३४.	आज	सन् १९२० ई	काशी	शिवप्रसाद गुप्त
३५.	कर्मवीर	सन् १९२० ई	जबलपूर	माखनलाल चतुर्वेदी
३६.	माधुरी	सन् १९२२ ई	लखनऊ	रूपनारायण पाँडेय
३७.	वीणा	सन् १९२८ ई	इंदौर	कालिका प्रसाद दीक्षित
३८.	हंस	सन् १९३० ई	काशी	प्रेमचन्द
३९.	हिन्दुस्तानी	सन् १९३१ ई	प्रयाग	डॉ. ताराचंद
४०.	जागरण	सन् १९३२ ई	काशी	शिवपूजन सहाय
४१.	हिन्दुस्तान	सन् १९३५ ई	दिल्ली	सत्यदेव विद्यालंकार
४२.	नई दुनिया	सन् १९४७ ई	इंदौर	कृष्णचंद मुद्गल
४३.	नव भारत टाईम्स	सन् १९४७ ई	दिल्ली	सत्यदेव विद्यालंकार गणेशशंकर विद्यार्थी
४४.	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	सन् १९५० ई	दिल्ली	मुकुट बिहारी शर्मा
४५.	धर्मयुग	सन् १९५० ई	मुंबई	इलाचन्द्र जोशी
४६.	कादंबिनी	सन् १९६० ई	दिल्ली	बालकृष्ण राव
४७.	सारिका	सन् १९७० ई	मुंबई	रतनलाल जोशी
४८.	इंडियाटुडे	सन् १९८६ ई	दिल्ली	अरुणपुरी

संपादक	पत्र
अज्ञेय (सन् १९११ई. - सन् १९८७ई.)	'सैनिक', 'विशाल भारत'
	'बिजली', 'प्रतीक', 'दिनमान'
	'भाट', 'वाक्', 'एवरीमेन्स' 'नया प्रतीक'
उग्र (सन् १९००ई. - सन् १९६७ई.)	'जयादी प्रताप', 'भूत'
	'स्वदेश','मतवाला', 'विक्रम', 'संग्राम', 'हिन्दी पंच' 'स्वराज्य', 'वीणा'
देवकी नन्दन खत्री	
(सन् १९६१ई. - सन् १९१३ई.)	'साहित्य सुधा निधि', 'सुदर्शन'
गुलाब राय (१८८७-१९६३)	'साहित्य संदेश'
राधामोहन गोकुल (१८६५-१९६३)	'साहित्य संदेश'
राधामोहन गोकुल (१८६५-९९३५)	'ब्राह्मण'
माखनलाल चतुर्वेदी	'सुबोध बन्धु', 'प्रभा',
(१८८९-१९६८)	'कर्मवीर'
बालकृष्ण शर्मा (१८९८-१९६०)	'प्रताप', 'प्रभा'
निराला (१८९६-१९६१)	'समन्वय', 'मतवाला'
प्रेमघन (१८५५-१०२३)	'आनन्द कादबिनी', 'नागरी नीरद'
प्रेमचन्द्र (१८८०-१९३६)	'माधुरी', 'हंस', 'जागरण', 'मर्यादा'
पद्मलाल पुन्नालाल	
(२८९४-१९७१)	'सरस्वती', 'महाकौशल',
कृष्ण बिहारी मिश्र	साहित्य समालोचक,
	माधुरी, आज
राजा शिवप्रसाद	बनारस अखबार
भगवती चरण वर्मा (१९०३-१९८१)	'प्रताप', 'विचार', 'नवजीवन'
रघुवीर सहाय	
(९२९-१९००)	'नवजीवन', 'प्रतीक', 'कल्पना'
	'नवभारत टाइम्स'

(अपूर्ण)

Unit - 19

मलयालम से अनूदित काव्य रचनायें

भारत में काव्यानुवाद की परंपरा बहुत पुरानी है । आधुनिक युग अनुवाद का युग है । मलयालम से हिन्दी में अनुवाद का काल निर्धारण करना सरल काम नहीं है । काव्यानुवाद की अजस्र धारा में मलयालम का प्राचीन कवि अय्यप्प पिल्लै आशान, तुंचत रामानुजन एषुत्तच्छन आदि से लेकर समकालीन कवियों तक को स्थान मिला है ।

वल्लत्तोल की कवितायें - वल्लत्तोल - रत्नमयी दीक्षित
कवि श्रीमाला - वल्लत्तोल - एम. श्रीधरमेनोन
बाँसुरी - शंकरकुरुप्प - लक्ष्मीचन्द्र जैन, नारायण पिल्लै
त्यक्ता के आँसू - कुमारनाशान - डॉ. सुधांशु चतुर्वेदी
छप्पन कवितायें - बालामणियम्मा - लक्ष्मीचन्द्र जैन
कल्याण सौगन्धिकम् - कुंचन नंपियार - चातुक्कुट्टी कण्णूर
तीन कवितायें - कुमारनाशान - श्रीधरमेनोन
भक्तिदीपिक - उल्लूर - कवियूर शिवराम अय्यर
करुणा - कुमारनाशान - कवियूर शिवराम अय्यर
चिन्ताविष्ट सीता - कुमारनाशान - मुत्तूर राघवन नायर
महाभारत - एषुत्तच्छन - सुब्रह्मण्य अय्यर
हरिनाम कीर्तन - एषुत्तच्छन - के.एन. मेनन
महाकवि कुंचन - कुंचन नंपियार - एस. सदाशिवन
नंपियार की तुल्लल कथाएँ - कुंचन नंपियार - एस. सदाशिवन
अध्यात्मरामायण तथा उत्तर रामायण - एषुत्तच्छन - एन.पी. कुट्टन पिल्लै
पिता और पुत्र - वल्लत्तोल - टी.एन. विश्वन
गोरीशंकर - एम.पी. अप्पन - एन. चन्द्रशेखरन नायर
प्रेमसंगीत - उल्लूर - अभयदेव
सरसरसाल - वैलोप्पिल्ली - नारायण
कृष्णलीला - चेरुश्शेरी - ए. वेलायुधन
फूलों के दल - ओ.एन.वी - विद्वान आर.के. शर्मा
क्रांति - के.एम.पणिक्कर - रत्नमयी दीक्षित
जी. विवेकानन्दन - साथी - पी.जी. जार्ज

CUP/6181/08/500/SDE-II

वि.के.एन - स्वयंवर - एम.एस. राधाकृष्णन

नन्दनार - बलि कंबकरे - सुधांशु चतुर्वेदी

श्रीरामन - पिंडदान - एम.एस. राधाकृष्णन

राघवन इडप्पल्ली - सुधा - टी. रत्नकुमारी अम्मा

श्रीदेवी. वी.के. - शिलारूप - विनय शर्मा

यु.के. कुमारन - वह और मैं - वी.डी. कृष्णन नंपियार

ई.वी. कृष्णपिल्ला - बीवी काकथा लेखन - पी. नारायण

वाइकम मुहम्मद बशीर - ऐषकुट्टी - पी. राघवन

(अपूर्ण)

Unit - 20

मलयालम से अनूदित उपन्यास

पी. केशवदेव - आईना - वी.ए. केशवन नंपूतिरी
पारप्पुरत्तु - आधी घडी - एन.ई. विश्वनाथ अय्यर
चंदुमेनोन - इंदुलेखा - वी.ए. केशवन नंपूतिरी
एस.के. पोट्टेक्काट - कथा एक प्रांतर की - पी. कृष्णन
- विषकन्या - रामचन्द्रन नायर
पी. नरेन्द्रनाथ - कबाडे की कहानी - लक्ष्मीक्कुट्टी अम्मा तथा रामन एषुत्तच्छन
एम.टी. वासुदेवन नायर - चार दीवारों में - पद्मिनी मेनोन
तकषी - दो सेर धान - भारती विद्यार्थी
- चुनौती - भारती विद्यार्थी
मलयाट्टूर - जडें - एन.ई. विश्वनाथ अय्यर
मोहम्मद बशीर - दादा का हाथी - के. रविवर्मा
पी. केशवदेव - नाली से - सुधांशु चतुर्वेदी
- पडोसी - सुधांशु चतुर्वेदी
जोसफ मुंडशेरी - प्रोफेसर - सुधांशु चतुर्वेदी
सी.वी. रामनपिल्लै - रामराज बहादूर - एन.ई. विश्वनाथ अय्यर
के.एम. पणिक्कर - संघर्ष - के. कृष्णन मेनोन
टी.एन. गोपिनाथन नायर - सुधा - सुधांशु चतुर्वेदी
वेट्टूर रामननायर - जो जीना भूल गई - अभयदेव
के. दामोदरन - पद्मावती - एस. लक्ष्मण शास्त्री
सच्चिदानन्दन - मरण सर्टिफिकेट - विश्वनाथ अय्यर
पुनत्तिल - स्मारण शिलायें - विश्वनाथ अय्यर
के.पी. रामनुण्णी - जबानासूफी की - डॉ. राधामणि. पी.के
के.पी. सुधीरा - गंगा - प्रभाकरन
एम.टी. वासुदेवन नायर - रण्डामूषं (दूसरी बार) - प्रो. एम.एस. मणी
- मञ्ज (ओस) - सी.पी. हफसत्त
तकषी - एणिप्पटिकल (सीढ़ी के डंडे) - सुधांशु चतुर्वेदी
तकषी - कयर (रस्सी) - रती सक्सेना, सुधांशु चतुर्वेदी
पुनत्तिल - दवा - विश्वनाथ अय्यर

तकषी - जीवन सुन्दर है किन्तु - डॉ. आरसु

तकषी - बेचारा शरीफ इन्सार - डॉ. आरसु

मलयाट्टूर - यंत्र - डॉ. पी.के. चन्द्रन

पी. वत्सला - धान - राकेश कालिया

पी. मुकुन्दन - टी.वी - के. पद्मनाभन

बशीर - पात्तुम्मा की बकरी - पी.के. रवीन्द्रनाथ

बशीर - आवाज़ें - पी.के. रवीन्द्रनाथ

(अपूर्ण)

Unit - 21

मलयालम से अनूदित कहानियाँ

मलयालम से हिन्दी में पुस्तक रूप में प्रकाशित उपलब्ध कहानी संग्रहों में सर्वप्रथम प्रकाशित किताब श्रीमती भारती विद्यार्थी द्वारा संपादित मलयानिल है । ज्ञानपीठ से पुरस्कृत तकषी, एस.के. पोट्टेक्काट, एम.टी. वासुदेवन नायर जैसे कहानीकारों का कहानी संग्रह भी आज उपलब्ध है।

अनुवाद एक ऐसी विधा है जो भिन्न भाषा भाषियों के बीच भिन्न भिन्न प्रदेशों के सांस्कृतिक सामाजिक पहलुओं को पहूँचाती है और इस प्रकार भावात्मक एकता की नींव को भी सुदृढ़ बनाती है । हिन्दी में अनूदित रचनाओं के द्वारा समस्त भारतवासियों को देश के विभिन्न राज्यों की संस्कृति का सही परिचय प्राप्त करने का मौका मिलता है । मलयालम से हिन्दी में अनूदित रचनाओं में कहानियों का विशेष स्थान है । नीचे प्रमुख मलयालम कहानीकार का नाम, कहानी का नाम, अनुवादक का नाम, मासिका का नाम दिया गया है ।

उरूब - किराये घर - सुधांशु चतुर्वेदी - कथा भारती
उण्णिकृष्णन - इक्कीसवीं सदी की ओर - एम.एस. विश्वम्भरन - गंगा
कारूर - मिलिटरी - एन.ई. विश्वनाथ अय्यर - सारथी
कारूर - पूरी - सुधांशु चतुर्वेदी - कथा भारती
कारूर - कलकट्ट - भारती विद्यार्थी
काक्कनाडन - नाटों का गाँव - के.जे. जॉन
केशवदेव - तपस्या - वी.डी. कृष्णन नंपियार - आजकल
कोविलन - पिता - पी. लक्ष्मीक्कुट्टी अम्मा - समकालीन भाषा साहित्य
कोवूर - कंकडी - पी. गणपती
कुञ्ञिरामन नायर - द्वारका - एन.ई. विश्वनाथ अय्यर
जोण अब्रहाम - आगेतुक - वेणु मरुताय
टाटा पुरम सुकुमारन - साँप - सुधांशु चतुर्वेदी
तकषी - उसकी कमाई - डॉ. आरसु - जनसत्ता
तकषी - गोरा बच्चा - के. रविवर्मा
तकषी - चाय के बाग में - डॉ. अरविन्दाक्षन
तकषी - फौजी - पी. कृष्णन
तकषी - आम के पेड़ तले - वी.के. हरिकृष्णन उण्णित्तान
नारायणन पिल्ला. एस.वी - वह - वी.डी. कृष्णन नंपियार
नागवल्ली आर.एस. कुरुप्प - आत्महत्या - सुधांशु चतुर्वेदी

टी. पद्मनाभन - एक लडकी जो रोशनी खिला रही है - पी.जी. जार्ज - साहित्य मंडल पत्रिका

पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला - मुखौटा - वेणु मरुताय

पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला - किस्सा एक बरजोरी का - शशिधरन

पुत्तूर - प्रेत का घर - डॉ. आरसु

एस.के. पोट्टक्काट - सप्तवर्णी - वी. रवीन्द्रन

एस.के. पोट्टक्काट - श्यामचन्द्रिका - डॉ. के.जी. प्रभाकर

एस.के. पोट्टक्काट - रजनीगन्धा - डॉ. वी.के. रवीन्द्रनाथ

एस.के. पोट्टक्काट - ऊँट - रविवर्मा

एस.के. पोट्टक्काट - पुरानी प्रेमिका - पीके.पी. कर्ता

एस.के. पोट्टक्काट - सूनी घाट - डॉ. अरविन्दाक्षन

एस.के. पोट्टक्काट - इनस्पेकशन - डॉ. टी.एन. विश्वंभरन

एस.के. पोट्टक्काट - मेल रनट - श्री. दिवाकरन

पोनकुन्नम वर्की - बच्चे को इधर दे दो - नारायण देव

बालचन्द्रन. एम.टी - गुलाब की बदबू - पी. नारायण

मलयाट्टूर - माँ - डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर

सेतुमाधवन - चूहे - डॉ. एम. शण्मुखम

माधवीक्कुट्टी - एक धँधलाशफ - पी. बालकृष्णन नायर

माधवीक्कुट्टी - रानी - मीरा माणिक्कन

माधवीक्कुट्टी - तनिक मिट्टी - सी.एन. गोविन्द

एम. मुकुन्दन - साढे पाँच साल का बच्चा - डॉ. निर्मला

एन.पी. मुहम्मद - सिर्फ एक कदम - पी. लक्ष्मीक्कुट्टी अम्मा

के.टी. मुम्मद - आँखें - सी.एन. राघवन नायर

मोहनवर्मा - हँसनेवाले रोनेवाले - सुधांशु चतुर्वेदी

पद्मराजन - हमशक्ल - पी. लक्ष्मीक्कुट्टी अम्मा

ललितांबिका अन्तर्जनम - आँसू की मुस्कान - एन.ई. विश्वनाथ अय्यर

एम.टी. वासुदेवन नायर - दीदी - मालती. के.एम

. . .

(अपूर्ण)

Unit - 22

मलयालम से अनूदित नाटक

मलयालम नाटक साहित्य बहुत ही समृद्ध है । आजकल नाट्यानुवाद के क्षेत्र में बहुत कुछ काम हो रहे हैं और इन अनुवादों के माध्यम से अनुवादक केरलीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को हिन्दी संसार के सामने उपस्थित करने का सफल प्रयास कर रहे हैं ।

कप्पना कृष्ण मेनोन - पष़श्शीराजा - सी.एन. गोविन्दन
के.एम. पद्मनाभन नायर - कुञ्ञाली मरक्कार - सी. पुरुषोत्तम
एन.वी. कृष्ण पिल्लै - कन्यका - सुधांशु चतुर्वेदी
इडश्शेरी गोविन्दन नायर - सहकारी खेती - के. रविवर्मा
उरूब - मिट्टी और नारी - के. कृष्णमेनोन
तोप्पिल भासी - पूँजी, उत्थान - लक्ष्मण शास्त्री
तोप्पिल भासी - नया आसमान नयी धर्ती - डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर
तोप्पिल भासी - अश्वमेध - लक्ष्मीक्कुट्टी अम्मा
टी.एन. गोपिनाथन नायर - कांचन सीता - सुधांशु चतुर्वेदी
टी.एन. गोपिनाथन नायर - पशु - रफीक शरण
सी.जे. थॉमस - वह फिर आ रहा है - पी.जे. वासुदेव
जी. शंकरपिल्लै - भरत वाक्य - माधवन पिल्लै
जी. शंकरपिल्लै - चीटियाँ - डॉ. एम.एस. विश्वंभरन
वयला वासुदेव पिल्लै - अग्नि - डॉ. एम.एस. विश्वंभरन
कावालम - महाराज अग्निवर्ष के पैर - डॉ. एम.एस. विश्वंभरन
कावालम - पुरानावृत्त - डॉ. एम.एस. विश्वंभरन
कावालम - दैवत्तार - डॉ. एम.एस. विश्वंभरन
कावालम - सूर्यस्थान - जगदीश गुप्त
नरेन्द्रप्रसाद - शिकार - डॉ. एम.एस. विश्वंभरन
पिरप्पन कोड मुरली - दादा कामरेड - डॉ. राजप्पन नायर
कैनिकरा पद्मनाभ पिल्लै - वेलुतंपीदलवा - सुधांशु चतुर्वेदी

(अपूर्ण)

Unit - 23

दलित साहित्य

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य आज महत्वपूर्ण चर्चा का विषय बना है । लगभग तीन दशक पहले मराठी साहित्य में दलित साहित्य की चर्चा प्रारंभ हुई । महाराष्ट्र में सर्वप्रथम दलितों ने ही आत्मकथा, उपन्यास और अन्य रचनायें की । उसका कारण ज्योतिबा फूले नामक क्रांतिकारी था । 'गुलामगिरी' नामक पुसतक लिखकर उन्होंने दलित समाज में जागरण पैदा किया । बीसवीं शती के तृतीय दशक के मध्य में डॉ. भीमराव अंबेड़कर का आविर्भाव भारत में हुआ । उनका 'शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो' नारा का महाराष्ट्र में बड़ा प्रभाव पड़ा ।

हिन्दी साहित्य में वाराणसी के हीरा डोम की कविता 'अछूत का शिकायत' पहली दलित काव्य रचना माना जाता है । भोजपुरी में लिखी गई इस कविता का प्रकाशन सन् १९१४ के 'सरस्वती' पत्रिका में हुई । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ दलित साहित्य आया जिसमें गद्य-पद्य दोनों प्रकार की रचनाएँ थीं । इसमें बाबू जगजीवन राम की 'भारत में जातिवाद' और 'हरिजन समस्या', श्री बिहारी लाल हरित की 'रैदास रामायण' आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं । गुरु रविदास दलित साहित्य के आदि कवि माना जाता है ।

१९८० के बाद दलित साहित्य सभी विधाओं में लिखे जाने लगे । दलित नाटकों में ए.के. लाल का 'मुझे फांसी दो', श्री मोहनदास नैमीशरण्य का 'क्या मुझे खरीदोगे' आदि का नाम उल्लेखनीय हैं । डॉ. जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', डॉ. धर्मवीर का 'पहला खत', ओमप्रकाश वाल्मीकी का 'जूठन', मोहनदास नैमीशरण्य का 'अपने अपने पिंजरे' आदि काफी लोक प्रिय गद्य रचनायें हैं ।

दलित इतिहास पर आ.एल. वाली का 'हिन्दुइज़म - धर्म या कलंक', स्वामी अछूतानन्द हरिहर का 'आदिवंश का डंका', डॉ. नवल वियोगी की 'धर्म वर्ण के भंवरे में डूबता भारत' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । दलित कविता संकलनों में डॉ. धर्मवीर भारती का 'हीरामन', बिहारीलाल हरित का 'भीमायण', अनेगदास सिंह का 'भीम चरित मानस' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली दलित साहित्य संवर्धन और दलित साहित्य सृजन कार्य में मग्न है । अकादमी का राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर है । दलित साहित्य आम आदमी के उत्थान और उन्नयन का हिमायती रही है । आम आदमी ही इसकी असली शक्ति है।

पहला दलित पत्रकार होने का श्रेय गोपाल बुवा वलगकर को मिला है । डा. भीमराव अंबेड़कर के 'मूकनायक' (१९२०), 'बहिष्कृत भारत' (१९२७), 'समता' (१९२८), 'जनता' (१९३०) जैसे पत्रों का प्रकाशन किया । स्वामी अछूतानंद हरिहर का 'आदि हिन्दु' (१९२७), 'जयभीम' (१९४७), 'अनुभव' (१९५३) जैसे पत्रों का भी प्रकाशन हुआ ।

दलित साहित्य को अपना पहचान देने में कर्मरत मनीषियों में डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकी, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, डॉ. ए. अच्युतन, डॉ. विष्णु सर्वदे, डॉ. बी. कृष्णा, डॉ. विमल खांडेकर, मुनफर राही, मुद्राराक्षस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

Unit - 24

हिन्दी प्रचार-प्रसार में रत निजी संस्थाएँ

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

सभा की स्थापना २६ जुलाई १८९३ ईं में हुई । इसके संस्थापक थे बाबू श्याम सुन्दर दास, पं. रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार मिश्र । सभा द्वारा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' नामक एक शोध त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सम्मेलन की स्थापना १९१० में हुआ है । 'राष्ट्रभाषा' और त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' प्रकाशित होती है ।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

महात्मा गाँधी द्वारा संस्थापित इस सभा की स्थापना सन् १९३६ ई. में हुई । संस्था का मूलमंत्र है – 'एक हृदय हो भारत जननी' । 'राष्ट्रभाषा' तथा 'राष्ट्र भारती' नामक मासिक पत्रिकायें प्रकाशित की जाती है ।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

इस संस्था की स्थापना सन् १९१८ ई. में महात्मा गाँधी की प्रेरणा से हुई । सभा की चार प्रान्तीय शाखायें हैदराबाद, धारवाड, तिरुच्चिरापल्ली और एरणाकुलम में स्थापित है । सभा के मुख्यालय से 'हिन्दी प्रचार समाचार' तथा 'दक्षिण भारत' नामक पत्रिकायें प्रकाशित की जाती है।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना

सभा की स्थापना सन् १९१९ ई. में हुई । संस्था द्वारा शोध समीक्षा प्रधान त्रैमासिक 'साहित्य' पत्र का प्रकाशन होता है ।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

शिवपूजन सहाय के प्रयास से ११ मार्च १९५१ ई. में परिषद की स्थापना हुई । परिषद की ओर से त्रैमासिक 'परिषद पत्रिका' का प्रकाशन किया जाता है ।

बंगीय हिन्दी परिषद, कोलकत्ता

परिषद की स्थापना सन् १९४५ ई. में हुई । 'जनभारती' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है ।

गुजरात विद्यापीठ, अहम्मदाबाद

विद्यापीठ की स्थापना १७ अक्तूबर सन् १९१० ई. को हुई थी ।

केरल हिन्दी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रम

स्थापना सन् १९३४ ई. में । 'जय हिंद जय हिन्दी' सभा का आदर्श वाक्य है । 'केरल ज्योति' सभा की मुख पत्रिका है ।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना

स्थापना सन् १९४५ ई. में । सभा द्वारा 'राष्ट्रवाणी' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है ।

आसम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुहावती

स्थापना १९३८ ई. में । 'राष्ट्र सेवक' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है।

कुछ अन्य प्रमुख संस्थायें

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, आगरा
मुंबई हिन्दी विद्यापीठ, मुंबई
मणिपूर हिन्दी परिषद्
मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बेंगलोर
मैसूर रियासत हिन्दी प्रचार समिति, बेंगलोर
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, मुंबई
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
केरल हिन्दी साहित्य अकादमी, तिरुवनन्तपुरम
गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली
हिन्दी शिक्षा समिति, कटक
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपूर

Unit - 25

हिन्दी पत्र पत्रिकायें एवं संपादक

मासिक/पत्रिका	संपादक	संस्था
साहित्य अमृत	त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी	
केरल ज्योति	पी.डी. तंकप्पन नायर	केरल हिन्दी प्रचार सभा, तिरुवनन्तपुरलम
संग्रथन	डॉ. वी.वी. विश्वम	हिन्दी विद्यापीठ, तिरुवनन्तपुरम
हिन्दी प्रचार समाचार	एम. वेंकायम्मा	दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
हिन्दुस्तानी	डॉ. एम.के. पांडे	हिन्दुस्तानी अकादमी
समकालीन साहित्य समाचार	सत्यव्रत	किताबघर
नागरी संगम	डॉ. परमानन्द पाँचाल	गाँधी स्मारक निधि
भाषा पीयूष	नागप्पा	कर्नाटक हिन्दी प्रचार समिति
समीक्षा	गोपाल राय/हरदयाल	दिल्ली
मधुमति	डॉ. अजित गुप्ता	राजस्थान साहित्य अकादमी
राष्ट्रवाणी	प्रो. सु.मो. शाह	महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा
वीणा	राजेन्द्र मिश्र	इन्डोर
संचेतना	दीक्षा बिष्ट	राष्ट्रीय विज्ञान संचार सूचना श्रोत
नयाज्ञानोदय	रवीन्द्रकालिया	भारतीय ज्ञानपीठ
राष्ट्रभाषा सन्देश	विभूति मिश्र	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
माध्यम	विभूति मिश्र	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
सम्मेलन पत्रिका	विभूति मिश्र	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
हंस	राजेन्द्र यादव	दिल्ली
केरल हिन्दी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका	डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर	केरल हिन्दी साहित्य अकादमी
हिन्दी प्रचार वाणी	बी.एस. शांताबाई	कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बैंगलूर
विवरण पत्रिका	धोण्डीराव जादव	हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
गवेषण	रामशरण जोशी	केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
राष्ट्रभाषा	अनन्तराम त्रिपाठी	राष्ट्रभाषा, वार्धा

मंगल	एन.आर. शेट	कार्पोरेशन बैंक
छत्तीसगढ़ टुडे	जगदीश यादव	रायपूर
केरल भारती	के. विजयन	दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, एरणकुलम
भाषा भारती	बी.आर. सैनी	सेल (Sail Ltd.)
राजभाषा भारती	विजयचन्द्र मंडल	गृह मंत्रालय

(अपूर्ण)

M.A. (FINAL) DEGREE EXAMINATION, MARCH/APRIL

Hindi

Paper VIII - History of Hindi Literature and Geenral Awareness

Time : Three Hours **Maximum : 125 Marks**

खण्ड 'क'

निम्नलिखित प्रश्नों में से किन्हीं दो के उत्तर लिखिए :

I. 'आदिकाल' के विभिन्न नामकरणों का विवेचन करते हुए उचित नाम की सार्थकता को समझाइए ।

II. ज्ञानमार्ग शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियों की विशद कीजिए ।

III. कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताओं को लिखते हुए, सूरदास क महत्व स्पष्ट कीजिए ।

IV. तुलसीदास की समन्वय साधना का परिचय दीजिए ।

V. रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए ।

(2 x 20 = 40 marks)

VI. किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए :

(अ) अमीर खुसरो । (आ) नाथ साहित्य ।

(इ) पद्मावत । (ई) कबीर की गुरुमहिमा ।

(2 x 5 = 10 marks)

खण्ड 'ख'

निम्नलिखित प्रश्नों में से किन्हीं दो के उत्तर लिखिए :

VII. भारतेन्दु युगीन साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए ।

VIII. प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को विशद कीजिए ।

IX. हिन्दी नाटक के विकास में जयशंकर प्रसाद के योगदान को रेखांकित कीजिए ।

X. हिन्दी कहानी के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए । **(2 x 20 = 40 marks)**

XI. किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए :

(अ) मैथिलीशरण गुप्त ।

(आ) यशपाल ।

(इ) कामायनी ।

(ई) रेखाचित्र ।

(2 x 5 = 10 marks)

खण्ड 'ग'

XII. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1. 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता कौन है ?
2. आधुनिक हिन्दी का प्रथम महाकाव्य कौन सा है ?
3. 'बीजक' किसकी रचना है ?
4. 'साहित्य लहरी' के कवि का नाम क्या है ?
5. 'जडिया' कवि किसे माना जाता है ?
6. मीरा की भक्तिभावना किस प्रकार की थी ?
7. रीतिकाल का प्रवर्तक किसे माना जाता है ?
8. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास किसकी रचना है ?
9. 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक कौन थे ?
10. 'कविवचन सुधा' पत्रिका के संपादक कौन थे ?
11. 'खजुराहो का शिल्पी' के नाटककार का नाम क्या है ?
12. आदिकाल के लिए सिद्ध सामंत युग नाम किसने दिया है ?
13. बिहारी ने 'सतसई' की रचना किसके दरबार में की ?
14. 'शिवराज भूषण काव्य' का प्रमुख रस कौन सा है ?
15. 'बूँद और समुद्र' के उपन्यास का नाम क्या है ?
16. 'मुझे चाँद चाहिए' किसकी रचना है ?
17. 'छत्रसाल दशक' के रचयिता कौन है ?
18. 'यह पथ बंधु था' किसने लिखा है ?
19. 'दिव्या' उपन्यास के लेखक कौन है ?
20. अज्ञेय के अस्तित्ववादी उपन्यास का नाम क्या है ?
21. 'एक कंठ विषपायी' के लेखक कौन है ?
22. 'सागर लहरे और मनुष्य' किसने लिखा है ?
23. महादेवी वर्मा को 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' किस रचना पर मिला ?
24. प्रेमचन्द जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कौन सा है ?
25. 'सागर की गलियाँ' किसकी रचना है ?